

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_184317

UNIVERSAL
LIBRARY

QUP—390—29-4-72—10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No **5620/B255** Accession No **5427**

Author **Brhaja Deva**

Title **Samatyanga na Sutradhāra**

This book should be returned on or before the date last marked below

GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES

Published under the Authority of
the Government of His Highness
the Maharaja Gaekwad of Baroda.

GENERAL EDITOR

B. BHATTACHARYYA, M. A.

No. XXXII.

SAMARÂNGANASÛTRADHÂRA

VOL. II.

समराङ्गणसूत्रधारः

महाराजाधिराजश्रीभोजदेवप्रणीतः

SAMARÂNGAṆASŪTRADHÂRA

BY

KING BHOJADEVA

EDITED BY

MAHÂMAHOPÂDHYÂYA

T. GAṆAPATI SÂSTRÎ,

Honorary Member, Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland,

Honorary Doctor of Philosophy, University of Tübingen,

Editor of the

TRIVANDRUM SANSKRIT SERIES

IN TWO VOLUMES

Volume II.

1925.

BARODA

Printed by L. Ramaswamy Sastri at the Sridhara Power Press,
Trivandrum, and published by Newton Mohun Dutt, Curator of
Libraries, Baroda State, on behalf of the Government
of His Highness the Maharaja Gaekwad, at
the Central Library, Baroda

PREFACE

This, the second volume, completes the work of Samarangana which runs up to a portion of the 88th Adhyaya. It contains descriptions of Prasadas pertaining to Devas, statues made of gold, silver etc., the art of painting, रस and दृष्टि to be delineated in pictures and images, 64 kinds of हस्त beginning with Pataka and similar other topics, a detailed mention of which may be found in the contents attached.

Great difficulty had to be experienced in bringing out this edition as no other manuscript was available than the one referred to in the preface to the first volume, which contains several errors and is in many places not legible. Proper substitutes for the errors have been proposed within interrogations and new readings for impure words and phrases suggested as far as possible by means of foot notes.

The subject matter being silpa, the work need not possess the characteristics of a literary work. Nevertheless it is remarkable for its sweet and simple Kavya style. It is for this reason that I said in the first volume that the author of the work is the same King Bhoja of Dhara who wrote Sringara-prakasa and other works and to whom is assigned a high place in the domain of Sahitya.

It may be said that, because the various machines such as the elephant machine, door keeper machine, flying machine etc., mentioned in the work, have not been either seen or heard of before, they are only products of imagination and not actual machines made and put into practical use. That is not so; for, even things which once existed might, in the long run, come to be considered as unreal on account of their disuse and things involving much labour, time and money

It may be asked next why the poet has not described the method of constructing the machines. The poet himself answers thus:—

यन्त्राणां घटना नोक्ता
 गुप्त्यर्थं नाशतावशात् ।
 तत्र हेतुरयं ज्ञेयो
 व्यक्ता नैते फलप्रदाः ॥ (Vol. I, P. 175)

The meaning of the line, व्यक्ता नैते फलप्रदाः is, in case the methods are revealed in the work, then every one not initiated in the art by the preceptor will try to construct the machines and the attempt made by such a person may not only not achieve success but bring about troubles and difficulties. The following sloka contains the qualifications necessary for constructing the machines:—

पारम्पर्यं कौशलं सोपदेशं
 शास्त्राभ्यासो वास्तुकर्मोद्यमो धीः ।
 सामग्रीयं निर्मला यस्य सोऽस्मि-
 श्चित्राण्येवं वेत्ति यन्त्राणि कर्तुम् ॥ (Vol. I, P. 176)

It is also not uncommon, in the case of highly useful machines, to keep unrevealed the methods of constructing them.

T. Ganapati Sastri.

विषयानुक्रमणी ।

विषयः

पृष्ठम्

५५. मेर्वादिषोडशप्रासादादिलक्षणाध्यायः पञ्चपञ्चाशः—

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|--------|
| मेर्वादयः षोडश प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | १ |
| तेषु मेरुलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १ |
| कैलासलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २ |
| सर्वतोभद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३ |
| विमानच्छन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३, ४ |
| नन्दनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ५ |
| स्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १ |
| मुक्तकोणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६ |
| श्रीवत्सलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १ |
| हंसरुचकवर्धमानगरुडगजप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७ |
| सिंहपद्मकयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ८ |
| मेर्वादिप्रासादसामान्यविधयः | ... | ... | ... | ... | १ |
| बलभीप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ९ |
| मेर्वादीनां विनियोगः | ... | ... | ... | ... | १ |
| एषु जगत्यादिकल्पननियमाः | ... | ... | ... | ... | १ |
| परिवाराणां स्थापनप्रकारः | ... | ... | ... | ... | १० |
| द्वारमानविधयः | ... | ... | ... | ... | ११ |
| स्तम्भहीरग्रहतुलाधारणकुम्भपद्मादीनां कल्पनम् | ... | ... | ... | ... | ११, १२ |
| रूपशाखादिप्रकरणम् | ... | ... | ... | ... | १३ |

५६. रुचकादिचतुष्पष्टिप्रासादकाध्यायः षट्पञ्चाशः—

| | | | |
|--|-----|-----|----|
| रुचकादिचतुष्पष्टिप्रासादानां साधारणा विधयः | ... | ... | १४ |
|--|-----|-----|----|

येन रुचकादयः पञ्चविंशतिर्विहितमागताः.

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----|
| सुभद्रादयो नव मिश्रकप्रासादाः ... | ... | ... | ... | १५ |
| केसर्यादयः पञ्चविंशतिः सान्धारप्रासादाः ... | ... | ... | ... | १५ |
| लतादयः पञ्च निगूढप्रासादाः ... | ... | ... | ... | १५ |
| केसर्यादिष्वण्डकसंख्या ... | ... | ... | ... | १५ |
| मेरोर्विनियोगः कर्तृनियमादिकं च ... | ... | ... | ... | १६ |
| ललितप्रासादेषु रुचकभद्रकहंसानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | १७ |
| हंसोद्भवप्रतिहंसनन्दनन्द्यावर्तधराधरवर्धमानगिरि- कूटानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | १८ |
| श्रीवत्सत्रिकूटमुक्तकोणजगज्जडसिंहाख्यानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | १९ |
| भवविभवमालाधराणां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २० |
| पद्ममलयवज्रकाणां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २१ |
| स्वस्तिकशङ्कोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २२ |
| पद्म चतुरश्रतदायतवृत्ततदायताष्टाश्रिप्रासादानां विभागः ... | ... | ... | ... | २२ |
| मिश्रकप्रासादेषु सुभद्रादित्रिकूटान्तानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २२ |
| धराधरादिसर्वाङ्गसुन्दरान्तानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २३ |
| मिश्रकप्रासादसामान्यलक्षणम् ... | ... | ... | ... | २३ |
| सान्धारप्रासादेषु केसरिलक्षणम् ... | ... | ... | ... | २४ |
| सर्वतोभद्रलक्षणम् ... | ... | ... | ... | २४ |
| नन्दननन्दिशालयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २५ |
| नन्दिवर्धनमन्दिरयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २६ |
| श्रीवत्सामृतोद्भवयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २७ |
| हिमवद्धेमकूटयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २८ |
| कैलासपृथिवीजयेन्द्रनीलानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | २९ |
| मटानीलभूधरयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ३० |
| रत्नकूटवैडूर्ययोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ३१ |
| पद्मरागवज्रकमुकुटोज्ज्वलैरावतराजहंसानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ३२ |
| गरुडवृषभमेरूणां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ३३ |
| निगूढप्रासादेषु लताख्यस्य लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ३४ |
| त्रिपुष्कराख्यपञ्चवक्त्रचतुर्मुखानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ३५ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | |
|------------------------------|-----|-----|-----|-----|--------|
| नवात्मकप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ३५-३७ |
| एष परिवारप्रतिष्ठानियमादिकम् | ... | ... | ... | ... | ३७, ३८ |

५७. मेर्वादिविंशिकाध्यायः सप्तपञ्चाशः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|--------|
| अन्ये श्रीधरादयश्चत्वारिंशदुत्कृष्टप्रासादाः, तेषां विनियोगश्च | ... | ... | ... | ... | ३९ |
| नन्दनादयो दश मिश्रकप्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ४० |
| तेषु श्रीधरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४०-४३ |
| हेमकूटलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४३-४५ |
| सुभद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ४६, ४७ |
| रिपुकेसरिलक्षणम् | .. | ... | ... | ... | ४८-५० |
| पुष्पकलक्षणम् | .. | ... | ... | ... | ५०-५२ |
| विजयभद्रलक्षणम् | .. | .. | .. | ... | ५२-५४ |
| श्रीनिवासलक्षणम् | . | .. | ... | ... | ५४ |
| सुरसुन्दरलक्षणम् | .. | .. | ... | ... | ५५-५७ |
| नन्दावर्तलक्षणम् | ... | ... | .. | ... | ५७-५९ |
| पूर्णप्रासादलक्षणम् | . | .. | ... | ... | ५९ |
| सिद्धार्थलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६० |
| शङ्खवर्धनलक्षणम् | ... | ... | .. | ... | ६१ |
| त्रैलोक्यभूषणलक्षणम् | .. | .. | ... | ... | ६२-६४ |
| पद्मपक्षवाहोर्लक्षणम् | . | ... | ... | ... | ६४ |
| विशाललक्षणम् | ... | .. | ... | ... | ६५ |
| कमलोद्भवलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६६ |
| हंसध्वजलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६७ |
| लक्ष्मीधरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ६८ |
| महावज्ररतिदेहयोर्लक्षणम् | ... | .. | ... | ... | ६९ |
| सिद्धकामलक्षणम् | .. | ... | ... | ... | ७० |
| पञ्चचामरलक्षणम् | ... | .. | ... | ... | ७१ |
| नन्दिघोषलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७२ |
| मनूत्कीर्णलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ७३ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|--------------|
| सुप्रभलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ७३, ७४ |
| सुरानन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ७५ |
| हर्षणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ७६ |
| दुर्घरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ७७ |
| दुर्जयलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ७८ |
| त्रिकूटनवशेखरयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ७९ |
| पुण्डरीकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८० |
| सुनाभलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८१ |
| महेन्द्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८२ |
| वराटलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८३ |
| सुमुखप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८४ |
| नन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८५ |
| महाघोषवृद्धिरामवसुन्धराणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८६ |
| मुद्रकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८७ |
| बृहच्छाललक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८७, ८८ |
| सर्वदेवसाधारणेष्वन्येषु विंशतिप्रासादेषु मेरुलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ८९ |
| मन्दरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ९० |
| कैलासलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ९१-९३ |
| त्रिविष्टपलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ९३-९५ |
| पृथिवीजयलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ९५-९८ |
| क्षितिभूषणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ९८ |
| सर्वतोभद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... ९९-१०१ |
| विमानप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... १०१, १०२ |
| नन्दनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... १०३ |
| स्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... १०३, १०४ |
| मुक्तकोणलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... १०४-१०६ |
| श्रीवत्सलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... १०६-१०८ |
| हंसलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... १०८ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | |
|-------------------------------|-----|-----|-----|-----|---------|
| रुचकवर्धमानयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १०९ |
| गरुडगजसिंहप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११० |
| पद्मकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १११ |
| नन्दिवर्धनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११२-११४ |

५८. प्रासादस्तवनाध्यायोऽष्टपञ्चाशः—

विश्वकर्मणे ब्रह्मणा दत्तेषु विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादेषु

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|
| वास्तुदेवतापूजनादिकम् | ... | ... | ... | ... | ११४ |
| एषां प्रासादानां विनियोगः | ... | ... | ... | ... | ११५ |
| तत्र शिवस्य समुद्दिष्टा अष्टौ प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| विष्णोः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| ब्रह्मणः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| सूर्यस्य प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| चण्डिकायाः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| विनायकस्य प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| लक्ष्म्याः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| सर्वदेवसाधारणाः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | ११६ |

५९. विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणाध्याय एकोनषष्टितमः—

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---------|
| समनन्तरोक्तचतुष्पष्टिप्रासादेषु विमानलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११६-११८ |
| सर्वतोभद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११८ |
| गजपृष्ठप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ११९ |
| पद्मकवृषभमुक्तकोणनलिनप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२० |
| मणिकगरुडप्रासादयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२१ |
| वर्धमानशङ्खावर्तयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२२ |
| पुष्पकगृहराजस्वस्तिकप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२३ |
| रुचकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२४ |
| पुण्ड्रवर्धनमेरुमन्दरप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२५ |
| कैलासहंसमद्रुद्रप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १२६ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|
| मिश्रकगवयचित्रकूटकिरणप्रासादानां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | १२७ |
| सर्वाङ्गसुन्दरनन्द्यावर्तबलभ्यप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १२८ |
| सुपर्णश्रीवत्सप्रासादयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | १२९ |
| पद्मनाभवैराजवृत्तकपासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १३० |
| सिंहचित्रकूटयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | १३१ |
| योगपीठघण्टानादपताकिनमुहाधरप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १३२ |
| शालाकवेणुककुञ्जरप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १३३ |
| हर्षणमहापद्महर्म्यप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १३४ |
| उज्जयन्तगन्धमादनशतशृङ्गविभ्रान्तमनोहरप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १३५ |
| वृत्तवृत्तायतचैत्यकिङ्किणीकलयनपट्टिसविभवप्रासादानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १३६ |
| तारागणप्रासादलक्षणम् | ... | ... | ... | १३७ |

६०. श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणाध्यायः षष्ठितमः—

नागरक्रियाणां श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादानां

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|
| नामनिर्देशः ... | ... | ... | ... | ... | १३८ |
| तत्र श्रीकूटलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १३९ |
| श्रीमुखलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १४० |
| श्रीधरवरदप्रियदर्शनकुलनन्दनान्तरिक्षाणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १४१ |
| पुष्पाभासविशालकसङ्कीर्णमहानन्दनन्द्यावर्तसौभाग्याख्यानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १४२ |
| विभङ्गकविभवर्षाभत्सश्रीतुङ्गमानतुङ्गानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १४३ |
| सर्वतोभद्रबाह्योदरनिर्युहोदराणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १४४ |
| भद्रकोशचित्रकूटविमलहर्षणभद्रसङ्कीर्णभद्रविशालकभद्रविष्कम्भाणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १४५ |
| उज्जयन्तलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १४६ |
| चित्रकूटादुज्जयन्ताच्चोत्पन्नाः प्रासादाः | ... | ... | ... | ... | १४७ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | |
|--|-----|-----|-----|
| विमानादीनां श्रीकूटादीनां च साधारण। नियमाः | ... | ... | १४६ |
| उत्तमादिप्रासादानां मानम् | ... | ... | ॥ |

६१. पीठपञ्चकलक्षणाध्याय एकषष्टितमः—

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| द्राविडप्रासादयोग्यानि पञ्च पीठानि | ... | ... | ... | १४७ |
| तेषु पादबन्धपीठस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | ॥ |
| श्रीबन्धवेदीबन्धप्रतिकमपीठानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १४८ |
| क्षुरबन्धपीठस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | १४९ |
| पद्मादयः पञ्च तलच्छन्दप्रासादाः | ... | ... | ... | ॥ |
| तेषु पद्मतलच्छन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | ॥ |
| महापद्मवर्धमानस्वस्तिकतलच्छन्दानां लक्षणम् | ... | ... | ... | १५० |
| सर्वतोमद्रतलच्छन्दलक्षणम् | ... | ... | ... | १५१ |
| एषामेव सान्धारणां लक्षणम् | ... | ... | ... | ॥ |

६२. द्राविडप्रासादलक्षणाध्यायो द्विषष्टितमः—

| | | | |
|---|-----|-----|----------|
| भूमिकायुक्तेषु द्राविडप्रासादेषु एकभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १५२ |
| द्विभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १५३ |
| त्रिभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १५४-१५७ |
| चतुर्भूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १५८-१६० |
| पञ्चभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १६०-१६५ |
| षड्भूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १६५ |
| सप्तभूमिकस्य लक्षणम् | ... | ... | १६६ |
| अष्टभूमिकनवभूमिकयोर्लक्षणम् | ... | ... | १६७ |
| दशभूमिकैकादशभूमिकद्वादशभूमिकानां लक्षणम् | ... | ... | १६८, १६९ |

६३. मेर्वादिर्विंशिकानागरप्रासादलक्षणाध्यायः त्रिषष्टितमः—

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|---------|
| मेर्वाद्वयो विंशतिर्नागरप्रासादाः | ... | ... | ... | १७० |
| एषु भूमिकादिकल्पननियमादयः | ... | ... | ... | १७०-१७२ |
| पक्षास्तरेणैषां मानप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | १७३ |
| भूमिकाष्टकस्य मानं, पृथक् पृथक् तदवयवकल्पनं च | ... | ... | ... | १७३-१७९ |

विषयः

पृष्ठम्.

६४. दिग्भद्रादिप्रासादलक्षणाध्यायः चतुष्पष्टितमः—

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|---------|
| दिग्भद्रादीनां द्वादशवाटाप्रासादानां नामानि | ... | ... | ... | ... | १७९ |
| तेषु दिग्भद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| श्रीवत्सलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८० |
| वर्धमानलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८०-१८२ |
| नन्द्यावर्तनन्दिवर्धनयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८२ |
| बिमानलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८३ |
| पद्ममहाभद्रयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८४ |
| श्रीवर्धमानलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८५ |
| महापद्मपञ्चशालपृथिवीजयानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८६ |

६५. भूमिजप्रासादलक्षणाध्यायः पञ्चषष्टितमः—

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|----------|
| भूमिजप्रासादेषु निषधादयश्चत्वारश्चतुरश्रप्रासादाः | ... | ... | ... | ... | १८७ |
| तेषु निषधलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| मलयाद्रिलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८८ |
| माह्यवतो लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १८९ |
| नवमालिकस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९० |
| कुमुदादयः सप्त वृक्षजातिप्रासादाः | ... | ... | ... | ... | १९१ |
| तेषु कुमुदलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९२, १९३ |
| कमललक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९३ |
| कमलोद्भवलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९४ |
| किरणशतशृङ्गयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९५ |
| निरवधलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९६ |
| सर्वाङ्गसुन्दरलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९७ |
| भूमिजातिष्वेव स्वस्तिकादयः पञ्चाष्टशालप्रासादाः | ... | ... | ... | ... | १९८ |
| तेषु स्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| वज्रस्वस्तिकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | १९९ |
| हर्म्यतललक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २०० |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| उदयाचललक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०१ |
| गन्धमादनलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | ... | २०२ |
| नागरादिप्रासादगतानां पञ्चविंशतिरेखाणां संज्ञाः, | | | | | | |
| तत्करणविधिश्च | ... | ... | ... | ... | ... | ” |

६६. मण्डपलक्षणाध्यायः षट्षष्टितमः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---------|
| सामान्यतो मण्डपस्य द्वैविध्यं, तदर्थो वास्तुपदविभागश्च | ... | ... | ... | ... | २०३ |
| भद्रादयोऽष्टौ मण्डपाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| सर्वेषां मण्डपानां सामान्यविधिः | ... | ... | ... | ... | ” |
| तत्र भद्रमण्डपलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २०४-२०६ |
| नन्दनमहेन्द्रवर्धमानाख्यानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २०६ |
| स्वस्तिकसर्वतोभद्रमहापद्मगृहराजानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २०७ |
| अन्ये मण्डपनिर्माणसम्बद्धा विशेषाः | ... | ... | ... | ... | २०८ |

६७. सप्तविंशतिमण्डपलक्षणाध्यायः सप्तषष्टितमः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---------|
| सन्निवेशविशेषेण भिन्नेष्वन्येषु सप्तविंशतिमण्डपेषु उत्तमाधम- | | | | | |
| मध्यमकल्पननियमाः | ... | ... | ... | ... | ” |
| तेषु पुष्पकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २०९— |
| अन्येषां मण्डपानां नामानि | ... | ... | ... | ... | ” |
| मिश्रकादिमण्डपानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २१० २१७ |

६८. जगत्यङ्गसमुदायाधिकाराध्यायोऽष्टषष्टितमः—

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|---------|
| जगतीस्वरूपकथनम् | ... | ... | ... | ... | २१८ |
| पीठात् पृथग् जगतीसम्भवे कारणम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| जगतीनां सन्निवेशः | ... | ... | ... | ... | ” |
| प्रासादेषु जगत्या निवेशनस्थानम् | ... | ... | ... | ... | ” |
| उत्तमादीनां जगतीनां विनियोगप्रकारः | ... | ... | ... | ... | ” |
| कर्णोद्भवादयः षट्प्रकाराः शालाः, तल्लक्षणं च | ... | ... | ... | ... | २१९ |
| उत्तमादिजगतीपीठानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २२०-२२२ |

विषयः

पृष्ठम्.

६९. जगतीलक्षणाध्याय एकोनसप्ततितमः —

| | | | |
|--|-----|-----|---------|
| चतुरश्राकाराणामेकोनचत्वारिंशतो जगतीनां संज्ञाः | ... | ... | २२२ |
| तासु वसुधाद्येकभद्रान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२३ |
| द्विभद्रिकादिभ्रमरावल्यन्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२४ |
| स्वस्तिक्यादिमन्दारमालिकान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२५ |
| अनङ्गलेखादिनन्धावर्तान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२६ |
| ताम्रमूलादिकर्णमञ्जर्यन्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२७ |
| विश्वरूपादिसुभद्रान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२८ |
| सिंहपञ्जरादिदेवयन्त्रिकान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२९ |
| चतुरश्रायतानां यमलादित्रिपथान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २२९-२३२ |
| वृत्ताकाराणां वलयादिचन्द्रमण्डलान्तानां लक्षणम् | ... | ... | २३३-२३६ |
| वृत्तायतानां मातुलङ्ग्यादिकालिङ्ग्यन्तानां लक्षणम् | ... | ... | २३६ |
| अष्टाश्रिसंस्थानानां मातृकादिजगतीनां लक्षणम् | ... | ... | २३७-२३९ |

७०. लिङ्गपीठप्रतिमालक्षणाध्यायः सप्ततितमः—

| | | | |
|---|-----|-----|---------|
| उत्तमादिलिङ्गानां प्रमाणं, द्रव्याणि, लक्षणोद्धारादि च | ... | ... | २४०-२४२ |
| उद्देश्यफलभेदेन तत्तद्विशु प्रतिष्ठापनीयानां लोकपाललिङ्गानां लक्षणं, तत्प्रशंसा च | ... | ... | २४३-२४५ |
| लिङ्गानां द्रव्यभेदेन फलभेदप्रदर्शनं, सान्निध्यकारका विधयश्च | ... | ... | २४६ |
| चिह्नाभिव्यक्तिहेतुकप्रलेपद्रव्यादिकम् | ... | ... | २४७ |
| तेषां लिङ्गानां पीठकरूपनप्रकारः | ... | ... | २४८-२५० |
| पृथ्वादिकाः पीठिकाः, तल्लक्षणं, तद्विनियोगश्च | ... | ... | २५० |
| मेखलाप्रणालब्रह्मशिलादिकरूपनविधयः | ... | ... | २५१ |
| लिङ्गसविधे ब्रह्मविष्ण्वादीनां निवेशनप्रकारः | ... | ... | २५२ |
| द्वारप्रमाणानुरोधेनोत्तमादिप्रतिमानां, तत्पीठानां च करूपनम् | ... | ... | २५३ |
| असादगर्भेषु पिशाचादिभागविभजनक्रमः | ... | ... | २५४ |

७१. चित्रोद्देशाध्याय एकसप्ततितमः —

| | | | | | | |
|----------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|
| चित्रप्रशंसा | ... | ... | ... | ... | ... | २५२ |
| चित्रलेखनाविधानानि | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| चित्रोद्देशः ✓ | ... | ... | ... | ... | ... | २५३ |
| चित्रकर्माङ्गानां निर्देशः | ... | ... | ... | ... | ... | ,, |

७२. भूमिबन्धाध्यायो द्विसप्ततितमः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|
| वर्तिकाबन्धनोपयोगिन्यो मृदः, तत्संस्करणं च | ... | ... | ... | ... | २५४ |
| वर्तिकालक्षणं, भूमिबन्धनप्रकारश्च | ... | ... | ... | ... | २५५ |
| कुड्यभूमिबन्धनक्रमः | ... | ... | ... | ... | २५६ |
| पट्टभूमिबन्धनक्रमः | ... | ... | ... | ... | २५७ |
| पटभूमिबन्धनक्रमः | ... | ... | ... | ... | २५८ |

७३. लेप्यकर्मादिकाध्यायः त्रिसप्ततितमः —

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|
| लेप्यकर्माचिताया मृदो लक्षणं, तत्संस्करणं च | ... | ... | ... | ... | ,, |
| ताभिर्लेपनक्रमः, कूर्चकलक्षणं च | ... | ... | ... | ... | २५९ |
| कूर्चकैर्लेखाकरणनियमाः | ... | ... | ... | ... | २६० |

७४. अण्डकप्रमाणाध्यायः चतुःसप्ततितमः —

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|
| आलेख्यकर्मणि मुखाण्डकवृत्ताण्डकयोरेखनविधिः | ... | ... | ... | ... | ,, |
| अलसाण्डकादीनामलेखनविधिः | ... | ... | ... | ... | २६१ |

७५. मानोत्पत्त्यध्यायः पञ्चसप्ततितमः —

| | | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|----------|
| मानगणनम् | ... | ... | ... | ... | ... | २६२ |
| देवादीनां शरीरप्रमाणप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | ... | ... | २६२, २६३ |
| देवासुरनरादीनां रूपविशेषाः, मज्जवाजिर्त्तिहव्यालकुक्कुटा- दीनां जातिभेदाश्च | ... | ... | ... | ... | ... | २६४ |
| चित्रकर्मापक्रमनियमाः | ... | ... | ... | ... | ... | २६५ |

विषयः

पृष्ठम्

७६. प्रतिमालक्षणाध्यायः षट्सप्ततितमः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|----------|
| प्रतिमाद्रव्याणि, तत्प्रयुक्ताः फलभेदाश्च | ... | ... | ... | २६६ |
| प्रतिमानिर्माणोपक्रमविधिः | ... | ... | ... | , |
| पुरुषप्रतिमावयवेषु नेत्रश्रवणनासापुटचिबुको- | | | | |
| ष्ठसृक्नुनासिकानां नदंशभूतानां च पृथक् पृथक् | | | | |
| प्रमाणप्रदर्शनम् | ... | ... | ... | २६६, २६७ |
| ललाटगण्डग्रीवावक्षोनाभिमेढोरुजानुजङ्घापादाङ्गुलि- | | | | |
| नखानां प्रमाणपरिमाणादिकम् | ... | ... | ... | २६८, २६९ |
| बाह्वोस्तदङ्गुलीनां च प्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | २६९ |
| स्त्रीप्रतिमानामङ्गप्रत्यङ्गप्रमाणादिकम् | ... | ... | ... | २७० |

७७. देवादिरूपप्रहरणसंयोगलक्षणाध्यायः सप्तसप्ततितमः —

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|-----|
| प्रतिमाविशेषेषु ब्रह्मणो लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | , |
| शिवस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २७१ |
| कार्तिकेयस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २७२ |
| वलभद्रस्य लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २७३ |
| विष्णोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २७४ |
| महेन्द्रादीशानान्तानां लोकपालानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | , |
| लक्ष्म्या लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | , |
| कौशिक्या लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २७५ |
| अश्विनोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | , |
| पिशाचादीनां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | , |
| यक्षनागगन्धर्वादीनां सामान्यलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | , |

७८. दोषगुणनिरूपणाध्यायोऽष्टसप्ततितमः —

| | | | | |
|--------------------------------------|-----|-----|-----|----------|
| दुष्टाः प्रतिमाः, तत्पूजनफलं च | ... | ... | ... | २७६, २७७ |
| शुभावहानां प्रतिमानां सामान्यलक्षणम् | ... | ... | ... | २७८ |

विषयः

पृष्ठम्.

७९. ऋज्वागतादिस्थानलक्षणाध्याय एकोनाशीतितमः —

प्रतिमानान् ऋज्वागतादिकाः स्थानविशेषाः, तत्परा-

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|----------|
| वृत्तानि, तद्व्यन्तराणि च ... | ... | ... | ... | २७८ |
| तेषु ऋज्वागतार्धज्वागतयोर्लक्षणम् | ... | ... | ... | २७९-२८१ |
| सार्चीकृतलक्षणम् | ... | ... | ... | २८२-२८४ |
| अध्यर्धलक्षणम् | ... | ... | ... | २८४-२८८ |
| पार्श्वगतलक्षणम् | ... | ... | ... | २८८ |
| ऋज्वागतपरावृत्तलक्षणम् | ... | ... | ... | २८९ |
| परावृत्तान्तराणां लक्षणसंक्षेपः | ... | ... | ... | २९० |
| एषु तत्तदवयवविभागप्रमाणनिर्णयार्थः सूत्रपातविधिः | ... | ... | ... | २९०, २९१ |

८०. वैष्णवादिस्थानलक्षणध्यायोऽशीतितमः —

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| वैष्णवादिकानि चेष्टास्थानानि तल्लक्षणं च ... | ... | ... | ... | २९२ |
| सर्वेष्वपि स्थानकेषु जायमानानि द्रुतादिकानि गम- | | | | |
| नानि, तल्लक्षणं च | ... | ... | ... | २९३ |
| अन्येषामपि क्रियाविशेषाणां प्रतिपत्त्यर्थं पातनीयानि | | | | |
| त्रीणि सूत्राणि, तत्पातनविधिश्च | ... | ... | ... | २९४ |

८१. पञ्चपुरुषस्त्रीलक्षणध्याय एकाशीतितमः—

| | | | | | |
|---------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|
| हंसादयः पञ्च पुरुषविशेषाः | ... | ... | ... | ... | २९५ |
| तेषु हंसलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | „ |
| शशलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २९६ |
| रुचकलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | „ |
| भद्रलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २९७ |

८२. रसदृष्टिलक्षणध्यायो द्व्यशीतितमः —

| | | | | | |
|---------------------------------------|-----|-----|-----|-----|-----|
| चित्रशास्त्रप्रसिद्धा एकादश रसाः ✓ | ... | ... | ... | ... | २९८ |
| तेषु शृङ्गाराद्यद्भुतान्तानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ... | „ |
| शान्तरसलक्षणम् | ... | ... | ... | ... | २९९ |

विषयः

पृष्ठम्.

| | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|
| ललितादयोऽष्टादश दृष्टिविशेषाः ... | ... | ... | ... | २९९ |
| तेषु ललितादिविभ्रमान्तानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ,, |
| सङ्कुचितादिस्थिरान्तानां लक्षणम् | ... | ... | ... | ३०० |
| प्रतिमादिषूक्तदृष्टीनामावश्यकताप्रतिपादनम् | ... | ... | ... | ,, |

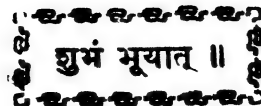
८३. पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणाध्यायः त्र्यशीतितमः —

| | | | | |
|---|-----|-----|-----|---------|
| पताकादयश्चतुर्विंशतिरसंयुता हस्तविशेषाः ... | ... | ... | ... | ३०१ |
| तेषु पताकस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३०१-३०४ |
| त्रिपताकस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३०४-३०६ |
| कर्तरीमुखार्धचन्द्रयोर्लक्षणं कर्माणि च | ... | ... | ... | ३०६ |
| अरालस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३०७ |
| शुकतुण्डमुष्टयोर्लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३०८ |
| शिखरकपित्थखटकामुखानां लक्षणं कर्माणि च | ... | ... | ... | ३०९ |
| सूचीमुखस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३१० |
| पद्मकोशस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३११ |
| सर्पशिरोमृगशीर्षिकयोर्लक्षणं कर्माणि च | ... | ... | ... | ३१२ |
| काङ्गूलालपद्मयोर्लक्षणं कर्माणि च | ... | ... | ... | ३१३ |
| चतुरस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३१३-३१५ |
| अमरहंसवक्त्रहंसपक्षाणां लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३१५ |
| सन्दंशस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३१६ |
| मुकुलोर्णनाभताम्रचूडानां लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ३१७ |
| अथाञ्जल्यादयस्त्रयोदश संयुता हस्तविशेषाः ... | ... | ... | ... | ३१८ |
| कर्कटस्वस्तिकखटकोत्सङ्गानां लक्षणं कर्माणि च | ... | ... | ... | ३१९ |
| तेषु अञ्जलिकपोतयोर्लक्षणं कर्माणि च | ... | ... | ... | ,, |
| दोललक्षणम् ... | ... | ... | ... | ३२० |
| पुष्पपुटस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ,, |
| मकरलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ,, |
| गजदन्तलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ,, |

विषयः

पृष्ठम्

| | | | | | |
|--|-----|-----|-----|-----|-----|
| अवहित्यस्य लक्षणं कर्माणि च ... | ... | ... | ... | ... | ३२० |
| वर्धमानलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| एषां प्रयोगाश्रिता नियमाः ... | ... | ... | ... | ... | ३२१ |
| चतुरश्रादय एकोनत्रिंशन्नृत्तहस्ताः ... | ... | ... | ... | ... | ३२१ |
| तेषु चतुरश्रविप्रकीर्णयोर्लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| पद्मकोशलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ३२२ |
| अरालखटकामुखलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| आविद्धवक्रकलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| सूचीमुखलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| रेचिहस्तलक्षणम् .. | ... | ... | ... | ... | ,, |
| उत्तानवञ्चितलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| अर्धरेचितलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ३२३ |
| पल्लवलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| केशवन्धलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| लताहस्तलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| करिहस्तलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| पक्षवञ्चितकलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| पञ्चप्रच्योतकलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| गरुडपक्षलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ३२४ |
| दण्डपक्षोर्ध्वमण्डलिपार्श्वमण्डलिनां लक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| उरोमण्डलिलक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |
| उरःपार्श्वार्धमण्डललक्षणम् ... | ... | ... | ... | ... | ,, |



॥ श्रीः ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचितं
समराङ्गणसूत्रधारापरनामधेयं
वास्तुशास्त्रम्

(द्वितीयः सम्पुटः ।)



अथ मेर्वादिषोडशप्रासादादिलक्षणो नाम
पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ।

प्रासादानामतो लक्ष्म षोडशानां विशेषतः ।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां यथावदभिदध्महे ॥ १ ॥
विभज्यते यथा येन प्रागश्चोर्ध्वं विधीयते(?) ।
यावद् यस्य प्रमाणं तु तथा तत् तस्य कथ्यते ॥ २ ॥
मेरुः प्रासादराजश्च कैलासश्च हरप्रियः ।
सर्वतोभद्रकश्चैव विमानच्छदनन्दनौ ॥ ३ ॥
स्वस्तिको मुक्तकोणश्च श्रीवत्सो हंससंज्ञितः ।
रुचको वर्धमानश्च गरुडश्च गजस्तथा ॥ ४ ॥
मृगराजश्च पद्मश्च बलभी चेति ते स्मृताः ।
न त्रयस्त्रिंशतोऽधस्तान्नापि पञ्चाशतः परा ॥ ५ ॥
सङ्ख्या भवति हस्तानां मेरोरिति पुराविदः ।
विभज्य दशधा क्षेत्रं शृङ्गं कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ६ ॥
कृत्वा षड्भागिकं मध्यं निर्गमस्तत्र दीयते ।
भागस्य षोडशांशेन विधेयं सलिलान्तरम् ॥ ७ ॥

१. 'या प्रायः प्रापे चोर्वे त्रि'(?), २. 'दस्य', ३. 'न', ४. 'रि',
५. 'इो गददस्त' क. पठः ।

पदैः षोडशभिर्गर्भे विधेया चास्य विस्तृतिः ।
 प्रासादभित्तिः(ः)पदिका पदविस्तृतमन्तरम्(?) ॥ ८ ॥
 पदिका बाह्यभित्तिः स्यादित्येष स तदा स्मृतः ।
 द्विपदो वेदिकाबन्धो जङ्घा पञ्चपदोदया ॥ ९ ॥
 पदार्धेन पदार्धेन मेखलान्तरपत्रके ।
 शृङ्गोच्छ्रितिस्त्रिभिर्भागैर्नवभिः शिखरोच्छ्रितिः ॥ १० ॥
 शिखरस्यास्य कर्तव्यास्तज्जैः षोडश भूमिकाः ।
 स्कन्धोऽशैर्विस्तृतः पद्भिर्दशेनोच्छ्रितमण्डकम् ॥ ११ ॥
 ग्रीवा वंशोच्छ्रिता कार्या शिखरस्यादिविस्तृतौ ।
 षड्गुणेनैव सूत्रेण त्रेणुकोशं समालिखेत् ॥ १२ ॥
 विस्तृतेरपि भद्रायाः कुर्याद् द्विगुणमुच्छ्रयम् ।
 कुम्भं भागेन कुर्वीत प्रासादेष्वखिलेष्वपि ॥ १३ ॥
 एवमेष चतुःशृङ्गश्चतुर्द्वारोपशोभितः ।
 मेरुर्मरूपमः कार्यो वाञ्छता शुभमात्मनः ॥ १४ ॥
 सर्वस्वर्णमयं मेरुं यद् दत्त्वा पुण्यमाप्नुयात् ।
 तमिष्टकाशैलमयं कृत्वा तदधिकं भजेत् ॥ १५ ॥
 । मेरुः ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे सप्तविंशतिपाणिकम् ।
 दशधा विभजेत् स स्यात् कैलासः पुण्यवर्धनः ॥ १६ ॥
 ब्रह्मकोष्ठगतो गर्भः शेषं भिन्न्यन्धकारिका ।
 चतुर्भागं भवेद् भद्रं मूलकर्णौ त्रिभागिकौ ॥ १७ ॥
 सप्तभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला चार्धभागिका ।
 भागेनान्तरपत्रं स्याद् भागेनाण्डकमुच्छ्रितम् ॥ १८ ॥
 ग्रीवाग्रभागमुत्सेधाच्छिखरं दशकोच्छ्रितम् ।
 अर्धषष्ठांशविस्तारः स्कन्धः कैलाससंज्ञिते ॥ १९ ॥

१. 'वाटिका', २. 'त्रिभागोच्छ्रि', ३. 'षङ्गणा तेनु सू', ४. 'पद-
 त्वात् पु', ५. 'वे', ६. 'ध' क. पाठः ।

अस्मिन्नन्तरपत्रे तु सूत्रं दत्त्वा सुताडितम् ।
 त्रिगुणेन लिखेत् तेन वेणुकोशं मनोरमम् ॥ २० ॥
 अष्टभूम्युच्छ्रयः श्रीमान् मञ्जर्या च विराजितः ।
 उच्छ्रयश्चास्य कर्तव्यो द्विगुणः श्रियमिच्छता ॥ २१ ॥
 कार्यं षड्भूमिकं चास्य भद्रं भागार्धनिर्गतम् ।
 पाकः सिंहकर्णस्युः(?) समाप्तिर्नायकेन च ॥ २२ ॥
 कैलास एव कथितो विशेषेण हरप्रियः ।

२ कैलासः ॥

इदानीं सर्वतोभद्रः प्रासादः परिकीर्त्यते ॥ २३ ॥
 स स्यात् षड्विंशतिं हस्तान् परमः परिमाणतः ।
 जठरं बाह्यसीमा च भित्तयो ह्यन्धकारिकाः ॥ २४ ॥
 जङ्घोत्सेधश्च कर्णौ च यथा मेरोस्तथा स्मृताः ।
 तथैव भद्रविस्तारैः कार्यो भागार्धनिर्गतः ॥ २५ ॥
 रथिकैका चतुर्भागा ततः सार्धद्विभागिका ।
 तासां परस्परं ज्ञेयो^१ भागभागं विधीयते(?) ॥ २६ ॥
 पद्भागाद् वित्तृतं कार्यं शिखरं सप्तमोच्छ्रितम् ।
 षड्भिर्दशभिर्भागैः स्यान्मूलजा स्कन्धविस्तृतिः(?) ॥ २७ ॥
 ग्रीवार्धभागमुत्सेधादण्डकं भागमुच्छ्रितम् ।
 मूलसूत्रानुसारेणच्छेदः संयुज्यते यथा ॥ २८ ॥
 अस्य रेखा तथा कार्या सर्वश्रेयःप्रसाधनी ।
 मेरोरस्य च शृङ्गाणि सिंहकर्णेर्विभूषयेत् ॥ २९ ॥
 मञ्जरीं पद्मकोशाग्रतुल्यां सर्वत्र कारयेत् ।
 जयं लक्ष्मीं यशः कीर्त्तिं सर्वा(नि?णी)ष्टफलानि च ॥ ३० ॥
 करोति सर्वतो भद्रं सर्वतोभद्रकः कृतः ।

३ सर्वतोभद्रः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विभागशतभाजिने ॥ ३१ ॥

१. 'यो' क. पाठः । २. 'काः' ख. पाठः । ३. 'यो भाग' क. पाठः ।
 ४. 'बो' ख. पाठः । ५. 'बीः', ६. 'नीः' क. पाठः ।

विमानं विभजेत् प्राज्ञः श्रेयःपुष्टिसुखावहम् ।
 भद्रैश्चतुर्भिस्तत् कुर्यात् कर्णप्राग्ग्रीवकैस्तथा ॥ ३२ ॥
 पञ्चभूमिर्भवत्येष यदि वा त्रिविधा भवेत् ।
 हस्तास्त्रिंशद् भवेज्ज्येष्ठो मध्यमः पञ्चविंशतिः ॥ ३३ ॥
 स्यादेकविंशतिर्हस्तात् कनीयान् षोडशाथवा ।
 जातिशुद्धो भवेदेको मञ्जर्या वै परो भवेत् ॥ ३४ ॥
 मिश्रकोऽन्यो विमानानामिति संख्या त्रिधोदिता ।
 ज्येष्ठो मिश्रकनिर्माणः स च कौलाशभद्रकृत् (?) ॥ ३५ ॥
 मध्यमो जातिशुद्धः स्यात् कनीयान् मञ्जरीयुतः ।
 पञ्चभागयुतं भद्रं विस्तरेण प्रकीर्तितम् ॥ ३६ ॥
 कर्णप्राग्ग्रीवविस्तारः कर्तव्यो भागसंमितः ।
 भागार्धं क्षोभणे कार्यं तल्लिपं तल्लालान्तरं (?) ॥ ३७ ॥
 गुप्तकर्णं तु कर्तव्यं यदिच्छेलक्षणां न्वितम् ।
 तस्माद् भद्रस्य निष्कंशं (?) भागेनैकेन कारयेत् ॥ ३८ ॥
 मिश्रकस्य चतुर्भागं भद्रं कुर्याद् विचक्षणः ।
 पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा खुरपिण्डकया सह ॥ ३९ ॥
 द्विभा(गा) रथिका कार्या भूमिः स्याच्चतुरंशका ।
 द्वितीयार्धाशहीना च तृतीया भूमिरिष्यते ॥ ४० ॥
 चतु(र्थे?थीं) तु त्रिभिर्भागैरर्धहीना तु पञ्चमी ।
 उदयो भूमिकाया यः कूटं कुर्यात् तदर्धतः ॥ ४१ ॥
 अर्धेन कुम्भिकां कुर्यादुच्छालकसमन्विताम् ।
 ऊर्ध्वभवस्तु (?) पञ्चम्या वेदिका भागमुच्छ्रिता ॥ ४२ ॥
 घण्टा षड्भागविस्तारा कार्या भागद्वयोच्छ्रिता ।
 घण्टोत्सेधं त्रिभिर्भागैर्विभजेत् तदनन्तरम् ॥ ४३ ॥
 भागिकानि प्रकुर्वीत कण्ठग्रीवाण्डकानि च ।
 भागं कण्ठप्रदेशः स्याद् दण्डिकायाः समुच्छ्रितिः ॥ ४४ ॥
 घण्टार्धेन विधातव्या द्विभागा कलशोच्छ्रितिः ।
 खुरसेनादिकं सर्वं कर्तव्यं पूर्ववत् तथा ॥ ४५ ॥

भद्रं मनोरमैश्चेह सिंहकर्णैर्विभूषयेत् ।

पञ्चव्यासेन सूत्रेण पञ्चकोशं समालिखेत् ॥ ४६ ॥

लतातयो(?)भवेदेषां लताभिस्तं प्रकल्पयेत् ।

मिश्रको मिश्रितैरङ्गैः शुद्धः स्याद् भूमिकान्वितः ॥ ४७ ॥

५ विमानः ।

नन्दनस्य भवेत् सीमा द्वात्रिंशद्वस्तनिर्मितः ।

अष्टाष्टकविभागेन चतुःषष्टिपदो हि सः ॥ ४८ ॥

भागैश्चतुर्भिर्गर्भोऽस्य शेषं भिन्न्यन्धकारिका ।

भद्रं गर्भसमं कार्यं तदूर्ध्वेनास्य निर्गमः ॥ ४९ ॥

द्वौ रथौ पार्श्वतो भूयः सर्वतः कर्णमूत्रतः ।

पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला भागसंमिता ॥ ५० ॥

षड्(भ?भू)मिरेष भूमिः स्यादेकैका द्वादशांशका ।

रेखास्कन्धाण्डकादीनां कैलासे(न) समाकृतिः ॥ ५१ ॥

नन्दनो नन्दयन्त्येष समृद्धा(द्ध्या)हन्ति चापदः ।

५ नन्ददनः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पञ्चविंशतिहस्तके ॥ ५२ ॥

सूत्रपातं ततः कुर्यात् कर्मायतमुखायतम् (?) ।

ततः सीमार्थसूत्रेण सम्यग् वृत्तं समालिखेत् ॥ ५३ ॥

ततस्तदष्टाविंशत्या भजेद् भागैर्यथापदम् ।

निर्मापये(शालार्धेन?त् तदर्धेन शाला)दिक्मूत्रसंश्रिताः ॥ ५४ ॥

तासां तु मध्यगाः कार्या एकैकस्य रथास्त्रयः ।

अन्ये चार्धरथाः कार्याः शालाकर्णसमाश्रिताः ॥ ५५ ॥

भागषट्कोच्छ्रिता जङ्घा भागार्धेन तु मेखलाः ।

भागेनान्तरपत्रं स्याद् भागं चोद्वृत्तमण्डकम् ॥ ५६ ॥

अर्धभागोच्छ्रिता जीवा विष्कम्भेन चतुष्पदाम् (?) ।

शिखरस्योच्छ्रयो भागैरेकादशभिरिष्यते ॥ ५७ ॥

सर्वेषामेष लतिना मात्रिधा द्विगुणो हि सः (?) ।

विस्ताराद् द्विगुणं सूत्रं स्कन्धाद्यं चापि षड्गुणम् ॥ ५८ ॥

सुत्तानितं(?) समाकृष्य पञ्चकोशं समालिखेत् ।

स पञ्चविंशतिर्हस्ता ज्येष्ठः षोडश मध्यमः ॥ ५९ ॥

कनीयान् द्वादशकरच्छस्यो(?) विजानता ।

ज्येष्ठस्य भागसंख्येयमेतदर्धेन मध्यमः ॥ ६० ॥

मध्यमस्य तथार्धेन कनीयान् भागसंख्यया ।

भागषट्कमिता जङ्घा ज्येष्ठस्य परिकीर्तिता ॥ ६१ ॥

सप्तभागोच्छ्रिता सा स्यान्मध्यमे सकनीयसि ।

सर्वेषां लतिनामेष क्षेत्रेण विधिरीरितः ॥ ६२ ॥

स्वस्तिकोऽयं समाख्यातः स्वस्तिश्रेयस्करो नृणाम् ।

इदानीं मुक्ताकोणस्य (सू?ल)क्ष्म द्रूमः स तु त्रिधा ॥ ६३ ॥

षोडश द्वादशाष्टौ च हस्तसंख्या परस्य च ।

ज्येष्ठः षोडशभिर्भागैर्मध्यो द्वादशभिर्भवेत् ॥ ६४ ॥

कनीयानष्टभिः प्रोक्तः प्रासादो मुक्तकोणकः ।

मुक्तकोणस्वस्तिकयोरिदमेवान्तरं भवेत् ॥ ६५ ॥

स्वस्तिको वर्तुलस्तत्र चतुरश्रोऽपरः स्मृतः ।

पञ्चभागोन्नता जङ्घा द्वौ भागौ रथिका भवेत् ॥ ६६ ॥

भागैश्चतुर्भिः कर्तव्या द्वितीया तस्य भूमिका ।

शेषास्त्वर्धार्धभागेन विधेयास्त(द्व?)स्य भूमिकाः ॥ ६७ ॥

विधाय नवधा गर्भेस्तैस्त्रयोदशभिर्भवेत् ।

जङ्घापादोनपञ्चाशैराद्यैकः षण्णिको(?) भवेत् ॥ ६८ ॥

७ मुक्तकोणः ।

विस्तारं दशधा कृत्वा षड्भागं मध्यमालिखेत् ।

कर्णा द्विभागिको(?) मध्यं चतुर्धा विभजेत् पुनः ॥ ६९ ॥

तद्वन्मध्ये कृतौ द्व्यंशौ भागिकौ वामदक्षिणौ ।

अङ्गुलीकरसंख्यातैर्विधेयो रथनिर्गमः ॥ ७० ॥

प्राग्ग्रीवैर्विकटैः स्वष्टैः स्तम्भैः सदभूपकर्माभिः(?) ।

एवं गुणसमायुक्तः श्रीवत्सः सुखदो भवेत् ॥ ७१ ॥

अङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वापि चतुरङ्गुलमेव च ।

उदकान्तरकं कार्यं श्रीवत्सो नन्दनोऽत्से नन्दनेऽपि च ॥ ७२ ॥

४ श्रीवत्सः ॥

विस्तारैर्दशधा भक्तैः षड्भा(गा)मञ्जरी भवेत् ।

सर्वतोभद्रवन्मूलकर्णावस्य द्विभागिकौ ॥ ७३ ॥

उदकान्तरम(न्यऽप्य)स्य श्रीवत्सस्येव कल्पयेत् ।

हंसोऽयं कीर्तितः सम्यक् शुभदो लक्षणान्वितः ॥ ७४ ॥

७ हंसः ॥

रुचकोऽप्येवमेव स्यादुदकान्तरवर्जित(ताऽत)म् ।

भित्तयश्चतुरंशेन गर्भो व्यासार्धसंमतः ॥ ७५ ॥

८ रुचकः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विभजेद् दशभिः पदैः ।

विदध्यादर्धमानाख्यं तत्र भ्रान्तमनुक्रमात् ॥ ७६ ॥

भद्रस्य च भवेद् भागैश्चतुर्भिः परिविस्तृतम् ।

एकेनैकेन भागेन द्वौ रथौ वामदक्षिणौ ॥ ७७ ॥

द्विभागविस्तृतौ कर्णौ निर्गमः स्यात् कराङ्गुलैः ।

वर्धमानः क्रियायुक्तो यशोलक्ष्मीं विवर्धयेत् ॥ ७८ ॥ ॥

रुचको वर्धमानो वा श्रीवत्सो हंस एव च ।

य एको रोचते तेषु न्यसेत् तं गरुडे सुधीः ॥ ७९ ॥

पक्षावेतस्य कर्तव्यौ प्रासादार्धविनिर्गमौ ।

नासिकां वैनतेयस्य त्रिगर्भा कारयेदपि ॥ ८० ॥

१२ गरुडः ॥

चतुःषष्टिपदे क्षेत्रे प्रासादं विभजेच्छुभम् ।

क्षेत्रार्धेन च सूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ॥ ८१ ॥

भागैश्चतुर्भिर्जङ्घास्य मेखलाचार्यभागिका ।

पुरतःऽसूरसोयं(?) पृष्ठतश्च गजाकृतिः ॥ ८२ ॥

१३ गजः ॥

चतुःषष्टिपदः सिंहो भद्रं भागचतुष्टयम् ।

अंशकौ मूलकर्णौ च गर्भः षोडशभिः पदैः ॥ ८३ ॥

विस्तारार्थं भवेज्जङ्घा मेखला पदिका भवेत् ।

एकैका रथिकाचास्य भवेद् भागत्रयोच्छ्रिता ॥ ८४ ॥

सर्वतोभद्रवच्चास्या रेखाग्रीवाण्डकादिकम् ।

सिंहाक्रान्तैस्तथा भद्रैः प्रासादः सिंह उच्यते ॥ ८५ ॥

विक्रमार्जवशीलानां प्रासादोऽयं शुभावहः ।

१४ सिंहः ॥

पद्मस्य हस्तसंख्या स्यात् षोडश द्वादशाथवा ॥ ८६ ॥

वर्तुलः स च कर्तव्यः मूत्रं तु स्वस्तिके यथा ।

सर्वे रथाः स्मृताः पद्मपत्राकृतिमनोरमाः ॥ ८७ ॥

उदकान्तरकं कुर्याच्छ्रेयसे नन्दने यथा ।

१५ पद्मकः ॥

स्वस्तिकस्य यथा पूर्वं कथितं मानलक्षणम् ॥ ८८ ॥

तेनैव ङुलक्षलितः सर्वो(?)विदधीत विचक्षणः ।

यथामूलविभक्तस्तु लतिषु स्वस्तिकादिषु ॥ ८९ ॥

यथास्कन्धविभागोऽपि रेखामध्यविभागतः ।

स्वस्तिकाङ्को विधातव्यः शुकना(शो?सो)च्छयाच्छुभः ॥ ९० ॥

प्रासादानां स भागैः स्यात् सप्तभिर्विहितः श्रिये ।

विमाने स धरात्र्यंशन्यूनः कार्यो विपश्चिता ॥ ९१ ॥

कैला(सो च?साच्च)तुरंशोना विधे(ना?या) शुकनासिका ।

सर्वतोभद्रसिंहाख्यौ मेखणां तु विशेषतः ॥ ९२ ॥

षड्भिर्भागैर्विना कार्या शुकनासा विजानता ।

प्रासादोच्चेन सन्धारो विमानाद्याः प्रकीर्तिताः ॥ ९३ ॥

विस्तारार्थेन तद्गर्भो यच्छेषं तेन भित्तयः ।

प्रासादु(सि?)जङ्घोच्छ्रेयेण तुल्यो गर्भतुलोदयः ॥ ९४ ॥

सभित्तिर्गर्भतुल्यः स्यात् सन्धारेषु तुलोदयः ।

स विधेयः पुनर्व्यासाद् यदि वा किञ्चिदुन्नतः ॥ ९५ ॥

मूलसूत्रं तु दशधा ++ (मश्य?)समालिखेत् ।

गर्भसूत्रं प्रतिष्ठाप्य सिंहकर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ९६ ॥

सार्धभागेन सूत्रेण मध्यमस्य समालिखेत् ।

उरो द्विभागतुल्यं तु मस्तकं भागमुच्छ्रितम् ॥ ९७ ॥

अर्धेन वोच्छ्रयस्तस्याः पक्षोच्छ्राया द्विभागिकाः ।

उरो (लेख्य?) च सीमान्ते सूत्रेणच्छन्दमादिशेत् ॥ ९८ ॥

नवधा दशधा चैव सिंहक(र्मा?र्णा?)बुभौ स्मृतौ ।

एकपङ्क्तिस्ततो भागा(?) उदयात् पञ्चभागिकः ॥ ९९ ॥

मूरसेनो द्वितीयस्तु स्वात् समोदयविस्तृतिः ।

उदयात् सार्धविस्तीर्णं सिंहकर्णस्त्रिसंकुला(?) ॥ १०० ॥

कामलान् मल्लकांश्चान्यान् सिंहकर्णात् प्र(लोप?कल्प)येत् ।

प्रासादानां हि सर्वेषां सर्वमेतद् विभूषणम् ॥ १०१ ॥

यस्य यत्रोचितं स्थानं तत् तत्र विनिवेशयेत् ।

निर्मितौ बलभेस्तिर्यक् सूत्रं कुर्वीत सप्तधा ॥ १०२ ॥

पञ्चभागांश्च मुखतस्तेनैवांशेन कल्पयेत् ।

मेखलान्तरपत्रे च जम्भाकुम्भकमेव च ॥ १०३ ॥

पञ्चभागोच्छ्रितं कुर्यात् तद्वच्छिखरमुच्छ्रितम् ।

कीर्तितानि विमानानि यान्येव सुखवर्त्मनि ॥ १०४ ॥

तान्येव स्थावरत्वेन प्रासादा इति विश्रुताः ।

महेश्वरस्य कैलासो विष्णोस्तु गरुडाभिधः ॥ १०५ ॥

कार्यः प्रजापतेः पद्मो गणनाथस्य च द्विपः ।

न खल्वेतेऽन्यदेवानां विधातुमुचिताः स्मृताः ॥ १०६ ॥

यस्तु त्रिविष्टपः स स्यात् सर्वदेवनिकेतनः ।

अस्मात् तु येऽन्ये प्रासादाः स्मृतास्तेऽनेकरूपिणः ॥ १०७ ॥

सर्वेषामेव देवानामभेदेन भवन्ति ते ।

जगत्यां विस्तरः कार्यः प्रासादोच्छ्रयसंमितः ॥ १०८ ॥

गर्भार्धेनोच्छ्रयस्तस्याः शुभदः परिकीर्तितः ।
 मण्डपस्य षडंशार्धो(?)पञ्चमांशादथ स्मृतः ॥ १०९ ॥
 कर्णप्रासादकाः कार्याः प्रासादस्य त्रिभागतः ।
 पूर्वापरमुखाः कार्या एते याम्योत्तराननाः ॥ ११० ॥
 ऐन्द्रे याम्ये वारुणे च कौबेरे च यथाक्रमम् ।
 दिग्भागेषु चतुर्ष्वेषु बलभीं विनिवेशयेत् ॥ १११ ॥
 गर्भविस्तारविस्तीर्णां द्वौ त्रिभागौ मुखायताम् ।
 इति बाह्यपरीवारे जङ्घा प्रासादमानतः ॥ ११२ ॥
 तिर्यगायतमारोप्य सूत्रं गर्भेण मण्डपे ।
 (गुरुकक्षोऽथ?) कर्तव्या गवाक्षस्तम्भसंयुताः ॥ ११३ ॥
 प्रासादविस्तरात् कार्यो द्विगुणो मण्डपः सदा ।
 मण्डपस्य (स?स्त्र)विस्तारा(द्) जगती द्विगुणा बहिः ॥ ११४ ॥
 कर्णप्रासादकाः कार्याः प्रासादस्यार्धतोऽपि वा ।
 तेषामध्यर्धतः कुर्याद् बलभीनां निवेशनम् ॥ ११५ ॥
 अनेन क्रमयोगेन बाह्याद् बाह्यं सुसंवृतम् ।
 य(दा?था) हि शोभते राजा केयूराङ्गदकुण्डलैः ॥ ११६ ॥
 तथा प्रासादराजोऽयं शोभते भूषणैर्निजैः ।
 ध्वास्यार्हास्यातिसौम्यस्य(?) श्रीकीर्तिविजयावहः ॥ ११७ ॥
 अनेन विधिना न्यस्तः प्रासादः स्यात् सदा नृणाम् ।
 आदित्यं पूर्वतो न्यस्येत् कुमारं पूर्वदक्षिणे ॥ ११८ ॥
 दक्षिणे मातृदे(वै?वां)स्तु गजास्यं दक्षिणोपरि ।
 विन्यसेद् वारुणे गौरीं वायव्येऽपि च चण्डिकाम् ॥ ११९ ॥
 विष्णुं कुबेरदिग्भागे तथैशान्यां महेश्वरम् ।
 अन्येषामपि देवानां कथ्यन्ते तु क्रमोऽधुना ॥ १२० ॥
 तत्रैशान्यां दिशि न्यस्येदीशानं लोकनायकम् ।
 दानवानां निहन्तारं पूर्वस्यामपि वासवम् ॥ १२१ ॥
 वैश्वानरं तथाग्नेय्यां धर्मराजं च दक्षिणे ।
 नैर्ऋत्यां निर्ऋतिं न्यस्येत् प्रतीच्यां तु प्रचेतसम् ॥ १२२ ॥

मेर्वादिषोडशप्रासादादिलक्षणो नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ।

वायुं वायव्यदिग्भागे कुबेरमपि चोत्तरे ।

अष्टौ ह्येते महात्मानो लोकपालाः प्रकीर्तिताः ॥ १२३ ॥

पालयन्ति जगत् सर्वं स्वस्वस्थाने प्रतिष्ठिताः ।

पुर(कर्कट?कर्वट)दुर्गेषु ग्रामेषु नगरेषु च ॥ १२४ ॥

क्रमेणानेन विन्यस्ताः स्युः प्रजानां सुखावहाः ।

न यत्र देवताबाधस्तत्र द्वारं प्रकल्पयेत् ॥ १२५ ॥

प्रासादस्यानुसारेण भवेद् द्वारं शुभावहम् ।

अथातः प्रोच्यते सम्यग् द्वारमानमनुक्रमात् ॥ १२६ ॥

ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां द्रव्यं स्तम्भानुसङ्गतम् ।

एकहस्ते भवेद् द्वारं प्रासादे षोडशाङ्गुलम् ॥ १२७ ॥

द्विकरे द्विगुणं तत् स्यात् त्रिकरे द्विकरं शुभम् ।

चतुष्करे चतुःषष्टिरङ्गुलानि प्रशस्यते ॥ १२८ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रतिकरं त्र्यङ्गुला वृद्धिरिष्यते ।

द्वारोदयकरैस्तुल्यान्यङ्गुलानि नियोजयेत् ॥ १२९ ॥

(षोड्याजयवान्यालार्थ?) ध्रुवके चतुर(र?)ङ्गुले ।

विस्तारो द्विगुणस्तस्य स्तम्भपिण्डं स एव हि ॥ १३० ॥

एकद्वित्रिचतुष्पञ्चपदसप्तककरावधि ।

द्वारविस्तारभागेन स्तम्भः सम्यग विधीयते ॥ १३१ ॥

चतुर्भागेन कर्तव्या सीमास्तम्भः प्रमाणतः(?) ।

तथा स्तम्भस्य बाहुल्याच्चतुर्भागविभागविना (?) ॥ १३२ ॥

+भागौ तत्र कर्तव्यौ हीरग्रहणमुच्छ्रितम् ।

भागत्रयेण कर्तव्यः पट्टस्य च समुच्छ्रयः ॥ १३३ ॥

भागेनैकेन नीस्यातव्यविस्तारं भूत्रिभागरच्यकिम्(?) ॥

पट्टहस्ते विधातव्यमङ्गुलद्वयनिर्गमम् ॥ १३४ ॥

+ ड + + + + स्तारः स्तम्भतुल्यः प्रशस्यते ।

एकैकमङ्गुलं (ला?) पट्टपार्श्वयोरधिकस्ततः ॥ १३५ ॥

पट्टदस्य विस्तारः(?) कार्यश्चतुर्भागविभाजितः ।

भागेनैकेन चोत्सेधस्तुलाधारणमिष्यते ॥ १३६ ॥

तुलाधारणकोत्सेधाच्चतुर्भागविभाजितात् ।
 भागमेकं परित्यज्य पिण्डस्तस्य विधीयते ॥ १३७ ॥
 मात्राहीना भवेन्मेढ्यां तावन्न्यस्येच्छलान्तले (?) ।
 द्वौ भागौ मूलभागेन जयन्तीपिण्डविस्तरौ ॥ १३८ ॥
 इति हीरग्रहादीनां समासाल्लक्ष्मकीर्तनम् ।
 पञ्चांशाभ्यधिकं स्तम्भविस्तारस्थेन कुम्भिका (?) ॥ १३९ ॥
 कुर्वीत स्तम्भतः सार्धां गर्ग(?)कुम्भस्य विस्तृतीः ।
 अथवा स्तम्भकर्णेन स्तम्भाग्रद्विगुणा क्वचित् ॥ १४० ॥
 पादोनस्तम्भविस्तारादग्रकुम्भे समुच्छ्रितिः ।
 स्तम्भविस्तारकर्णाद् वा यद्वा पिण्डोऽग्रकुम्भके ॥ १४१ ॥
 तस्य भागान् प्रवक्ष्यामो यथाकुम्भं स युज्यते ।
 विभक्तोऽत्र त्रिधा पिण्डो भागेनैकेन पुत्तली ॥ १४२ ॥
 चतुर्भिस्तस्य मध्यस्य (द्यखं?) पद्मं समालिखेत् ।
 उच्छाले पञ्चधा भक्ते त्रिभिरावर्तनं ++ ॥ १४३ ॥
 वर्तनं योषव्येत्(?) किञ्चिन्न च खल्वं समाचरेत् ।
 वर्तने कुम्भकुम्भौ तु मूत्रं दत्त्वा सुतानितम् ॥ १४४ ॥
 पद्मनालासमा स स्यान्न भवेत् पङ्क्तिवर्जिता (?) ।
 नवाधोच्चाहा(?)लके भक्ते वीरगण्डस्तु भागिकः ॥ १४५ ॥
 एकेनैकेन भागेन विधेया पट्टिकट्टिका ।
 (ध्वसंछाकाल?)कर्तव्यं भागद्वितयसंमितम् ॥ १४६ ॥
 तलकुम्भकपिण्डं तु पञ्चधा प्रविभाजयेत् ।
 भागेनैकेन पद्मं स्याद् भागेन कलशं लिखेत् ॥ १४७ ॥
 द्वाभ्यां समालिखेत् कुम्भं भागेनैकेन पट्टिकाम् ।
 वर्तमाना चत्रा(?)कार्या शोभा स्यादस्य यावतः ॥ १४८ ॥
 एष कुम्भक्रमः प्रोक्तः स्तम्भपादे व्यवस्थितः ।
 तलपट्टस्य पिण्डस्तु भागपट्टसमो भवेत् ॥ १४९ ॥
 द्रव्येष्वत्र हि सर्वेषु सम्यक् शोभा विवक्षिता ।
 न्यूनातिरिक्तमप्यस्मान्मानेष्वङ्गुलमाचरेत् ॥ १५० ॥

द्वारामुदयविस्तारो द्रव्यसंस्थानमेव च ।

पूर्वमेव यथोद्दिष्टं (य?त)था सर्वमनुस्मरेत् ॥ १५१ ॥

पिण्डेन त मूलशाखाया द्वितीया प विधीयते ।

सपायते सपादन प्रत्ययदेनाथ सार्धनरूपशाखा प्रशस्यते(?)॥१५२॥

अर्धेन मूलशाखाः समा चैव बाह्यशाखा शाखां प्रकल्पयेत्(?) ।

ऊर्ध्वपञ्चमशाखाया (दु?)सप्तमी नवमी च सा ॥ १५३ ॥

रूपशा++++स्यान्न न्यूना नाधिकापि च ।

विस्तरार्थं तु कर्तव्यः सर्वासामेव निर्गमः ॥ १५४ ॥

शाखाविस्तारविस्तीर्णा(नु?न्यु)त्तरङ्गानि कारयेत् ।

सार्धेन ध्रुवशाखानां पिण्डेनोदुम्बरोदयः ॥ १५५ ॥

उदुम्बरस्य पिण्डेन सिंहवक्राणि कारयेत् ।

तदर्थं विलसन्निः स्यात् तत्समा भूमिरङ्गिका ॥ १५६ ॥

तलन्याससमः पट्टः पिण्डपूर्वव्यवस्थितः ।

कूटाकारैर्विचित्रैश्च शोभनै रूपकर्मभिः ॥ १५७ ॥

पत्रजातैरनेकैश्च कण्ठं कुर्याद् यथेप्सितम् ।

पाचकः कटुतीक्ष्णाद्यैरनुसाररसैर्यथा ॥ १५८ ॥

अन्वीक्ष्य विपचेत् तद्वत् स्थगतिः सर्वमाचरेत् ।

यदुक्तं यदनुक्तं च तत् समग्रमपि स्फुटम् ॥ १५९ ॥

(युक्ता)युक्तं समालोच्य यथाशोभं समाचरेत् ।

आरभ्य मेरोरिति षोडशैते प्रासादमुख्याः कथिता यथावत् ।

संक्षेपतो लक्ष्म तथा जगत्यां द्वारादिसम्बन्धि च(द्वा?)दारुमानम् ॥१६०^१/_२॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

मेर्वादिषोडशप्रासादलक्षणजगतीलक्षणद्वारादिकला नाम

(पञ्चमोऽपञ्चपञ्चाशो)ऽध्यायः ॥

अथ रुचकादिचतुष्पष्टिप्रासादकः षट्पञ्चाशोऽध्यायः ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादाञ्च शिखरान्वितान् ।

रुचकादींश्चतुःषष्टिं नामलक्षणतः क्रमात् ॥ १ ॥

पूर्वं यानि विमानानि पञ्चोक्तान्यभवंस्ततः ।

तदाकारभृतः सर्वे प्रासादाः पञ्चविंशतिः ॥ २ ॥

शिखरैर्विविधाकारैरेकेनाण्डेन भूषिताः ।

केचिदण्डत्रयोपेताः केचित् पञ्चाण्डकान्विताः ॥ ३ ॥

ईषद्भेदेन ते ज्ञेयाः प्रासादाः सर्वकामदाः ।

सौवर्णा राजताश्चैव देवानां सततं प्रियाः ॥ ४ ॥

मणिमुक्ताप्रवालाद्यैर्भूषणैः सुविभूषिताः ।

रीतिकाताम्रघोषाद्यैः पिशाचोरगरक्षसाम् ॥ ५ ॥

देवलोका भवन्त्येते कामस्वच्छन्दचारिणः ।

पाताले चापि निर्दिष्टाः पाषाणैः स्फटिकैस्तथा ॥ ६ ॥

इष्टकाकाष्ठपाषाणैर्मर्त्यलोकेऽपि नन्दकाः ।

सुखदाश्च भवन्त्येते कर्तुः कारयितुस्तथा ॥ ७ ॥

लक्षणेनान्वितानेतान् कथयामो यथाविधि ।

पुराणां भूषणार्थाय श्रुक्तिमुक्तिप्रदा नृणाम् ॥ ८ ॥

रुचको भद्रकश्चैव हंसो हंसोद्भवस्तथा ।

प्रतिहंसस्तथा नन्दो नन्द्यावर्तो धराधरः ॥ ९ ॥

वर्धमानोऽद्रिकूटश्च श्रीवत्सोऽथ त्रिकूटकः ।

श्रुक्तकोणो गजश्चैव गरुडः सिंह एव च ॥ १० ॥

भवश्च विभवश्चैव पद्मो मालाधरस्तथा ।

वज्रकः स्वस्तिकः शङ्कुर्मलयो मकरध्वजः ॥ ११ ॥

इत्येते नामतः प्रोक्ताः प्रासादाः पञ्चविंशतिः ।

एतेषां रूपनिर्माणं कथयामो यथाविधि ॥ १२ ॥

रुचका(द्य/ष्टादशैषां चतुरश्राः प्रकीर्तिताः ।

भवश्च विभवश्चैव चतुरश्रायतोऽथवा ॥ १३ ॥

पद्मो मालाधरश्चैव वृत्तावेतावुदाहृतौ ।

मलयो मकराख्योऽथ द्वौ तु वृत्तायताविमौ ॥ १४ ॥

वज्रकः स्वस्तिकः शङ्कुरित्थमष्टाश्रयस्त्रयः ।

ललिताः कथिता ह्येते ब्रूमोऽन्यान् मिश्रकानथ ॥ १५ ॥

सुभद्रो योकिटश्च(?) सर्वतोभद्र एव च ।

सिंहकेसरिसंज्ञोऽन्यश्चित्रकूटो धराधरः ॥ १६ ॥

तिलकाख्यः स्वतिलकस्तथा सर्वाङ्गसुन्दरः ।

नवामी मिश्रकाः प्रोक्ताः कथ्यन्ते (साधकारिकाः?) ॥ १७ ॥

केसरी सर्वतोभद्रो नन्दनो नन्दिशालकः ।

नन्दीशो मन्दिराख्यश्च श्रीवृक्षश्चामृतोद्भवः ॥ १८ ॥

हिमवान् हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः ।

इन्द्रनीलो महानीलो भूधरो रत्नकूटकः ॥ १९ ॥

वैडूर्यः पद्मरागश्च वज्रको मुकुटोत्कटः ।

ऐरावतो राजहंसो गरुडो वृषभस्तथा ॥ २० ॥

मेरुः प्रासादराजश्च देवानामालयो हि सः ।

+संयोगे तु संधारान् कथयामो यथाविधि ॥ २१ ॥

लतात्रिपुष्कराख्यौ च पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः ।

नवात्मकश्च निर्गूढः प्रासादाः पञ्च संज्ञिताः ॥ २२ ॥

आद्यः पञ्चाण्डकः कार्यः प्रासादः केसरीति यः ।

सर्वतोभद्रको यस्तु विधेयः स नवाण्डकः ॥ २३ ॥

त्रयोदशाण्डकस्तु स्यान्नन्दनो नाम यो भवेत् ।

नन्दिशालस्तु यः प्रोक्तः स स्यात् सप्तदशाण्डकः ॥ २४ ॥

अण्डकैरेकविंशत्या नन्दीशः परिवारितः ।

पञ्चविंशाण्डकोपेतं मन्दरं कारयेद् बुधः ॥ २५ ॥

श्रीवृक्षः शस्यते चैतेष्वेकोनत्रिंशताण्डकैः ।

स्यात् त्रयस्त्रिंशताण्डैस्तु प्रासादो ज्योतीश्वरः ॥ २६ ॥

अण्डकैः क्रियते सप्तत्रिंशता हिमवानपि ।
 सैकया हेमकूटस्तु स्याच्चत्वारिंशताण्डकैः ॥ २७ ॥
 पञ्चचत्वारिंशताण्डैः कैलासो नाम नामतः ।
 भवत्येकोनपञ्चाशदण्डकः पृथिवीजयः ॥ २८ ॥
 इन्द्रनीलश्च यः प्रो(कारः? क्तः स त्रि)पञ्चाशताण्डकैः ।
 सप्तपञ्चाशता युक्तो महानीलस्तथाण्डकैः ॥ २९ ॥
 एकषष्ट्यण्डकोपेतः प्रासादो भूधरो भवेत् ।
 पञ्चषष्ट्यण्डकैर्युक्तो रत्नकूटः प्रशस्यते ॥ ३० ॥
 नवषष्ट्यण्डकः कार्यो वैदूर्यः शुभलक्षणः ।
 त्रिसप्तत्यण्डकयुतः पद्मरागो विधीयते ॥ ३१ ॥
 अण्डकैः सप्तसप्तत्या प्रासादो विजयाभिधः ।
 एकाशीत्यण्डकोपेतो विधेयो मुकुटोत्कटः ॥ ३२ ॥
 ऐरावतस्तु पञ्चाशीत्यण्डकः परिकीर्तितः ।
 नवाशीत्यण्डकैर्युक्तो राजहंसः प्रशस्यते ॥ ३३ ॥
 नवत्या सप्तयुतया प्रासादो वृषभोऽण्डकैः ।
 शतेनैकोत्तरेणाण्डैर्मेरुः प्रासादराट् स्मृतः ॥ ३४ ॥
 हरेर्हिरण्यगर्भस्य + + + भास्करस्य च ।
 मेरुरेष विधातव्यो नान्यस्य त्रिदिवौकसः ॥ ३५ ॥
 मेरोः प्रासादराजस्य देवानामालयस्य च ।
 कर्ता क्षत्रिय एवास्य वै(श्य?श्योऽ)स्य स्थपतिर्भवेत् ॥ ३६ ॥
 एवं विधीयमानेऽस्मिन् मेरौ द्वावपि नन्दतः ।
 वास्तुशास्त्रविधिज्ञोऽपि क्षत्रियः स्थपतिर्यदि ॥ ३७ ॥
 तदास्य सत्यं शौचं च विक्रमश्च विनश्यति ।
 ईश्वरोऽपि यदा विप्रो मेरुप्रासादकृद् भवत् ॥ ३८ ॥
 कर्तुः कारयितुः पीडा पूजा चास्य न तादृशी ।
 ब्राह्मणः स्थपतिश्चास्य वास्तुशास्त्रे विशारदः ॥ ३९ ॥
 घणिकर्मणि वर्तेत धनवानपि यद्यसौ ।
 सर्वविशेषु निर्दिष्टः कर्ता स्थपतिरेव सः ॥ ४० ॥

तत्रस्था देवताः सर्वास्तस्य वृद्धिः कथञ्चन ।
 वास्तुशास्त्रविधिज्ञोऽपि तत्तत् कारयिता यदि ॥ ४१ ॥
 राजापि क्षत्रियः कर्ता यदा मे(रु?रो)र्भवेत् तदा ।
 राष्ट्रभङ्गो भवेत् तस्य प्रजा यान्ति दिशो दश ॥ ४२ ॥
 क्षत्रियेण नरेन्द्रेण कर्ता स्थपतिना यदि (?) ।
 मेरोः पूजा भवेत् तत्र क्षत्रियोऽप्यक्षयं पदम् ॥ ४३ ॥
 एकैकस्य च यन्मानं सकर्णस्य च यद्वशम् ।
 प्रासादानां च सर्वेषां तत् सम्यगभिधीयते ॥ ४४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागविवर्जिते ।
 भागिका सर्वतो भित्तिः शेषं गर्भगृहं भवेत् ॥ ४५ ॥
 तस्याग्रतः पुनः कार्यो भागद्वयविनिर्गतः ।
 विस्तारेण त्रिभागश्च प्राग्ग्रीवःस्तम्भभूषितः ॥ ४६ ॥
 पीठोत्सेधस्य भागेन भवेज्जङ्घा द्विभागिका ।
 भागार्ध + तरं पत्रं(?) पादेन स्याद् वरण्डिका ॥ ४७ ॥
 सपादांश्चतुरो भागान् शिखरस्योच्छ्रयः स्मृतः ।
 त्रिगुणेन च सूत्रेण पद्मकोशं समालिखेत् ॥ ४८ ॥
 स्कन्धकोशान्तरं चास्य भागैः प्रविभजेत् त्रिभिः ।
 भवेद् ग्रीवार्धभागेन भागेनामलसारकम् ॥ ४९ ॥
 पद्मशीर्षं च भागार्धाद् भागेन (+ लसीः?) स्मृतः ।
 इत्युक्तो रुचकाख्योऽयं

रुचकः ॥

भद्रकाख्योऽथ कथ्यते ॥ ५० ॥

+++++

+++++ ॥ ५१ ॥

भद्रकः ॥

भद्रं तु कर्णयोर्मध्ये कारयेदुदकान्तरम् ।

तदा हंसो विजानीयात् प्रासादो देवतालयः ॥ ५२ ॥

हंसः ॥

हंसस्येव यदा कुर्याद् भद्रस्यान्ते जलान्तरम् ।

तदा हंसोद्भवो नाम प्रासादः परिकीर्तितः ॥ ५३ ॥

हंसोद्भवः ॥

रथान्तकर्णयोश्चैवं यदा स्यादुदकान्तरम् ।

प्रतिहंसस्तदा प्रोक्तः प्रासादोऽयं मनोरमः ॥ ५४ ॥

प्रतिहंसः ॥

प्राग्ग्रीवा रुचकस्यैव सीमाविस्तारविस्तृताः ।

निर्गता भद्रमानेन तदा नन्दः स उच्यते ॥ ५५ ॥

नन्दः ॥

प्राग्ग्रीवैर्भद्रमानेन नन्दो यदि विभूष्यते ।

निर्गतैर्भागमानेन चतुरश्रैः समन्ततः ॥ ५६ ॥

प्राग्ग्रीवः पुरतः कार्यः तत्तम्भद्वयविभूषितः ।

नन्द्यावर्तस्तदा प्रोक्तः प्रासादो विजयावहः ॥ ५७ ॥

नन्द्यावर्तः ॥

नन्द्यावर्ते यदा कुर्याद् भद्रान्ते जलनिर्गमम् ।

धराधरस्तदा ज्ञेयः प्रासादो भुवनोत्तमः ॥ ५८ ॥

धराधरः ॥

दशधा भाजिते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।

भागद्वयेन कर्णः स्याद् भजेच्छेषं च सप्तधा ॥ ५९ ॥

भागत्रयेण रथको मध्यमोऽस्य विधीयते ।

द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु भागाभ्यां रथकौ वामदक्षिणौ ॥ ६० ॥

भागस्यैव त्रिभागेन भवेदस्य विनिर्गमः ।

कथितो वर्धमानोऽयं

वर्धमानः ॥

गिरिकूटोऽथ कथ्यते ॥ ६१ ॥

वर्धमानस्य भद्रस्थमध्यसूत्रेण योजयेत् ।

कर्णिसूत्रं तद्ग्राभ्यां न्यस्येत् सूत्रचतुष्टयम् ॥ ६२ ॥

तदुत्पन्नैस्तु भद्रस्थकर्णैः स्याच्चित्रकूटकः ।

गिरिकूटः ॥

कर्णान्ते च रथान्ते च यदि स्यात् सलिलान्तरम् ॥ ६३ ॥

वर्धमानस्य भवति श्रीवत्सः स्यात् तदा शुभः ।

श्रीवत्सः ॥

गिरिकूटस्य संस्थाने तद्रूपे विनिवेशिते ॥ ६४ ॥

कर्णा (न्) प्रतिरथेष्वस्य निखिलेष्वपि योजयेत् ।

प्राग्वत् प्रतिरथोद्धूतमूत्राभ्यां कर्णवर्त्मना ॥ ६५ ॥

त्रिकूटाख्यस्तदैव स्यात् प्रासादो देवतालयः ।

त्रिकूटः ॥

त्रिकूटस्यैव संस्थाने भद्रकर्णपरिच्युते ॥ ६६ ॥

स्वरूपभद्रसंस्थाने मुक्तकोणः प्रजायते ।

मुक्तकोणः ॥

चतुर्भिः (विं)स्तृतेर्भागैः क्षेत्रे पञ्चभिरायते ॥ ६७ ॥

भागेन भित्तिः कर्तव्या शेषं गर्भगृहं भवेत् ।

अस्य क्षेत्रार्थमूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ॥ ६८ ॥

पुरतः शूरसेनोऽस्य पृष्ठतोऽपि गजाकृतिः ।

प्रासादोऽयं गजो नाम गणेशस्य विधीयते ॥ ६९ ॥

गजः ॥

वर्धमानस्य संस्थाने गरुडं विनिवेशयेत् ।

तस्य पक्षौ विधातव्या प्रासादार्थेन निर्गतौ ॥ ७० ॥

पक्षयोस्तु दशस्तस्य (?) वर्धमानं विभाजयेत् ।

जातिशुद्धा रथाः कार्याः पार्श्वयोर्गरुडो भवेत् ॥ ७१ ॥

गरुडः ॥

वर्धमानस्य संस्थाने प्राग्वत् कर्णौ नियोजयेत् ।

द्विभन्गा रथिका कार्यौ शेषं भद्रं प्रकल्पयेत् ॥ ७२ ॥

जङ्घास्य पञ्चभिर्भागैः पीठं चास्य तदर्धतः ।
 विरण्ड्यर्धाशिकाद्विश्च(?) भागश्चान्तरपत्रयोः ॥ ७३ ॥
 तथोत्सेधत्रिभागैश्च नवभिः शिखरोच्छ्रितः ।
 कुम्भश्चामलसारश्च सिंहेऽ(स्मिद्रा?स्मिन् भा)गमा(ग?न)तः ॥ ७४ ॥
 सिंहः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भिर्भाजितैः पदैः ।
 सीमाविस्तारमानेन रथांस्तस्य प्रकल्पयेत् ॥ ७५ ॥
 पादेनैकेन निर्यातान् दिक्षु सर्वास्वनुक्रमात् ।
 प्राग्ग्रीवान् पुनरस्यैव भागद्वितयविस्तृतान् ॥ ७६ ॥
 पदषड्भागनिर्यातान् विदधीत चतुर्दिशम् ।
 चतुर्भागायतो गर्भः कार्योऽस्य द्वयंशविस्तृतः ॥ ७७ ॥
 जङ्घोत्सेधश्च पीठं च यथा भद्रे तथा भवेत् ।
 प्रासादो भवसंज्ञोऽयं देवतात्रितयाश्रयः ॥ ७८ ॥
 भव ॥

भवस्यैव यदा कुर्याद् रथान् सजलनिर्गमान् ।
 द्विभङ्गं संश्रयोऽन्यः सा(?)प्रासादो विभवाभिधः ॥ ७९ ॥
 (त्रिलिङ्गः?) ॥

अष्टधा भाजिते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।
 विदध्याद् गर्भसूत्राणि कर्णसूत्राणि च क्रमात् ॥ ८० ॥
 दिक्सूत्रेष्वखिलेष्वस्य सीमार्थं पदमेव च ।
 पदस्याष्टादशो भागस्तद्योगाद् वृत्तमालिखेत् ॥ ८१ ॥
 विस्तारार्थं भवेद् गर्भो गर्भार्धास्तस्य भित्तयः ।
 तद्वृत्तबाह्यसूत्रेण भागान् षोडश कारयेत् ॥ ८२ ॥
 दिक्सूत्रकर्णसूत्रेषु रथकान् सम्प्रकल्पयेत् ।
 द्विभागा रथिका कार्या सलिलान्तरभूषिता ॥ ८३ ॥
 सलिलान्तरमेतस्य श्रीवत्सस्येव कल्पयेत् ।
 जङ्घोत्सेधे च पीठे च शिखरं(?) च तथा भवेत् ॥ ८४ ॥

मालाधारः स विज्ञेयः सवाह्याभ्यन्तरः समः ।

मालाधरः ॥

मालाधरस्य संस्थाने यत् क्षेत्रं पूर्ववत् स्थितम् ॥ ८५ ॥

उदकान्तरविच्छिन्नं पद्मं तत्र निवेशयेत् ।

तथाग्रे कारयेत् कर्णव्यासार्धेन विनिर्गमान् ॥ ८६ ॥

पद्मपत्रनिभाकाराञ्च जतिशुद्धान् सलक्षणान् ।

पद्मः ॥

षड्भागानायते क्षेत्रे विस्तारे चतुरश्रके ॥ ८७ ॥

द्विभागाद् विपुलो गर्भश्चतुर्भागायतो भवेत् ।

गर्भव्यासमितं सूत्रं पदपादसमन्वितम् ॥ ८८ ॥

वृत्तार्धं भ्रमयेत् तेन दक्षिणेनोत्तरेण च ।

सीमाविस्तारसूत्रेण पदपादयुतेन च ॥ ८९ ॥

पुरतः पृष्ठतश्चापि तद्वृत्तमनुवर्तयेत् ।

वृत्तक्षेत्रमिदं तस्य भागैर्द्वादशभिर्भवेत् ॥ ९० ॥

द्विभागो भद्रविस्तारो भागिकी भागविस्तृतिः ।

भद्राणां च रथान्मध्ये भागेनैकेन विस्तृता(?) ॥ ९१ ॥

उदकान्तरकं चात्र मालाधरवदाचरेत् ।

वृत्तायतस्तु कर्तव्यः प्रासादो मलयाभिधः ॥ ९२ ॥

मलयः ।

मलयस्यैव कर्णेषु रथिकान् यदि कल्पयेत् ।

उदकान्तरविच्छिन्नान् पदषड्भागनिर्गतान् ॥ ९३ ॥

पीठोत्सेधश्च जङ्घा च शिखरं चात्र यद् भवेत् ।

एकमात्रासमायुक्तं लतिना ते(?) प्रतीयते ॥ ९४ ॥

नान्तर्द्विधायते त्र्यंशाणां चतुरश्राणां कोणेष्वर्धपरिक्षयात्(?) ।

अष्टाश्रं जायते यत्र वाजाग्रमपि तां नरम् (?) ॥ ९५ ॥

अष्टाश्रं चतुरो भागान् विदध्यात् तत्र भागिकी ।

भित्तिर्विधेया भागाभ्यां भवेद् गर्भगृहं ततः ॥ ९६ ॥

रथिकासु विधेयोऽस्य परितो जलनिर्गमः ।

वज्रको नाम कथितः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ९७ ॥

वज्रकः ॥

वज्रकस्यैव संस्थाने सलिलान्तरवर्जिते ।

चत्वारिंशद्भागभक्ते रथिकाः स्युस्त्रिभागिकाः ॥ ९८ ॥

अष्टासु दिक्षु कर्णाश्च भवन्त्यस्य द्विभागिकाः ।

कर्णैः पद्मकतुल्योऽयं स्वस्तिकः समुदाहृतः ॥ ९९ ॥

स्वस्तिकः ॥

वज्रकस्यैव संस्थाने ये रथाः प्राक् प्रदर्शिताः ।

एकैकस्तेषु कर्तव्यश्चतुरश्चतुरोऽशकान् ॥ १०० ॥

भागद्वयेन मध्यः स्याद् रथकोशाद् विनिर्गतः ।

शङ्कुर्नामायमुद्दिष्टः प्रासादोऽष्टाभिरश्रिभिः ॥ १०१ ॥

शङ्कुः ॥

चतुरश्राः षोडश प्रोक्ताश्चतुरंश्रायतद्वयम् (?) ।

वृत्तवृत्तायतौ द्वौ द्वावुक्ताश्चाष्टाश्रयस्त्रयः ॥ १०२ ॥

पञ्चविंशतिरित्येते प्रासादा ललिताः स्मृताः ।

मिश्रकाणामथ द्रुमो लक्षणानि यथाक्रमम् ॥ १०३ ॥

भद्रकस्यैव संस्थाने भद्रे शृङ्गं यदा भवेत् ।

सुभद्रो नाम(?)संज्ञोऽयं कर्णकूटैः करीयसौ(?) ॥ १०४ ॥

पूर्वोक्तस्य यदा शृङ्गं भद्रं केसरिणो भवेत् ।

लताख्योक्त(?) तदा स स्यात् सर्वतोभद्रसंज्ञितः ॥ १०५ ॥

भद्रे शृङ्गं परित्यज्य सिंहं तत्रैव कारयेत् ।

मिश्रयोगे तयोर्मिश्रः स भवेत् सिंहकेसरी ॥ १०६ ॥

श्रीवत्सस्यैव संस्थाने भद्रे कूटं निवेशयेत् ।

कर्णे तेनैव योगेन प्रतिशृङ्गोपशोभितम् ॥ १०७ ॥

कलशैः समदशभिः पद्मघण्टामलैः सह ।

स च त्रिकूट इत्युक्तो विचित्रशिखरान्वितः ॥ १०८ ॥

कर्णे भद्रे प्रतिस्थाने पूर्णे शृङ्गे यदा भवेत् ।
 अण्डकैः सप्तदशभिस्तदा स्यात् स धराधरः ॥ १०९ ॥
 श्रीवत्सस्यैव संस्थाने कर्णे कूटं निवेशयेत् ।
 शृङ्गं भद्रो + भद्रे च तदा तिलक उच्यते ॥ ११० ॥
 यथा कर्णे तथा भद्रे यो भवेच्चित्रकुटवत् ।
 उत्तमाङ्गे च यस्तद्वत् स स्यात् सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ १११ ॥
 प्रतिशृङ्गेषु सर्वेषु यदा कूटं निवेश्यते ।
 मिश्रकः स तु विज्ञेयः श्रीनाम्ना चान्तिकोऽन्तिकः ॥ ११२ ॥
 सर्वे कूटावृताः कार्याः सर्वे कार्याश्चतुर्मुखाः ।
 मिश्रका बहुशृङ्गाश्च कुटीसंज्ञास्ततोऽपरे ॥ ११३ ॥
 इदं नवानां मिश्राणामिह लक्षणमीरितम् ।
 साधारणमतः स्पष्टं ब्रूमः सम्प्रति लक्षणम् ॥ ११४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागाष्टकविभाजिते ।
 तस्य मध्ये भवेद् गर्भो द्विभागो देवतालयः ॥ ११५ ॥
 भागे निवेशयेद् भित्तिं कुर्याद् भागेन कारिकाम् ।
 बाह्यभित्तिं पुनर्भागे विधेयास्तस्य सिद्धये(?) ॥ ११६ ॥
 तस्य कर्णेषु कर्तव्या रथिकाश्च द्विभागिकाः ।
 शेषं भद्रं प्रकर्तव्यमुदकान्तरभूषितम् ॥ ११७ ॥
 भागेन निर्गतं दिक्षु सर्वास्वेष भवेद् विधिः ।
 चतुर्भागोच्छ्रिता जङ्घा करकश्च तदर्धकः ॥ ११८ ॥
 वरण्यन्तरपत्रं च भागेनैकेन कल्पयेत् ।
 रथिकैकान्तरं तस्य सार्धभागत्रयोच्छ्रिताः(?) ॥ ११९ ॥
 षड्भागे शिखरं मूले शेषांशकसमुच्छ्रितम् ।
 तस्योच्छ्रयं त्रिधा कृत्वा वेणुकोशं समालिखेत् ॥ १२० ॥
 स्कन्धकोशान्तरं तस्य चतुर्धा विभजेत् ततः ।
 षड्दशैर्ष तथा ग्री(वां) सार्धेनांशेन कारयेत् ॥ १२१ ॥

कुर्याद् भागेन भागेन कुम्भं चामलपारकम् ।
 भागार्धेन प्रकुर्वीत तदूर्ध्वं बीजपूरकम् ॥ १२२ ॥
 प्रासादः कैसरी नाम सर्वतः सन्ततिप्रियः ।

कैसरी ॥

चतुरश्रं समं कृत्वा भूमिभागं विचक्षणः ॥ १२३ ॥
 प्रासादोद्व्यासतः कुर्याज्जगतीं द्विगुणामिह ।
 विदध्याज्जागतीपीठं प्रासादार्धसमुच्छ्रितम् ॥ १२४ ॥
 पीठस्योपरि संस्थाप्य प्रासादं विभजेत् ततः ।
 सर्वतोभद्रसंस्थानं हस्तसंख्या यदा भवेत् ॥ १२५ ॥
 हस्तैः सप्तत्रिंशता तु ज्येष्ठः सार्धे(?) उदाहृतः ।
 मध्यमः सप्तविंशत्या प्रासादः स्यात् कलाधिकैः ॥ १२६ ॥
 कनीयान् पञ्चदशभिः प्रासादः समुदीरितः ।
 तलच्छन्दो यदा ह्येषां तथाचैवोर्ध्वतो गतिम् ॥ १२७ ॥
 ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां तथा सम्यङ् निगद्यते ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे शतमूलविभाजिते ॥ १२८ ॥
 न्यसेत् तन्मध्यतो गर्भं चतुर्वर्गपदान्वितम् ।
 गर्भपादेन भित्तिः स्यात् तद्वदेवान्धकारिका ॥ १२९ ॥
 बाह्यभित्तिस्तथा(?)थैव स्याद् दशशस्युर्द्विभागिका(?) ।
 प्रतिवर्णपदांशेन(?) षोडशेन जलान्तरम् ॥ १३० ॥
 शेषं भद्रं(?)प्रकर्तव्यं गर्भार्धेन विनिर्गतम् ।
 भागार्धं क्षोभयेत् पार्श्वे निर्गमं च तथाचरेत् ॥ १३१ ॥
 शेषः स्याद् भद्रविस्तारः पञ्चभागायतस्तथा ।
 पीठं तस्यैव कर्तव्यं सार्धद्वयसमुच्छ्रितम् ॥ १३२ ॥
 द्विगुणां च तथा जङ्गामुच्छ्रायेणास्य कल्पयेत् ।
 मेखलामर्धभागेन भागेनान्त(र)पत्रकम् ॥ १३३ ॥
 प्रथमा रथिका तत्र कार्या भागत्रयोच्छ्रिता ।
 द्वितीया रथिका या सा सार्धभागेन चोच्छ्रिता ॥ १३४ ॥

भागे भागेऽन्तरं कार्यमुपर्युपरि चोभयोः ।
 षड्भागान् विस्तृतं कुर्याच्छिखरं सप्तमोच्छ्रितम् ॥ १३५ ॥
 एवं भूमिभिरष्टाभिः कुर्यादेनं विचक्षणः ।
 जलनिर्गमविच्छिन्ना रथाः प्रतिरथास्तथा ॥ १३६ ॥
 चतुर्गुणैः पृथक्सूत्रैः पद्मकोशं समालिखेत् ।
 मञ्जरी ललिता कार्या नीलोत्पलदलाकृतिः ॥ १३७ ॥
 ग्रीवा चैकार्धभागेन (भागेना)मलसारकम् ।
 पद्मशीर्षं च कर्तव्यं ग्रीवामानेन धीमता ॥ १३८ ॥
 सार्धभागेन सोष्णीपः पद्मस्योपरिकुम्भकः ।
 सर्वतोभद्र इत्युक्तो रेपानानाम्(?) एष शेखरः ॥ १३९ ॥
 विधाय सर्वतोभद्रं देवानामालयं शुभम् ।
 लभते परमं लोकं दिवि स्वच्छन्दभाषितम् ॥ १४० ॥
 सर्वतोभद्रः ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ।
 व्यासपादेन गर्भ(स्तस्यात् त)दर्वादन्धकारिका ॥ १४१ ॥
 जङ्घा स्कन्धश्च तं कर्ण(?) भद्रं चाप्यस्य यद् भवेत् ।
 सर्वतोभद्रवत् सर्वं तद् विधेयं चतुर्दिशम् ॥ १४२ ॥
 तस्य भद्राणि सर्वाणि भित्तिभिः परिवेष्टयेत् ।
 भद्रे भद्रे पुनश्चास्य वर्धमानं निवेशयेत् ॥ १४३ ॥
 पञ्चभागास्तथा सार्धाः शिखरस्योदयो भवेत् ।
 सर्वतोभद्रकाकारा रथिकाश्चात्र कारयेत् ॥ १४४ ॥
 कुर्यात् षडंशा विस्तीर्णशिखरं प्र+धोच्छ्रितम्(?) ।
 सर्वतोभद्रसंस्थानादेषां चास्वत्र योजयेत् (?) ॥ १४५ ॥
 ग्रीवा चामलसारं च कुम्भश्चापि तथा भवेत् ।
 मासादो नन्दनो नाम कर्तव्यो देवतालयः ॥ १४६ ॥
 कृतेऽस्मिन् नन्दति स्वामी दुरितानि च निर्दहेत् ।
 नन्दनः ॥
 भक्ते द्वादशधा क्षेत्रे चतुरश्रीकृते ततः ॥ १४७ ॥

सप्तवर्गपदो गर्भो विन्यासस्तु विधीयते ।

सपादपादिका भित्तिगर्भेऽप्यस्य विवक्ष्यः ॥ १४८ ॥

बाह्यभित्तिश्च तद्वत् स्यात् तद्वत्पादपन्थकः पिका ।

पीठोच्छ्रयस्तथा जङ्घा कर्णेषु विन्यासः ॥ १४९ ॥

सर्वतोभद्रकाकारान्भूलकर्णः प्रोक्तः ॥

एकैकां रथिकां चान्यां विन्यासं पञ्चभेदोऽपि ॥ १५० ॥

चतस्रो रथिकाश्चैवं कर्णे कथं निवर्तयेत् ।

शेषो भद्रस्य विस्तारः स्वविन्यासविहितः ॥ १५१ ॥

भूपयेत् सिंहकर्णेश्च भद्रवासादप्यङ्गः ।

विन्यसेच्छिखरं तत्र भागविस्तृतमप्यङ्गः ॥ १५२ ॥

चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोनं च तद्विहितम् ।

स्कन्धकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैश्चिपजयेत् ॥ १५३ ॥

ग्रीवार्धभागिकोत्सेधादप्यङ्गो नासलनासकः ।

पञ्चशीर्षं तथार्धेन भागेन कलजः स्मृतः ॥ १५४ ॥

त्रिपादा रथिकास्तिस्र उच्छ्रयेण प्रकीर्तिताः ।

सर्वतोभद्रकाकारो नन्दिशालः प्रकीर्तितः ॥ १५५ ॥

नन्दिशालः ॥

नन्दिशालस्य संस्थानं तद्वत् समयाङ्गणम् ।

तस्य भद्राणि सर्वाणि भित्तिभिः परिवेष्टयेत् ॥ १५६ ॥

भद्रे भद्रे तस्य तस्य वर्धमानं निवेशयेत् ।

अर्धपट्टांस्तथा भागान् स्याद् भद्रजिम्बरोच्छ्रयः ॥ १५७ ॥

पीठोच्छ्रायं च जङ्घां च तथास्य शिखरोच्छ्रयम् ।

नन्दिशालसमाकारं सममेव प्रकल्पयेत् ॥ १५८ ॥

कार्योऽयं सर्वदेवानां प्रासादो नन्दिवर्धनः ।

नन्दिवर्धनः ॥

नन्दिवर्धनसंस्थानं पूर्ववत् परिकल्पयेत् ॥ १५९ ॥

उभयोः कर्णयोर्मध्ये ये तत्र रथिके स्थिते ।

तथोक्षोपरि कर्तव्यं शिखरं लक्षणान्वितम् ॥ १६० ॥

षडंशविस्तृतं चैतत् सार्धपञ्चममुच्यते ।

चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ॥ १६१ ॥

ग्रीवा चामलसारं च कुम्भकस्याश्रयो भवेत् ।

कार्यः स सर्वतोभद्रपञ्चम इति निश्चयः ॥ १६२ ॥

मन्दिरौऽयमिति ख्यातः प्रातःकालः क्षितिभूषणः ।

मन्दिरः ॥

नन्दिवर्धनमन्थाने तद्वत्प्रथममिषेत् ॥ १६३ ॥

दिक्पत्रे कर्णसूत्रे च (कुम्भ?) + रथिकाष्टकम् ।

रथिका अपि चैताः स्युर्दिभागान् विस्तृताः ॥ १६४ ॥

पदभागान् चतुर्दिगाः शेषं शिखरमाचरेत् ।

उच्छ्रयश्चास्य कर्णकोशं च तद्वत्प्रथममिषेत् ॥ १६५ ॥

पदभागः स्यात्पदविस्तारो ग्रीवा चामल विभागिका ।

रेखा चामलसारं च तद्वत्प्रथममिषेत् ॥ १६६ ॥

सर्वतोभद्रमत्र स मन्थाने तद्वत्प्रथममिषेत् ।

श्रीवृक्षः ॥

चतुरधीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभागिने ॥ १६७ ॥

द्विभागविस्तृताः कर्णा रथिकासूत्रेषु कारयेत् ।

उदकान्तरविष्टिज्ञा मूलधर्मेषु योजयेत् ॥ १६८ ॥

शेषं भद्रस्य विस्तारतदर्थमपि निर्गमः ।

सर्वतोभद्रमप्यत्र गद्रे भद्रे विभज्य च ॥ १६९ ॥

पूर्वगुणैस्तु संयुक्ते चतुर्दिशु निवेशयेत् ।

तस्य गर्भस्तु कर्तव्यः (पदाष्टक?) विस्तृतः ॥ १७० ॥

सार्धभागप्रमाणः स्याद् विविर्गर्भस्य मध्यतः ।

बाह्यशित्तिस्तु चामलं तेषां भ्रातृजाचरेत् ॥ १७१ ॥

जङ्घाषट्भागमुरोऽर्धे पीठं तस्य तद्वत्तः ।

वरण्डी(जा?)भ्रतृ पत्रं शिखरं चैव कारयेत् ॥ १७२ ॥

रथिकाद्वादशविस्तारानुपर्युपरि योजिता(?) ।

दिस्रस्तिष्ठो निने(शाः?)दयाः)स्युः कर्णे कर्णे(त?)य)थाक्रमम् ॥ १७३ ॥

प्रथमा रथिकास्तस्य कुर्याद् भागत्रयोच्छ्रिताः ।
 कुर्याद्दु(पर्यु)पर्यन्याः पादपादविवर्जिताः ॥ १७४ ॥
 अष्टाभिर्विस्तृतं भागैः सार्धैर्नवभिरुच्छ्रितम् ।
 सर्वतोभद्रकाकारं शिखरं तस्य कारयेत् ॥ १७५ ॥
 प्रासादोऽयं विमानाख्यः प्रख्यातश्चामृतोद्भवः ।

विमान ॥

द्विसप्तायामविस्तारं हिमवन्तं विभाजयेत् ॥ १७६ ॥
 चतुर्धा रथिकास्तत्र कर्णे कर्णे निवेशयेत् ।
 द्विभागविस्तृताः सर्वा उपर्युपरि कारयेत् ॥ १७७ ॥
 प्रथमा भूमिका तस्य स्याच्च भागत्रयोच्छ्रिता ।
 पादपादविहीनास्तु क्रमणोपरिभूमयः ॥ १७८ ॥
 नन्दिशालगुणैर्युक्तं शिखरं चात्र कारयेत् ।
 सर्वतोभद्रवन्मध्ये भूमिकाश्च समाचरेत् ॥ १७९ ॥
 द्विभागा रथिकास्तस्य स र्वैर्वा) भागत्रयोच्छ्रिताः ।
 द्वितीयभूमि(का?)रथिका भूम्यु(श?च्छ्रा)येण कारयेत् ॥ १८० ॥
 शिखरस्योच्छ्रयः कार्यः सपादव्याससंमितः ।
 अमृतोद्भववज्जङ्घा पीठं चात्र तथा भवेत् ॥ १८१ ॥
 जातिशुद्धो भवत्येष हिमवान् भुवनोत्तमः ।

हिमवान् ॥

हिमाचलस्य संस्थाने तद्रूपे समवस्थिते ॥ १८२ ॥
 तस्य भद्रेषु सर्वेषु वर्धमानं च योजयेत् ।
 भागषट्कप्रविस्तारं तदर्धेन विनिर्गतम् ॥ १८३ ॥
 भागैः सप्तभिरप्यस्य सार्धैः स्याच्छिखरोच्छ्रयः ।
 शिखरस्याग्रतः स्त(म्भः?म्भं)सिंहकर्णे वि(र्णैर्वि)भूषयेत् ॥ १८४ ॥
 दिक्सूत्रैरस्य सर्वेषु क्रियां प्राग्वत् प्रकल्पयेत् ।
 जङ्घोत्सेधश्च कर्णश्च शिखरं चास्य यद् भवेत् ॥ १८५ ॥
 हिमवत्सदृशं सर्वं विधेयं तद् विजानता ।
 हेमकूट इति ख्यातः प्रासादोऽयं जगत्त्रये ॥ १८६ ॥

एष त्रिमूर्तिनिलयः कार्यो नान्यस्य कस्यचित् ।

हेमकूटः ॥

हिमवत्तुल्यसंस्थानं प्रासादं परिकल्पयेत् ॥ १८७ ॥

तस्य मध्ये विधातव्यः सर्वतोभद्रसंज्ञितः ।

वर्जनीयं तु तन्मध्ये वर्धमाननिवेशनम् ॥ १८८ ॥

ततः स्थानेषु सर्वेषु खण्डरेखा निवेशयेत् ।

व्यासोच्छ्रितैस्ततः सिंहकर्णैर्भद्रं विभूषयेत् ॥ १८९ ॥

ऊर्ध्वं च शिखरं तस्य वर्जनीयं विचक्षणैः ।

द्वे द्वे च रथिके कार्ये सपाद्व्यंशकोच्छ्रिता ॥ १९० ॥

तयोश्चोपरि विस्ताराच्छिखरं चतुरश्रकम् ।

उच्छ्रयः पञ्चभिः सार्धैर्विधेयः शिखरस्य च ॥ १९१ ॥

दिक्मूत्रेषु च सर्वेषु क्रियामेवं प्रकल्पयेत् ।

बाह्यरेखा तु जङ्घा च हिमवत्सदृशी स्मृता ॥ १९२ ॥

कैलासोऽयमिति ख्यातः कर्तव्यः शूलपाणये ।

कैलासः ॥

एतस्यैव यदा भद्रमुच्छ्रितं सिंहकर्णकैः ॥ १९३ ॥

द्वे द्वे च रथिके तत्र दी(य?ये)ते सुमनोरमे ।

शेषः शिखरविस्तारः पञ्चभागसमुच्छ्रितः ॥ १९४ ॥

प्राग्ग्रीवकाश्च भद्रेषु भागभागविनिर्गताः ।

विस्तारेण चतुर्भागा दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ॥ १९५ ॥

विमानसदृशी चास्य बाह्यलेखा विधीयते ।

गुणैरेभिस्तदा युक्तः प्रासादः पृथिवीजयः ॥ १९६ ॥

पृथिवीजयः ॥

भक्ते षोडशभिः क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।

गर्भोऽष्टवर्गः स्यात् तस्य मध्ये भित्तिर्द्विभागिका ॥ १९७ ॥

भ्रमणं बाह्यभित्तिश्च तत्समे एव कीर्तिते ।

कर्णेषु रथिका कार्या सलिलान्तरभ्रषिता ॥ १९८ ॥

तत्तुल्यायामविस्तारा रथिकाः स्युस्तथापराः ।
 तद्वत् तृतीयरथिका भद्रं चतुष्पदायतम् ॥ १९९ ॥
 विस्तारार्थेन निष्कान्तं क्षोभयेद् वर्धमानतः ।
 वाण्ड्यन्तरपत्रे च सा(धै?)धै) भागेन काण्डेत् ॥ २०० ॥
 उपर्युपरि भागान् हि हीनाः स्युः क्रमशोभवः(?) ।
 भद्रे रथिकयोर्मध्ये सिंहकर्णो विधीयते ॥ २०१ ॥
 एतस्य चोच्छ्रयो भागैः पञ्चभिः परिकीर्तितः ।
 पार्श्वस्थे सिंहकर्णस्थराथके ये निवेशिते ॥ २०२ ॥
 तयोरुपरि षड्भागं विस्तृतं शिखरं भवेत् ।
 विधेयमुच्छ्रयेणेतत् त्रिभागान् स(त्ताथ?)वाधिकान् ॥ २०३ ॥
 पक्षयोरुभयोस्तस्य रथिके (च) तदूर्ध्वतः ।
 सिंहं निवेशयेद् दिक्षु निग्निलास्त्रण्यं विधिः ॥ २०४ ॥
 मूलकर्णे ततश्चार्धं शिखरं दशविस्तृतम् ।
 एकादशोच्छ्रितं कार्यं कण्टक्या मनोमम् ॥ २०५ ॥
 चतुर्गुणेन सूत्रेण तेषुक्षोभं ततो लिखेत् ।
 पूर्वोक्ता गान्धर्वाभागेऽप्यस्या (?) विभजेत् त्रिभिः ॥ २०६ ॥
 ग्रीवार्धभागद्वयेऽथादण्डकं भागमुच्छ्रितम् ।
 पञ्चशीर्षं तथार्धेन कलयश्चांशकादयः ॥ २०७ ॥
 देवानामालयः स स्यादिन्द्रनीलोऽयमीरितः ।
 इन्द्रनीलः ॥
 एतस्यैव यदूर्ध्वस्थं शिखरं क्रियतेऽन्यथा ॥ २०८ ॥
 चतुर्थी रथिका चास्य दीयतेऽतिमनोरमा ।
 पूर्वोक्तेन विधानेन पादं वि + + वर्जिता ॥ २०९ ॥
 शिखरस्याष्ट विस्तारो नव भागास्तथोच्छ्रिताः ।
 इन्द्रनीलस्य सदृशं शेषपन्यद् विधीयते ॥ २१० ॥
 महानीलोऽयमारुहातः प्रासादमिन्द्रालयः ।
 महानीलः ॥
 इन्द्रनीलस्य संस्थाने दिक्सूत्रेषु समन्ततः ॥ २११ ॥

सर्वतोभद्रशिखरं हित्वा(हो+?) निवेशयेत् ।
 विधिरेप समस्तासु ककुप्सु प्रविधीयते ॥ २१२ ॥
 भद्रेषु वर्धमानस्य विन्यासे परिवर्जयेत् ।
 व्यासोच्छ्रितः सिंहकर्णैर्भद्रमस्य विभूषयेत् ॥ २१३ ॥
 महानीलस्य सदृशं सर्ववरस्य प्रकल्पयेत् ।
 इन्द्रगोपनिभाकारः प्राणादौ भूधरः स्मृतः ॥ २१४ ॥
 सुरेश्वरस्य कर्तव्यो नान्येषां कथमप्यसौ ।

भूधरः ॥

भूधरस्य तु संस्थाने तद्वपुः सन्वस्थिते ॥ २१५ ॥
 भद्रे भद्रे पुनः प्राज्ञां वर्धमानं निवेशयेत् ।
 चतुर्भागमितव्यासे सार्धदशोच्छ्रितम् ॥ २१६ ॥
 रत्नकूटः समाख्यातः प्रासादः श्रीपतेरयम् ।

रत्नकूटः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशति भाजितंऽशकैः ॥ २१७ ॥
 कुर्याद् द्विभागविस्तारा रथिकाः पञ्च कर्णगाः ।
 पञ्चोपरि पुनः पञ्च दशादेकां तदूर्ध्वतः ॥ २१८ ॥
 प्रथमा भूमिका चास्य कार्य्या भागत्रयोच्छ्रिता ।
 पादपादविहीनास्तु क्रमेणापरभूमयः ॥ २१९ ॥
 भद्रकर्णान्तरस्थे द्वे रथिके ये तदूर्ध्वतः ।
 शिखरं दशविस्तारं कुर्यात् सार्धदशोच्छ्रितम् ॥ २२० ॥
 मूलकर्णानुसारेण शिखरं तत्र यद् भवेत् ।
 तस्य द्वादशविस्तारं त्रयोदशसमुच्छ्रितम् ॥ २२१ ॥
 भद्रं विभूषयेत् पत्रैः सिंहकर्णैर्भनोरमैः ।
 पञ्चव्यासेन सूत्रेण वेत्रकोशं समालिखेत् ॥ २२२ ॥
 स्कन्धकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ।
 पद्मशीर्षं तथा ग्रीवां सार्धभागेन कारयेत् ॥ २२३ ॥
 कुर्याद् भागेन भागेन कुम्भं चामलसारकम् ।
 तत्रभागोच्छ्रितां जङ्घां तदर्धस्वरपिण्डकाम् ॥ २२४ ॥

वरण्ड्यन्तरपत्रं च कुर्याद् भागद्वयेन च ।

वैदूर्योऽयं समाख्यातः प्रासादो दानवद्विषः ॥ २२५ ॥

वैदूर्यः ॥

एतस्यैव यदा भद्रे भद्रे स्याद् वर्धमानकः ।

पद्मरागस्तथैव स्याद् कार्योऽयं पद्मरागतः ॥ २२६ ॥

पद्मरागः ॥

पद्मरागस्य भद्रेषु वर्धमानं विवर्जयेत् ।

भद्रस्य पार्श्वद्वितये प्रदद्याद् रथिकाद्वयम् ॥ २२७ ॥

व्यासोच्छ्रायैश्च भद्राणि सिंहकर्णैर्विभूषयेत् ।

यदन्यदस्य तत् सर्वं पद्मरागसमं भवेत् ॥ २२८ ॥

वज्रकोऽयं समाख्यातो विधेयस्त्रिपुरद्विषः ।

वज्रकः ॥

वज्रकस्यैव भद्रेषु पूर्ववद् रथिकास्थितौ ॥ २२९ ॥

षड्भागविस्तृतं तत्र शिखरं विनिवेशयेत् ।

सप्तभागसमुत्सेधं दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ॥ २३० ॥

मुकुटोज्ज्वल इत्युक्तः प्रासादोऽयं सुरालयः ।

मुकुटोज्ज्वलः ॥

अस्यैव तु यदा स्थाने भद्रे भद्रे चतुर्दिशम् ॥ २३१ ॥

सिंहकर्णं परित्यज्य वर्धमानो विधीयते ।

ऊर्ध्वाभवत्तृतीयायाः(?) सप्तोच्छ्रायषडायताः ॥ २३२ ॥

ऐरावतोऽयं कर्तव्यः प्रासादस्त्रिदशे(सतिः?शितुः) ।

ऐरावतः ॥

ऐरावतस्य संस्थाने प्रासादे पूर्ववत् स्थिते ॥ २३३ ॥

वर्धमानं विहायोर्ध्वं यदा सिंहो निवेश्यते ।

शिखराणि च चत्वारि दिक्षु सर्वासु वर्जयेत् ॥ २३४ ॥

क्षेत्राया(ष्टामे?)र्विस्तारं गर्भवेष्ट्य निवेशयेत् ।

चतुर्भागायत्वं भद्रं निर्मयेण विभाजितम् ॥ २३५ ॥

भद्रत्रयं प्रयुञ्जीत भित्तिभागेन वेष्टितम् ।

द्वारोच्छ्रयं (सःस्व)विस्ताराद् (वःद्वा)रार्धेन समुच्छ्रयः ॥ २३६ ॥

गवाक्षस्तत्र कर्तव्यो यथा द्वारं न लङ्घ्यते ।

मध्ये चतुष्किका कार्या द्विभागायामविस्तृता ॥ २३७ ॥

प्रासादो राजहंसोऽयं ब्रह्मादीनां प्रशस्यते ।

राजहंसः ॥

राजहंसस्य संस्थाने तृती(येऽय)रथिकोपरि ॥ २३८ ॥

यदा(रःस्य)शिखरं सप्तसमुच्छ्रयं षडायतम् ।

स्यात् तदा गरुडो नाम गरुडध्वजवल्लभः ॥ २३९ ॥

प्रासादः सर्व* + + + + कारयितुस्तथा ।

गरुडः ॥

अस्यैव मूलशिखरं त्यक्त्वा भागद्वयोन्मितम् ॥ २४० ॥

क्रियन्ते रथिकाः (पूःकर्णे) तदूर्ध्वं मूलमञ्जरी ।

क्रियते द्वादशोच्छ्रा(येऽया) दशभागायता यदा ॥ २४१ ॥

तदा स्याद् वृषभो नाम वृषभध्वजवल्लभः ।

वृषभः ॥

(सःश)तार्धहस्तविस्तारं ज्येष्ठं मेरुं प्रकल्पयेत् ॥ २४२ ॥

मध्यमे हस्तसंख्या स्यात् (षट्त्र्यं) द्विकालाधिकः(?) ।

दशत्रिगुणिता (हस्ताभ्यां?) संख्या प्रोक्ता कनीयसि ॥ २४३ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भागविंश(विःति)भाजिते ।

विस्तारार्धं भवेद् ग(र्भं) गृहं(र्भगृहं) भित्त्या समन्वितम् ॥ २४४ ॥

भागप्रमितविस्तारा गर्भभित्तिर्विधीयते ।

सार्धद्विभागान्या भित्तिस्तद्वदेवान्धकारिका(ः?) ॥ २४५ ॥

द्विभागा रथिका कार्या कर्णे कर्णे विज्ञानता ।

चतुर्भागा रथा भद्रेष्वेतदर्थेन (विः) निर्गता ॥ २४६ ॥

भद्रकर्णान्तयोः का(र्या) यदाष्टांशः(र्यं) तदष्टांशं जलान्तरम् ।

भद्राणां रथिकाः कार्याः पार्श्वयोरुभयोस्तथा ॥ २४७ ॥

* 'कामार्थः कर्तुः' इत्येवञ्जातीयं लुप्तक्षरस्थाने निवेद्यम् ।

१. चतुरेखान्तर्गते 'हस्त' इति स्यात् ।

रथिकानां च सर्वासां स्वभद्रं विस्तरार्धतः ।
 शृङ्गं भद्रं यथैवैकं तथा सर्वाणि कारयेत् ॥ २४८ ॥
 दिक्सूत्रेषु (च) सर्वेषु वर्धमानं निवेशयेत् ।
 अष्टभागोच्छ्रिता जङ्घा खुरपिण्डं तदर्धतः ॥ २४९ ॥
 (ये?मे)खलान्तरपत्रे च स्यातां भागद्वयोद्धते ।
 प्रथमा रथिकास्तत्र (सपादात्सू?)त्रयोच्छ्रिताः ॥ २५० ॥
 पदपादविहीनाः स्युः क्रमेणोपरिभूमयः ।
 दिक्सूत्रेषु सकर्णेषु क्रिया प्राग्वद् विधीयते ॥ २५१ ॥
 शिखरं दशविस्तारं भा(गैर्द्वा?गद्वा)दशकोच्छ्रितम् ।
 चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ॥ २५२ ॥
 स्कन्धकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ।
 ग्रीवा च पद्मशीर्षं च तावद् भागार्धमुच्छ्रयात् ॥ २५३ ॥
 भा(गमामा?गं चाम)लसारं स्यात् कलशो भागमेव च ।
 (सा?श)तशृङ्गावृतो मेरुरयं प्रासाद ईरितः ॥ २५४ ॥
 प्रदक्षिणीकृते तस्या तत्पुण्यं कनकाद्रिणा(?)
 शैलेष्टकामये तत् स्यात् कृतेऽस्मिन्नधिकं ततः ॥ २५५ ॥
 मेरुः ॥
 नन्दिशालस्य संस्थाने तद्रूपे समवस्थिते ।
 द्वितीया रथिका कार्या भागद्वयविनिर्गता ॥ २५६ ॥
 शेषो भद्रस्य विस्तारः स्वविस्ता(रोऽ?रा)र्धनिर्गतः ।
 अष्टांशायामविस्तारः स्वविस्ता(रोऽ?रा)र्धनिर्गतः ॥ २५७ ॥
 अष्टांशायामविस्ता(रः?रा) शाला स्यात् पुरतः पुनः ।
 तस्या मध्ये भवेद् गर्भो द्विभागायामविस्तरः ॥ २५८ ॥
 गर्भभित्तिर्भवेच्चास्य भागेनैकेन निर्गता ।
 बाह्यभित्तिस्तथैव स्यात् तत्समा चान्धकारिका ॥ २५९ ॥
 द्विभागा रथिकास्तस्य सलिलान्तरभूषिताः ।
 शेषो भद्रस्य विस्तारो भागेनैकेन निर्गमः ॥ २६० ॥

जङ्घोत्सेधं (च) पीठं च विदध्यान्नन्दि(सार? शाल)वत् ।
रथिकास्तत्र कर्तव्याः कर्ण(र्णै?) भागत्रयोच्छ्रिताः ॥ २६१ ॥

षडंशान् विस्तृ(तः?तं) कुर्याच्छिखरं सप्त(चो?मो)च्छ्रितम् ।
कार्या केसरिवच्चास्य रेखा सामलसारिका ॥ २६२ ॥

एभिर्गुणैर्युतं चैनं पार्श्वयोरपि योजयेत् ।
प्रासादोऽयं लताख्यः स्यात् कर्तव्यो दानवद्विषः ॥ २६३ ॥
लताख्यः ॥

अग्रेतनं यदा पश्चान्न्यस्येत सरिणं तदा ।
भवेत् त्रिपुष्कराख्योऽयं प्रासादस्त्रिदशालयः ॥ २६४ ॥
त्रिपुष्कराख्यः ॥

नन्दिशास्य सर्वासु दि(क्षु?क्ष्व)यं केसरी यदा ।
स्यात् तदा पञ्चवक्त्रोऽसौ विधेयः पञ्चजन्मनः ॥ २६५ ॥
पञ्चवक्त्रः ॥

यदा च पञ्चवक्त्रस्य मध्ये ग(र्भो?भो) न दीयते ।
बाह्यलेखादिकं प्राग्बद् दिक्षु सर्वासु कल्पते ॥ २६६ ॥
चतुःस्तम्भसमा कार्या मध्ये चास्य चतुष्गिका ।
वितानं चोपरि न्यस्येन्मध्यतस्तस्य भूषणम् ॥ २६७ ॥
हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा ।
एते चतुर्मुखे स्थाप्या नापरेषां भवत्ययम् ॥ २६८ ॥
चतुर्मुखः ॥

चतुःषष्टिकरे कुर्यात् क्षेत्रे मानेकविंशतिः(?) ।
सप्तवर्गपदो गर्भो भित्त्या सह विधीयते ॥ २६९ ॥
स्याद् गर्भभित्तिर्भागेन भागेनैवान्धकारिका ।
षड्भागं कर्णविस्तारं दशधा प्रविभाजयेत् ॥ २७० ॥
षड्भिर्भागैर्भवेदस्य गर्भो भित्त्या समन्वितः ।
बाह्या भित्तिर्भवेद् भागाद् भागश्चैवान्धकारिका ॥ २७१ ॥
द्विभागं कर्णवैपुल्यमुदकान्तरभूषितम् ।
शेषो मद्रस्य विस्तारश्चतुर्थान्धविनिर्गतः ॥ २७२ ॥

क्षोभयेदर्धभागे तु तदर्धेन जलान्तरम् ।
 मत्तवारणकैर्विद्यात् स्तम्भैरुपरि शोभिताः ॥ २७३ ॥
 रथिकैका त्रिभागेन पुनः सार्धद्विभागिका ।
 तासां परस्परक्षेपो भागो भागो विधीयते ॥ २७४ ॥
 शेषं शिखरविस्तारः सार्धषट्कं तदुच्छ्रयः ।
 पृथक्सूत्रैस्त्रिगुणितैर्वेणुकोशं समालिखेत् ॥ २७५ ॥
 स्कन्धकोशान्तरं भागैश्चतुर्भिस्तस्य भाजयेत् ।
 ग्रीवार्धभागमुत्सेधो भागेनामलसारकम् ॥ २७६ ॥
 पद्मशीर्षस्तर्षं तथा भागं कलशो भागसंमितः ।
 अर्धभागस(मोऽमु)त्सेधं कारयेद् बीजपूरकम् ॥ २७७ ॥
 सर्वकर्णेषु कर्तव्याः क्रियाश्चैवं विचक्षणैः ।
 दिक्सूत्रबाह्यभागेषु बलभीं सन्निवेशयेत् ॥ २७८ ॥
 निर्गमे पञ्चभागः स्यात् तिर्यक् प्रक्षिप्तभागिकाः(?) ।
 अस्या द्विभागिको गर्भो मध्ये भागत्रयोच्छ्रितः ॥ २७९ ॥
 भागार्धभागं भित्तिः स्यात् तत्समा चान्धकारिका ।
 तस्याश्चाग्रे विधातव्यः(?) षड्दारुकसमन्वितम् ॥ २८० ॥
 एकैकां रथिकां सार्धभागां कर्णेषु योजयेत् ।
 शेषं भद्रस्य विस्तारो भागः स्यादस्य निर्गमः ॥ २८१ ॥
 एवं भद्रं (वि?द्वि)भागं स्यात् स्तम्भद्वयसमन्वितम् ।
 बलभावर्तयोर्मध्ये भागमेकं च विस्तृतम् ॥ २८२ ॥
 तत्रोदकान्तरं कुर्याद् गुणद्वारविभूषितम् ।
 नवभागोच्छ्रिता जङ्घा पीठयस्य तदर्धतः ॥ २८३ ॥
 मेखलान्तरपत्रे च कुर्याद् भागद्वयोन्मिते ।
 रथिका स्याद् द्विभागा च ततः सार्धैकभागिका ॥ २८४ ॥
 शेषं शिखरविस्तारः पञ्चांशं शिखरोच्छ्रयः ।
 उपर्युपरि कर्तव्यं सर्वतोभद्रकद्वयम् ॥ २८५ ॥

द्वे द्वे च सर्वतोभद्रे कर्णे कर्णे निवेशयेत् ।
 दिक्सूत्रेषु समस्तेषु क्रियामेवं प्रकल्पयेत् ॥ २८६ ॥
 विस्तार शिखरस्याष्टौ भागात्स्यार्धसमुच्छ्रयः(?) ।
 पञ्चव्यासेन सूत्रेण + + + + + ॥ २८७ ॥
 वेणुकोशान्तरं चास्य त्रिभिर्भागैर्विभाजयेत् ।
 ग्रीवा च पद्मशीर्षं च भागेन स्यादिदं द्वयम् ॥ २८८ ॥
 प्रत्येकं भागिकौ कार्यौ कलशमलसारकौ ।
 (तः)वात्मकोऽयं कथितः प्रासादस्त्रिदशालयः ॥ २८९ ॥
 नवात्मकः ॥

विन्यसे(द् दिः)दी)शमैशान्यामाग्नेय्यां पुरुषोत्तमम् ।
 ब्रह्माणं वायुदिग्भागे नैर्ऋते च दिवाकरम् ॥ २९० ॥
 मध्यगर्भे शिवः स्थाप्यः प्राच्यामपि पुरन्दरः ।
 धर्मो(यमां)याम्यां) प्रतीच्यां च वरुणः सोम उत्तरे ॥ २९१ ॥
 (भक्ताठा?) शक्तिसम्पन्नः पूर्वायतनसन्निधौ ।
 प्रासादं कारयेद् यत्रात् तदाद्यं नैव पीडयेत् ॥ २९२ ॥
 उत्कृष्टमपकृष्टं वा यत्र स्थाने निवेशयेत् ।
 प्रासादं तत्र कर्माणि यानि तान्यभिदध्महे ॥ २९३ ॥
 सम्मुखं नैव कुर्वीत हीनं वा यदिवाधिकम् ।
 वेदभागास्तं तव सश्रितस्तंस्या स्यात्प्रासादोऽतिविगर्हितः(?) ॥
 अन्योन्यं दक्षिणे वेधो हीन इत्यभिधीयते ।
 वेधभागामृते(?)मृत्युं हीने हानिं विनिर्दिशेत् ॥ २९५ ॥
 हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा ।
 एते देवाः समाख्याताः परस्परविरोधिनः ॥ २९६ ॥
 एता न दक्षिणापार्श्वे स्थापयेत् पुरमाश्रितान् (?) ।
 वामतो नान्यदेवानां ना(स्ति?)पि हीनालयेषु च ॥ २९७ ॥
 नैतेषां दक्षिणे कुर्यादन्येषामपिचालयम् ।
 हीनं वा यदि वाहीनं यदीच्छेच्छ्रय आत्मनः ॥ २९८ ॥

१. 'विस्तारः शिखरस्याष्टौ भागाः सार्धं समुच्छ्रयः' इति स्यात् ।

२. 'वेणुकोशं समालिखेत्' इति चतुर्थपादः स्यात् ।

तेषामुत्तरतो (नृही)नं य(दिःदी)च्छेद् देवतालयम् ।
 प्रासादपदमानेन नवषट्त्रिंश(दाःद)न्तरे ॥ २९९ ॥
 प्रासादं कारयेदन्यं मर्मवेधविवर्जितम् ।
 पुरतः पृष्ठतो वापि पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ ३०० ॥
 महामर्माणि चत्वारि कुर्याद् यत्ताघतोत्तरे(?) ।
 क्षणमध्येषु सर्वेषु द्रव्यमेकं न दापयेत् ॥ ३०१ ॥
 तदा युग्म + + + + वेधमर्म विवर्जयेत् ।
 क्षणमध्ये यदा द्रव्यमेकं मोहात् प्रदीयते ॥ ३०२ ॥
 कर्तृकारकयोः पीडा भवेत् पूजा न तादृशी ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्थपतिः कारकोऽपि च ॥ ३०३ ॥
 मर्माणि वर्जयेद् यत्नात् प्रासादस्य समीपतः ।
 अथ मर्मवियुक्तोक्तं यः प्रासादं कर्तुमिच्छति ॥ ३०४ ॥
 प्रासादतः सदा तेन विधेयं महदन्तरम् ।
 (प्रासादां तूत्तरं कवः) कार्यं फलपुष्पैर्विभूषितम् ॥ ३०५ ॥
 य एतैर्लक्षणैर्युक्तं कारयेद् देवतालयम् ।
 धनधान्यमवाप्नोति मोदते सुखमेव च ॥ ३०६ ॥
 हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरोऽपि च ।
 एते देवाः समाख्याता देवानामपि पूजिताः ॥ ३०७ ॥
 पृथक्त्वेन च कर्तव्या एकरूपसमन्विताः ।
 अष्टबाहुश्चतुर्वक्त्रः कुण्डली मुकुटोज्ज्वलः ॥ ३०८ ॥
 हारकेयूरसंयुक्तो रत्नमालोपशोभितः ।
 ऋष्यागतपुरः कार्यः पद्महस्तो दिवाकरः ॥ ३०९ ॥
 शङ्खचक्रधरो देवो वामे च मधुसूदनः ।
 कण्ठाभरणसंयुक्तो मूर्धा च मुकुटोज्ज्वलः ॥ ३१० ॥
 ब्रह्मा पश्चिमतः कार्यो बृहज्जठरमण्डलः ।
 कुम्भिकामक्षसूत्रं च दधत् कूर्चविभूषितः ॥ ३११ ॥

प्रासादा रुचकादयोऽत्र ललिताः प्राग् विंशतिः पञ्चयुक्
तावन्तश्च ततोऽनु केसरिमुखाः(स)न्धारकाः कीर्तिताः ।
मिश्राख्या नव पञ्च चानुकथितास्तद्वन्निगूढाख्यया
षष्टिः स्याच्चतुरन्वितेति विदिता सैषा भवेत् सम्पदे ॥ ३१२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रभारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

रुचकादिचतु षष्टिप्रासादको नाम

षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥

अथ मेर्वादिविंशिका नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ।

अथान्यान् कथयिष्यामः समासात् सूक्ष्मलक्षणान् ।

पञ्चाशतमिहोत्कृष्टान् प्रासादाञ् श्रीधरादिकान् ॥ १ ॥

श्रीधरो हेमकूटश्च सुभद्रो रिपुकेसरी ।

पुष्पो विजयभद्रश्च श्रीनिवासः सुदर्शनः ॥ २ ॥

भगवत्याः प्रिया ह्येते तथा कुसुमशेखरः ।

देवस्य शम्भोर्देयितः प्रासादः सुरमुन्दरः ॥ ३ ॥

नन्द्यावर्तश्च पूर्णश्च सिद्धार्थः (सिरव?शङ्ख)वर्धनः ।

त्रैलोक्यभूषणश्चेति पद्म(सु?स्तु) ब्रह्मणः प्रियः ॥ ४ ॥

पक्षबाहुर्विशालश्च तथान्यः कमलोद्भवः ।

हंसध्वज इति ख्याताः प्रासादा ब्रह्मणः प्रियाः ॥ ५ ॥

लक्ष्मीधरा(क्ष?ख्य): प्रासादो व(स्त?स)तौ मधुविद्विषः ।

महावज्रो रतितनुः सिद्धकामस्तथापरः ॥ ६ ॥

पञ्चचामरसंज्ञश्च नन्दिघोषाख्य एव च ।

अनुकीर्णः सुप्रभश्च सुरानन्दोऽथ हर्षणः ॥ ७ ॥

दुर्धरो दुर्जयश्चैव त्रिकूटो नवशेखरः ।

पुण्डरीकः सुनाभश्च महेन्द्रः शिखिशेखरः ॥ ८ ॥

वराटः सुमुखः शुद्धश्चत्वारिंशादितीरिताः ।
 मिश्रकास्तु दश प्रोक्ता मिथः कर्मप्रभेदतः ॥ ९ ॥
 विज्ञेयो नन्दसंज्ञश्च महाघोषस्तथापरः ।
 वृद्धिरामाभिधानश्च प्रासादोऽन्यो वसुन्धरः ॥ १० ॥
 मुद्गकोऽथ बृहच्छालस्त(था?थै)व च सुधाधरः ।
 संवराख्यः शुकनिभस्तथा सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ ११ ॥
 पञ्चाशदेवं कथिता प्रासादानां यथाक्रमम् ।
 इदानीं लक्ष्मतो ब्रूमः श्रीधरं सर्वकामिकम् ॥ १२ ॥
 वल्लभं सर्वदेवानां पुण्यानां कारणं परम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ॥ १३ ॥
 द्वादशाखिलकोणेषु कर्णशृङ्गाणि योजयेत् ।
 विस्तारं च चतुर्भागमेकैकस्य विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥
 परस्परं च (निष्कोऽसौ?विष्कम्भो) द्विपदोऽत्र विधीयते ।
 द्वयंशानि क(र्णि?र्ण)भद्राणि निर्गमश्चार्धभागिकः ॥ १५ ॥
 *कर्णकर्णपदेन्यस्यात् पदार्धाधेत(?)विस्तृतः ।
 वारिमग्नो विधातव्यो मध्यगः पूर्वमानयोः ॥ १६ ॥
 भद्रस्य मानमुद्दिष्टं विस्ताराद् दशभागिकम् ।
 निर्गमश्च त्रिभिर्भागैः समसूत्रसमाहितः ॥ १७ ॥
 द्विपादा बाह्यभित्तिस्तु द्विपादा चान्धकारिका ।
 भवेच्छतपदः कन्दो गर्भः षड्विंशदंशकः ॥ १८ ॥
 द्विपदः कर्णकन्दश्च प्रत्यङ्गं पदिकं स्मृतम् ।
 निर्गतं चार्धभागेन चतुर्दिक्षु व्यवस्थितम् ॥ १९ ॥
 भागेन निर्गता कार्या शाला चास्य चतुष्पदा ।
 अभ्यन्तरं बाह्यभित्तेः कन्दस्य च तथा बहिः ॥ २० ॥
 उभयोरन्तरं कार्यं विस्तारात् पञ्चभागिकम् ।
 अन्तरालं च कुर्वीत शृङ्गं तच्च चतुष्पदम् ॥ २१ ॥

* 'कर्णः कर्णपदेऽन्यः स्यात् पदार्धाधेत' इति स्यात् ।

विभागस्तादृशोऽस्य स्याद् बाह्यशृङ्गस्य यादृशः ।

भित्तिकन्दान्तराले च कार्यं षड्दारुकं बुधैः ॥ २२ ॥

इतिकातोरणयुतं चतुर्दिक्षु मनोरमम् ।

पुरतो मण्डपं कुर्यात् सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ २३ ॥

भागैः पञ्चाशता कुर्यादस्य मानमिहोर्ध्वगम् ।

एषां मध्ये सर्विशत्या प्रविधेयास्तुलोदयाः ॥ २४ ॥

तेषां मध्येऽशकैः षड्भिर्वेदीबन्धो विधीयते ।

नवधा भाजिते तत्र वेदीबन्धे समैः पदैः ॥ २५ ॥

कुम्भश्चतुष्पदस्तत्र द्विपदस्तु मसूरकः ।

भागेनान्तरपत्रं स्यान्मेखला द्विपदाः स्मृताः ॥ २६ ॥

मूलभागस्तु ये तैः स्याज्जङ्घा दशभिरुच्छ्रिताः ।

द्विपदा मेखला प्रोक्ता द्वयंशे चान्तरपत्रके ॥ २७ ॥

अधस्तादूर्ध्वपक्षेऽस्य तलपट्टस्य चोपरि ।

षोडशांशा विधातव्यास्तत्रैतत् कर्म वार्चयेत्(?) ॥ २८ ॥

भगनेन रूपधारा स्यात् सार्धा सार्धा च सेनकम्(?) ।

वेदी भागत्रयोत्सेधा + द्वेनासनपट्टकः ॥ २९ ॥

(सोर्ध्वसार्ध)भागेन कर्तव्यमूर्ध्वचन्द्रावलोकनम् ।

आसनस्योर्ध्वतः स्तम्भाः सार्धपञ्चपदाः स्मृताः ॥ ३० ॥

भागेनोच्छ्रालकं कार्यं (शाषशीर्ष) सार्धपदोन्नतम् ।

पट्टः स्याद् द्विपदोत्सेधास्त्रिपदश्छाद्यविस्तरः ॥ ३१ ॥

लम्बनं तु तदर्धेन यथाशोभमथापिवा ।

ऊर्ध्वनान्तरः(?)ध्वेनान्तर)पत्रस्य क(स्यलप्य)तेऽप्ययथाक्रमम् ॥

कोणेषु कूटः कर्तव्यो विविधैः कर्मसम्भ्रमैः ।

विस्तरः स्याच्चतुर्भागस्तेषां षड्भाग उच्छ्रयः ॥ ३३ ॥

कर्णा घण्टासभायुक्ताः कूटमानं विधीयते ।

तत्र मृत्युकमात्(?) कुर्यादेकैकं च तदूर्ध्वतः ॥ ३४ ॥

तेषां च तुल्यता कार्या विस्तारादुच्छ्रयादपि ।
 चत्वार एककर्णे स्युरेवं सर्वेषु षोडश ॥ ३५ ॥
 सिंहकर्णस्य विस्ता(रा?र)मानं स्यादष्टभागिकम् ।
 षड्भागस्तु तथोत्सेधो रथिकैश्च विभूषणम् ॥ ३६ ॥
 गुण(द्वा?ता)रसमायुक्तः शूरसेनाभिधानकः ।
 सिंहकर्णो विधातव्यः सर्वकर्मसमाकुलः ॥ ३७ ॥
 सिंहकर्णोदयादूर्ध्वमुरोमञ्जरिका भवेत् ।
 विस्तारादष्टभागासावुच्छ्रा(यन?यान्न)वभागिका ॥ ३८ ॥
 लतापञ्चकसंयुक्ता मञ्जरी स्यात् सुशोभिता ।
 ग्रीवा पादोनभागा स्यादण्डकं भागमुच्छ्रितम् ॥ ३९ ॥
 चन्द्रिका चार्धभागेन कलशश्चैव भागिकः ।
 कूटम्(ध्वे?त्रिं) द्वितीया स्यादुरोमञ्जरिका तथा ॥ ४० ॥
 (भागात्तद्वादशविस्तीर्णा तु सार्धा न त्रिदशावाच्छ्रिता?) ।
 भागमेकं भवेद् ग्रीवा सार्धभागेन चाण्डकम् ॥ ४१ ॥
 कपरिं(?) चार्धभागेन कलशश्च द्विभागिकः ।
 उरःशिखरका(न्य?ण्य)ष्टौ भवन्त्येवं चतु(र्द?र्दि)शम् ॥ ४२ ॥
 द्वितीयकूटकस्योर्ध्वे कर्तव्या मूलमञ्जरी ।
 भागषोडशविस्तारा पदाष्टादशको द(यः?या) ॥ ४३ ॥
 स्कन्धमानं हि सर्वेषां यथोक्तं शतवास्तुनि ।
 ग्रीवा सार्धपदांशा स्यादण्डकं द्विपदान्वितम् ॥ ४४ ॥
 कङ्कतीफलतुल्यानि कुर्यात् सर्वाण्डकानि च ।
 द्विपदं (च?म)ण्डिकायुग्मं कार्यं सामलसारकम् ॥ ४५ ॥
 तस्योपरि स्यात् कलशो वर्तुलस्त्रिपदोच्छ्रितः ।
 तोरणैर्मकरैः पत्रैः साग्रैश्च स(व?म)रालकैः ॥ ४६ ॥
 हस्तिमुण्डैः समाकीर्णम(ध?प्स)रोगणभूषितम् ।
 ईदृशं श्रीधरं कुर्यात् सर्वालङ्कारभूषितम् ॥ ४७ ॥

श्रीधरं कारयेद् यस्तु कीर्त्यर्थमपि मानवः ।
 इहैव ल(वसतः?)भते सौख्यममुत्रेन्द्रत्वमाप्नुयात् ॥ ४८ ॥
 भोगान् भुक्त्वा पुमान् स्वर्गं नीयते च परे पदे ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शान्तश्च स्यान्न संशयः ॥ ४९ ॥
 श्रीधरः ॥

हेमकूटमथ ब्रूमः शुभलक्षणसंयुतम् ।
 सर्वविद्याधरस्थानमाश्रयः स पिनाकिनः ॥ ५० ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे षड्विंशत्यंशभाजिते ।
 तत्र स्युः षड्पदाः कर्णाः शाला द्वादशभागिकाः ॥ ५१ ॥
 निर्गताश्च त्रिभिर्भागैर्भवन्त्येताश्चतुर्दिशम् ।
 अष्टभागायता भूयो निर्गमश्च त्रिभिः पदैः ॥ ५२ ॥
 चतुःस्तम्भाश्चतुष्पा(श्च?श्वा) दिक्षु सर्वास्वयं विधिः ।
 कर्णशालान्तरं कार्यं पदेनैकेन विस्तृतम् ॥ ५३ ॥
 प्रविष्टं तत् पदेनैकं तदेवात्र जलान्तरम् ।
 पदेन कर्णे कोणः स्यात् प्रत्यङ्गे पदविस्तृते ॥ ५४ ॥
 निर्गते चार्धभागेन सममाने मनोरमे ।
 द्विपदा रथिका भद्रे निर्गतार्धपदेन सा ॥ ५५ ॥
 चतु(क?ष्क)र्णेषु कर्तव्यं (मानमेवंधुनु?) धीमता ।
 बाह्यभित्तेस्तु विस्तारस्त्रिपदः परिकीर्तितः ॥ ५६ ॥
 चतुःषष्टिपदो गर्भस्तद्वित्तिस्त्रिपदा भवेत् ।
 त्रिपदं कर्णमानं स्याद् वारिमार्गेण संयुतम् ॥ ५७ ॥
 पदार्धं वारिमार्गः स्यात् पदमस्य प्रवेशकः ।
 शालाष्टपदविस्तीर्णा भागार्धेन विनिर्गता ॥ ५८ ॥
 चतुर्भागायता भद्रं पुनर्भागार्धनिर्गतम् ।
 तलन्या(सौ?सो) हेमकूटे विभक्तपदनिश्चयात् ॥ ५९ ॥
 अस्याग्रे मण्डपं कुर्यान्महान्तं गुणपूजितम् ।
 ऊर्ध्वं (तु) हेमकूटस्य द्विगुणं स्यात् कलाधिकम् ॥ ६० ॥

अधस्तादासनं तस्य सप्तभागसमुच्छ्रितम् ।
 भागेनैकेन खुरके न मध्ये पूर्वमानयोः ॥ ६१ ॥
 अत ऊर्ध्वं पुनर्धूमः पादमानमनुक्रमात् ।
 सप्तभागोन्नतं कुर्याद् वेदीबन्धेऽन्धं सुशोभनम् ॥ ६२ ॥
 तस्यार्धं कुम्भकस्यार्धं(?) भागेन कलशोन्नतिः ।
 पदार्धेनान्तरं पत्रं यथाशोभं विधीयते ॥ ६३ ॥
 सार्धं पदं पुनः प्रोक्ता कपोताली सुशोभना ।
 दशभागोच्छ्रिता जङ्घा कर्तव्यातिसुलक्षणा ॥ ६४ ॥
 अस्योपरि विधातव्यं भर(णैः?) द्विपदोच्छ्रितम् ।
 मेखलान्तरपत्रे तु विधीयते पदत्रये ॥ ६५ ॥
 अधस्तान्मेखलायास्तु खुरकस्य तथोपरि ।
 एकोनविंशतिं भागानन्तरं संग्रचक्षते ॥ ६६ ॥
 कर्मप्रमाणमेतस्य पृथङ् मध्येऽभिधीयते ।
 द्विपदं (राजासेनं स्याद्वेदा + + चतुष्पदा(?) ॥ ६७ ॥
 भवत्यासनपट्टस्य कल्पना भागमानतः ।
 सार्धं भागद्वयं कार्यमूर्ध्वं चन्द्रावलोकनम् ॥ ६८ ॥
 स्तम्भानासनपट्टार्धेन युञ्ज्यादष्टभागिकान्(?) ।
 भरणस्तम्भशीर्षे च प्रत्येकं पदके स्मृते ॥ ६९ ॥
 द्विपदश्चार्धपट्टः स्याच्छाद्यकेन सुशोभितः ।
 त्रिपदं छाद्यकं तत्र विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥
 एतन्मानं समाख्यातमलिन्देषु चतुर्दिशम् ।
 ऊर्ध्वमन्तरपत्रस्य कथयामो यथाक्रमम् ॥ ७१ ॥
 षट्पदे कर्णविस्तारा(रे) सप्तांशा कर्णमञ्जरी ।
 ग्रीवामर्धपदं कुर्यात् पदमेकं तथाण्डकम् ॥ ७२ ॥
 अर्धांशा चन्द्रिका च स्यादेकांशः कलशोच्छ्रयः ।
 अस्योरोमञ्जरी कार्या विस्तारेण चतुष्पदा ॥ ७३ ॥

ग्रीवाण्डके विधात(व्यं?व्ये)भागेनार्धेन कुम्भकः ।

सिंहकर्णस्तु कर्तव्यो द्विपदोऽस्यैव मध्यतः ॥ ७४ ॥

इत्थं पञ्चाण्डकाः कर्णे हेमकूटेषु कीर्तिताः ।

अष्टांशविस्तृतं कुर्यादुदयेन च षट्पदम् ॥ ७५ ॥

अलिन्दस्योर्ध्वभाग(स्तं?स्थं) सिंहकर्णं मनोरमम् ।

सिंहकर्णे द्विभाग(स्थो?स्थां) द्वादशांशकविस्तृत(त?ताम्) ॥ ७६ ॥

उरोमञ्जरिकां कुर्यात् त्रयोदशपदोच्छ्रिताम् ।

सप्तांशविस्तृतः स्कन्धो ग्रीवा च पदमुच्छ्रिता ॥ ७७ ॥

अण्डकं सार्धभागेन चन्द्रिकार्धपदा स्मृता ।

आकाशलिङ्गं कुर्वीत द्विपदं सुमनोरमम् ॥ ७८ ॥

विस्तारो मूलमञ्जर्या भागविंशतिसंमितः ।

उच्छ्रायोऽस्यैकविंशत्या स्कन्धो द्वादशभागिकः ॥ ७९ ॥

पञ्चभौमस्तु कर्तव्यो यथा चारुः स जायते ।

प्रथमा भूमिका तत्र पञ्चभागा विधीयते ॥ ८० ॥

परा परार्धभागेन न्यूना न्यूना विधीयते ।

स्कन्धमानं विधातव्यं पदेनैकेन चोन्नतम् ॥ ८१ ॥

विभज्य दशधा कुर्याल्लताः पञ्चातिसुन्दरीः ।

हेमकूटस्य कर्णेषु प्रत्यङ्गे नरकिन्नराः ॥ ८२ ॥

(म?अ)न्ये तिलककूटाश्च कर्तव्यास्तु निरन्तराः ।

ईदृशी मञ्जरी(हे?है)मे विधेया कूटनिर्गता(ः?) ॥ ८३ ॥

ग्रीवा सार्धपदा प्रो(क्तो?क्ता) विस्तारादष्टभागिका(ः?) ।

अण्डकं द्विपदोत्सेधमेकादशपदायतम् ॥ ८४ ॥

दण्डिका सार्धभागो(च्च?च्चा)विस्तारा (न?न्न)वभागिका ।

त्रिपदः कलशः कार्यो विस्तारेणोच्छ्रयेण च ॥ ८५ ॥

एवंविधं विधत्ते यो हेमकूटं मनोरमम् ।

स क्रीडति पुमान् स्वर्गे यावत् क्रीडा पिनाकिनः ॥ ८६ ॥

हेमकूटः ।

सुभद्राख्यमथ ब्रूमः प्रासादं भद्रभद्रकम् ।

सुभद्रोऽयमतः प्रोक्तो भद्रे भद्रे यतोऽन्वितः ॥ ८७ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ।

गर्भः षोडशभिर्भागैः (स्कःक)न्दः षट्पदविस्तृतः ॥ ८८ ॥

भित्तिः स्यात् पदविंशत्या तत्र कन्दसमाः (सुःस्मृ)ताः ।

कर्णाः प्रत्यङ्ग(कोःका)न्येषां प्रत्येकं पदविस्तरात् ॥ ८९ ॥

द्वयंशो मध्यगविस्तार उभयोर्निर्ग(तःम)ः पदम् ।

द्वयंशः सरसि(?)विस्तार आक्रान्तपदनिर्गमैः ॥ ९० ॥

द्विपदा बाह्यभित्तिः स्याद् विस्तारेण सुशोभिता(?) ।

चतुष्पदायतः कर्णो भद्रं तस्य द्विभागिकम् ॥ ९१ ॥

निर्गमोऽस्यार्धभागेन स्यादेवं सुन्दरं कृतम् ।

कर्णे कोणा(सुःस्तु) पदिका दिक्षु सर्वासु शोभनाः ॥ ९२ ॥

निगूढविस्तरः कार्यः सा(र्धःर्ध)पञ्चपदोन्मितः ।

द्विपदो निर्गमस्तत्र सर्वदिक्षु विधीयते ॥ ९३ ॥

सलिलान्तरकं कुर्यादन्तरे कर्णभद्रयोः ।

प्रविष्टं पदमानेन पदपादेन विस्तृतम् ॥ ९४ ॥

ऊर्ध्वमानमथैतस्य यथावदभिधीयते ।

राजपीठं विधातव्यं भागार्धेनातिसुन्दरम् ॥ ९५ ॥

ऊर्ध्वभागेन खुरकपीठं स्याच्चतुरंशकम् ।

द्विपदः कुम्भकोत्सेधः पादोनं (सोमःस्यान्म)सूरकम् ॥ ९६ ॥

भागार्धेनान्तरं पत्रं पादोनांशेन मेखलाः ।

षड्भागमुच्छ्रिता जङ्घा भागेन ग्रासपट्टिकाः(?) ॥ ९७ ॥

मेखलान्तरपत्रे च प्रत्येकं पदके स्मृते ।

पट्टादधरखुरादूर्ध्वं भागा सैकां दशान्तरम् (?) ॥ ९८ ॥

राजासनं पदं प्रोक्तमुत्से(धं?धे)नातिशोभनम् ।

भागार्धेनात्यधिके कार्ये द्वे पदे वेदिकोच्छ्रयः ॥ ९९ ॥

पदार्धमासनं कार्यं अंशं चन्द्रावलोकनम् ।

ऊर्ध्वमासनपट्टस्य स्तम्भः पञ्चपदान्वितः ॥ १०० ॥

(पञ्चपदान्वितः?)

भरणं स्तम्भशीर्षं च पदेन स्यात् समुच्छ्रितम् ।

छाद्यकेनावृतं कुर्यात् पदेनैकेन पट्टकम् ॥ १०१ ॥

द्विपद(स्थः प्रःश्छाद्य)विस्तारः पदेनैकेन लम्बनम् ।

ऊर्ध्वमन्तरपत्रस्य कथयामो यथास्थितम् ॥ १०२ ॥

चतुष्पदेषु कर्णेषु ये कर्णाः पदिकाः स्थिताः ।

तेषु (षिखरकाः?) कार्या विस्तारोच्छ्रायतः पदम् ॥ १०३ ॥

कलशोनं तथा ग्रीवा पदार्धेन समुच्छ्रिता ।

द्विपदः सिंहकर्णस्तु विस्तारोच्छ्रायतः समः ॥ १०४ ॥

(शिखिरोऽधः?) विधातव्या त्रिपदी कर्णमञ्जरी ।

ऊर्ध्वं च त्रिपदा (सःसा) स्याद् द्विपदा स्कन्धविस्तृतिः ॥ १०५ ॥

सार्धभागेन कर्तव्यं सग्रीवं कलशाण्डकम् ।

सिंहप्रासादवत् कर्णा विधेयाः शुभलक्षणाः ॥ १०६ ॥

मूलमानेन विस्तीर्णा नि(र्गू?गू)ढस्योपरि स्थिताः ।

द्वितीयश्च तृतीयश्च तदूर्ध्वं च समुच्छ्रितः ॥ १०७ ॥

कर्णस्थकलशादूर्ध्वं कर्तव्या मूलमञ्जरी ।

विस्तारो दशभा(गांशानु?गःस्यादु)च्छ्रायो द्वादशांशकः ॥ १०८ ॥

लताभिः पञ्च(वि?)भिर्युक्ता विचित्रैश्चापि कर्मभिः ।

षट्पदोऽस्य स्मृतः स्कन्धो ग्रीवा चास्य चतुष्पदा ॥ १०९ ॥

विस्तारेण समा ख्याता पादोनं पदमुच्छ्रिता ।

अण्ड(कां?कं) साङ्घ्रिभागेन (भवि?)षड्भागविस्तृतम् ॥ ११० ॥

पादोनं चन्द्रिकाभागं कलशश्च द्विभागिकः ।

प्रासादं ये सुभद्राख्यं कारयन्ति सुलक्षणम् ॥ १११ ॥

कल्पकोटिसहस्राणि भद्रं तेषां शिवाग्रतः ।

सुभद्रः ॥

सर्वपापक्षयकरस्त्रिषु लोकेषु कीर्तितः ॥ ११२ ॥

रिपुकेसरिसंज्ञोऽयं प्रासादः परिकीर्त्यते ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भामविंशतिभाजिते ॥ ११३ ॥

द्विपदा बाह्यभित्तिः स्यान्मध्यभित्तिश्च ताव(ताःती) ।

भ्रमणी द्विपदा कार्या विस्तारात् सर्वदि(ग्रताः?गता) ॥ ११४ ॥

गर्भोऽष्टविस्तृतः कर्णः(+कन्द?)सार्धभागिकः ।

चतुर्भागायतं भद्रं कुर्याद् भागेन निर्गतम् ॥ ११५ ॥

रथकोऽसौ समुद्दिष्टो विधातव्यश्चतुर्दिशम् ।

पार्श्वयोश्च प्रतिरथौ कार्यौ सार्धपदायतौ ॥ ११६ ॥

पदार्धेन विनिष्क्रान्तौ + + + विविधेष्वपि ।

कर्णायामश्चतुर्भागो द्विपदं कर्णभद्रकम् ॥ ११७ ॥

पदार्धेन विनिष्क्रान्तं बाह्यकर्णे व्यवस्थितम् ।

पद(ः?)पादेन विस्तीर्णं प्रविष्टं पदमात्रकम् ॥ ११८ ॥

कार्यं जलान्तरं मध्ये कर्णस्य तिलकस्य च ।

अंशस्तिलकविस्तारः पदेनैकेन निर्गमः ॥ ११९ ॥

सुवर्णिताः स्युस्तिलका भद्रकोणव्यवस्थिताः ।

अष्टभागं भवेद् भद्रं पदत्रयविनिर्गतम् ॥ १२० ॥

अष्टशृङ्खलपि तद् दिक्षु कर्तव्यं स्तम्भभूषितम् ।

ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः प्रतिपत्रं सुखावहम् ॥ १२१ ॥

ऊर्ध्वप्रमाणं द्विमुणं कर्तव्यं द्विकलाधिकम् ।

भागैरेकोनविंशत्या मध्ये कार्यस्तलोदयः ॥ १२२ ॥

एभ्यो मध्याद् विधातव्या वेदीबन्धाः सुशोभनाः ।

द्विपदः कुम्भकः सार्धं पदं तु कलशो भवेत् ॥ १२३ ॥

मेखलान्तरपत्रे तु कार्ये सार्धपदोन्नते ।

नवभागोन्नता जङ्घा द्विपदा रूपपट्टिका ॥ १२४ ॥

मेखलान्तरपत्रे तु विदधीत पदद्वयम् ।

मध्यं स्यात् षोडशपदं (मानायाः?)सुर(के?को)ऽस्य च ॥ १२५ ॥

राजसेना तथा वेदी तद्वदासनपट्टकम् ।

पदैः पञ्चभिरेतानि विदध्यादूर्ध्वमानतः ॥ १२६ ॥

चन्द्रावलोकनं कुर्याद् द्विपदं भागमानतः ।

उपर्यासनपट्टस्य स्तम्भः स्यात् सप्तभागिकः ॥ १२७ ॥

भरणं स्तम्भशीर्षं च द्विपदं चोर्ध्वमानतः ।

द्विपदः पट्टपिण्डः स्यात् त्रिपदश्छाद्यविस्तरः ॥ १२८ ॥

ऊर्ध्वमन्तरपत्रस्य साम्प्रतं परिकीर्त्यते ।

चतुष्पदः कर्णशृङ्गमायामोच्छ्रायतः + + (?) ॥ १२९ ॥

ग्रीवाण्डकं च भागेन चन्द्रिकार्धपदेन च ।

कलशश्चार्धभागेन कर्तव्योऽत्र न संशयः ॥ १३० ॥

अस्योर्ध्वतः प्रकर्तव्या द्वितीया कर्णमञ्जरी ।

त्रिपदायामविस्तारा ग्रीवाण्डकलशा(ः)पदम् ॥ १३१ ॥

भद्रकर्णाश्रिते द्वयंशो विस्तारस्तिलके स्मृतः ।

उच्छ्र्यास्त्रिपदस्तस्य द्वितीयः स्यात् तदूर्ध्वतः ॥ १३२ ॥

सार्धद्विपद उच्छ्र्यायो विस्तारो द्विपदः स्मृतः ।

सप्तभागोन्नतं तद्वद् विस्तारादष्टभागिकम् ॥ १३३ ॥

सिंहक(र्णो?र्णं) प्रकुर्वीत सुसूत्रमानपूर्वकम्(?) ।

उरोमञ्जरिका कार्या द्वितीया तिलकोर्ध्वतः ॥ १३४ ॥

अर्धभागायता मूले नवभागमितोच्छ्रया(ः?) ।

तस्यास्तु स्कन्धविस्तारो भागैः स्यादर्धपञ्चमैः ॥ १३५ ॥

ग्रीवार्धभागमुत्सेधाद् भागेना(मू?म)लसारकम् ।

चन्द्रिका चार्धभागेन कलशो भागमुच्छ्रितः ॥ १३६ ॥

द्वितीया कर्णशृङ्गस्य स्यादूर्ध्वे मूलमञ्जरी ।

भा(गा?ग)द्वादशविस्तारा कलयाभ्यधिकोर्ध्वतः ॥ १३७ ॥

स्कन्धः सप्तप(दश?दः) प्रोक्तो ग्रीवा भागसमुच्छ्रिता ।

अण्डस्य द्वयंश उत्सेधो विस्तारः सप्तभागिकः ॥ १३८ ॥

चन्द्रिकैकेन भागेन कलशस्तु द्विभागिकः ।

(तला?लता)नागरिका कार्या(नात्यन्तक्त?नान्यत् क)र्मात्रं योजयेत् ॥

जेस्मिन् (?) विजयमिच्छन्ति भोगान् सुविपुलानपि ।

सर्वपापप्रणाशं च कार्यो वा रिपुकेसरी ॥ १४० ॥

रिपुकेसरी ॥

इदानीं (प्रेषःपुष्प)कं नाम प्रासादमभिदध्महे ।

निर्मि(तं?तो) धनदस्यार्थे (यः) पूर्वं विश्वकर्मणा ॥ १४१ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ।

विभज्यस्त्रिपदाकीर्णं (?) चत्वारोऽपि विदि(ग्र?ग्ग)ताः ॥ १४२ ॥

कर्णमकर्णगर्भाद्य(?) सूत्रं तेन समानि च ।

रक्तानि दत्त्वा सूत्राणि तदग्रद्वितयः(?) स्मृताः ॥ १४३ ॥

सूत्रेण चतुरः कर्णान् दिक्स्थानुत्पा(त?द)येत् ततः ।

चत्वारोऽन्ये पुनः कर्णाः संसिद्धाः सर्व(मे?ए)व हि ॥ १४४ ॥

एवमष्टदला(न्) कर्णान् वृत्ताने(वं?व) प्रकल्पयेत् ।

भागप्रवेशविस्तारं कर्णान्ते च जलान्तरम् ॥ १४५ ॥

शाला स्यात् षट्पदायामा त्रिपदोऽस्याश्च निर्गमः ।

द्विपदा बाह्यभित्तिः स्यात् पदपदा कन्दविस्तृतिः ॥ १४६ ॥

कन्दगर्भस्थितं तन्त्रं भ्रामयेत् कर्णकंवत(?) ।

उत्पद्यते ततो वृत्तं समसूत्रं सुशोभनम् ॥ १४७ ॥

कुर्वीत तस्य मध्ये तु कन्दं षोडशपत्रकम् ।

भित्तिः कन्दान्तराले यच्छेषं+स्याद्धमन्तिका(?) ॥ १४८ ॥

पुष्पकस्य तलन्यासः पञ्चपुष्पाकृतिर्भवत् ।

इदानीमूर्ध्वमस्यैव कथ्यते मानपूर्वकम् ॥ १४९ ॥

(एकोनत्रिंशदन्यूर्ध्वं सा स्युः पदान् पूर्व?) यथाक्रमम् ।

अतो बहिर्विधातव्यः पीठबन्धः पदत्रयम् ॥ १५० ॥

(जयो?) कुम्भः सपादांशः पादोनः स्यान्मसूरकः ।

अर्धेनान्तरपत्रं स्यात् कपोताली च तत्समा ॥ १५१ ॥

माला विद्याधरी कार्या पुष्पहस्तैरलङ्कृता ।

पदद्वादशकोत्सेधः (सगुरुः?) स्यात् तुल्योदयः ॥ १५२ ॥

१. 'यत्र भ्रामयेत् कर्णकन्दः' इति स्यात् ।

अस्य मध्ये विधातव्यो वेदीबन्धस्त्रिभागिकः ।
 पदार्थं खुरकं कुर्याद् भागेनैकेन कुम्भकम् ॥ १५३ ॥
 मसूरकं पदार्थेन मेखला पदमानतः ।
 षड्भागमुच्छ्रिता जङ्घा पुष्पके परिकीर्तिता ॥ १५४ ॥
 (व?म)रालग्रा(स?ह)मकरैः पुष्पविद्याधरैरपि ।
 सूक्ष्मकर्णसमा कर्णा (?) चास्य जङ्घा विधीयते ॥ १५५ ॥
 भागेनैकेन भरणं भागेनैकेन पट्टिका ।
 मेखलान्तरपत्रं च भागेनैकेन चोच्छ्रितम् ॥ १५६ ॥
 ऊर्ध्वतस्तलपट्टस्य पट्टस्योर्ध्वस्य मस्तकम् ।
 भागैकादशका तावद् विधेया कर्णचर्चिता(?) ॥ १५७ ॥
 भागेन राजसेनं स्याद् द्विभागो वेदिकोच्छ्रिताः(?) ।
 भवेदासनपट्टश्च भागार्थेन समुन्नतः ॥ १५८ ॥
 चन्द्रावलोकनं कुर्याद् भागिकं त्र्यंशलम्बितम् ।
 आसनस्योर्ध्वतः कुर्यात् स्तम्भं पञ्चपदं शुभम् ॥ १५९ ॥
 हीरग्रहणकं शीर्षं द्वयं सार्धैकभागतः ।
 (गुला?गल)पट्टश्च भागेन मल्लकाद्यं द्विभागिकम् ॥ १६० ॥
 भागेन लम्बितं तत् स्यात् सुसृष्टं सुमनोरमम् ।
 एतस्योपरिभागेन कर्तव्या (छेद?छाद्य)पट्टिका ॥ १६१ ॥
 पदेनैकेन चास्योर्ध्वं कपोताल्यन्तरच्छदे ।
 भागषट्केन विस्तीर्णे पञ्चभागसमुन्न(तं?ते) ॥ १६२ ॥
 शूरसेनं प्रकुर्वीत मध्यवर्तोलितोरणम् ।
 वरालग्रासमकरैर्वराहगजसुण्डकैः(?) ॥ १६३ ॥
 एवमादिभिराकीर्णमलिन्दस्योपरिस्थितम् ।
 कोणं कुर्यात् पुष्पकूटं पुष्पकर्मनिरन्तरम् ॥ १६४ ॥
 चतस्रो भूमयोऽस्य स्युस्ताश्च न्यूनाः पुरः पुरः ।
 प्रथमा भूमिका + + + + + स्यात् परा परा ॥ १६५ ॥

१. 'सूक्ष्मकर्णसमाकीर्णा' इति स्यात् । २. 'द्विभागाद् वेदिकोच्छ्रिता' इति

आद्यस्य कोणकूटस्य विस्तारस्त्रिपदः स्मृतः ।
 परेषां पुनरेषं स्यात् क्रमादनोऽङ्घ्रिणाङ्घ्रिणा ॥ १६६ ॥
 बाह्यात् परस्परं क्षेपमंशेनांशेन योजयेत् ।
 मध्ये लतास्य कर्तव्या भागषट्केन विस्तृता ॥ १६७ ॥
 स्कन्धे द्विपदविस्तारां विदध्यान्मध्यमञ्जरीम् ।
 षड्गुणं सूत्रमादाय लतारेखां समालिखेत् ॥ १६८ ॥
 आलेखं च ततः कुर्यात् सुशुद्धं भागसुन्दरम् ।
 भागेन वेदिकोत्सेधः षड्भागः स्कन्धविस्तरैः(?) ॥ १६९ ॥
 भागेनैकेन च ग्रीवा द्वाभ्यां सामलसारकम् ।
 विशालपद्मसदृशं विधेयं पद्मशीर्षकम् ॥ १७० ॥
 चन्द्रिका पद्मपत्राभा द्वयमेतत् पदोच्छ्रितम् ।
 त्र्यंशः स्यात् (कलशोर्मृत्या जनकैरवकुड्मलः?) ॥ १७१ ॥
 एवंविधं विधत्ते यः पुष्पकं सुमनोरमम् ।
 तुष्येत् तस्य धनाधीशः शुभैर्याति व्रजेच्च सः(?) ॥ १७२ ॥
 पुष्पकः ॥

ब्रूमो विजयभद्रस्य सुभद्रस्य च लक्षणम् ।
 वल्लभः षण्मुखस्यायं बहुपुण्यविधायकः ॥ १७३ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे साष्टविंशतिभाजिते ।
 कुर्यादष्टपदं क(र्णः?)भद्रं वास्य चतुष्पदम् ॥ १७४ ॥
 पदेनैकेन निर्यातं सर्वकोणेष्वयं विधिः ।
 उदकान्तरकं कार्यं पदक्लृप्तं पदायतम् ॥ १७५ ॥
 दशभागायतं भद्रं कार्यं त्रिपदनिर्गतम् ।
 दिक्षु(येव?) विधेयः स्यान्मुखतो मुखमण्डपः ॥ १७६ ॥
 त्रिपदा बाह्यतो भित्तिस्त्रिपदा चान्धकारिका ।
 मध्ये प्रासादमानं तु कर्तव्यं षोडशांशकम् ॥ १७७ ॥
 कर्णा चतुष्पदा(?) कन्दे भद्राण्येषां पदद्वयम् ।
 निष्क्रान्तानि पदेन स्युः कन्दकर्णाश्रितानि हि ॥ १७८ ॥

षट्पदं मध्यमजं स्याद् द्विपदश्चास्य निर्गमः ।
कर्णशालान्तरं यत् स्यात् (सा गन्धमार्गे?) विधीयते ॥ १७९ ॥
द्विपदा कन्दभित्तिः स्याद् गर्भो द्वादशभागिकः ।
ऊर्ध्वमानमिह प्रोक्तं द्विगुणं द्विकलाधिकम् ॥ १८० ॥
चतुर्विंशतिभागान्ते तुलोच्छ्रायस्य मध्यतः ।
ऊर्ध्वमानं तु यत् प्रोक्तं ग्रीवाण्डाद्यं ततो बहिः ॥ १८१ ॥
कार्यं तुलोदयं स्यांच(?) वेदीबन्धोऽशसप्तकम् ।
त्रिभागं कुम्भकः सूत्रं(?) सार्धभागो ममूरकः ॥ १८२ ॥
भागेनान्तरपत्रं स्यात् सार्धभागेन मेखला ।
जङ्घा द्वादशभिर्भागैर्द्वयं वा गलपट्टिका(:?) ॥ १८३ ॥
अन्धारिका च भागार्धं सार्धभागा वरण्डिका ।
भागेनान्तरपत्रं स्याद् रूपकर्मसमाकुलम् ॥ १८४ ॥
ऊर्ध्वाधःपट्टयोर्मध्ये(?)भागो भागैकविंशतिः ।
अतो मध्याद् विधातव्यं द्विपदं राजसेनकम् ॥ १८५ ॥
वेदी चतुष्पदा प्रोक्ता भागेनासनपट्टकः ।
पदद्वयेन सार्धेन कार्यं चन्द्रावलोकनम् ॥ १८६ ॥
नवभागोच्छ्रितः रतम्भः पत्रकर्मसमाकुलः ।
भागेनैकेन भरणं शीर्षकं च द्विभागिकम् ॥ १८७ ॥
उच्छालकमुभौ भागौ हारग्रहणमासिकम्(?) ।
द्वयंशा पट्टोच्छ्रितिर्भागचतुष्का बाह्यविस्तृतिः ॥ १८८ ॥
(द्वयंशास्यालम्बनोर्ध्वे तु रूपकं चक पट्टिका:?)
सा च भागत्रयेण स्यात् सुश्लिष्टा साधुचित्रिता ॥ १८९ ॥
कर्णकर्णेषु शृङ्गाणां विस्तृतिर्द्विपदा भवेत् ।
ऊर्ध्वमानं त्रिभागं स्याद् ग्रीवाण्डकलशैः सह ॥ १९० ॥
मध्ये चतुष्पदा क(र्मा?र्णा?)दुरोमञ्जरिका भवेत् ।
उच्छ्रायः षट्पदस्तस्या ग्रीवाण्डं द्विपदोच्छ्रितम् ॥ १९१ ॥
भागेन कलशोत्सेधः स्यादेवं कर्णनिर्मि(त?ति): ।
कर्णा + पिण्डिका कार्या भद्रदेशे तथोच्छ्रितः ॥ १९२ ॥

कर्तव्यः सप्तभिर्भागैः सिंहकर्णः सुचर्चितः ।
 कर्णद्वये तथा शृङ्गे तयोरूर्ध्वं चतुर्दिशम् ॥ १९३ ॥
 उरोमञ्जरिकायामादुदया(?)दश पञ्च च ।
 तस्याश्चाष्टपदः कन्दो ग्रीवा भागसमुन्नता ॥ १९४ ॥
 द्विभागमण्डकं कार्यं चन्द्रिका पदमुच्छ्रिता ।
 त्रिपदाः कलशास्तेषां मध्यगान्तरमञ्जरी ॥ १९५ ॥
 (तला?लता)पञ्चकसंयुक्ता चरटक्रिययान्विता ।
 भागविंशतिविस्तीर्णा कर्तव्या मूलमञ्जरी ॥ १९६ ॥
 द्वाविंशतिसमुत्सेधा स्कन्धो द्वादशभागिकः ।
 मध्या लता (सू?शू)रसेनकर्मरूपसमाकुला ॥ १९७ ॥
 ग्रीवा सार्धपदोत्सेधा कार्या द्विपदमण्डकम् ।
 भागेन (च?म)ण्डिकां कुर्यात् कलशं तु चतुष्पदम् ॥ १९८ ॥
 एकोनत्रिंशदण्डोऽयं प्रासादः शुभलक्षणः ।
 षट्पदं पीठमाख्यातं चरितं पूर्वकर्मवत् ॥ १९९ ॥
 आरोग्यं पुत्रलाभश्च भवेद विजयकारिणाम् ।
 तेषां तुष्यति षड्वक्रो भक्त्या ये विदधत्यमुम् ॥ २०० ॥
 विजयभद्रः ॥
 अधुना श्रीनिवासाख्यः प्रासादः सम्यगुच्यते ।
 तृप्त्यर्थमेव क्रियते जयश्रीस्तत्र तिष्ठति ॥ २०१ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ।
 अन्धारिका च भि(त्ते?त्ति)श्च पदे द्वे द्वे यथाक्रमम् ॥ २०२ ॥
 गर्भश्च षट्पदः कार्यः श्रीनिवासस्य सुन्दरः ।
 कन्दे स्युर्द्विपदाः कर्णा भागेन सलिलान्तरम् ॥ २०३ ॥
 भद्रं चतुष्पदं कार्यं पदेनैकेन निर्गतम् ।
 बाह्याः स्युस्त्रिपदाः कर्णा भद्रैश्च द्विपदैर्युताः ॥ २०४ ॥
~~भद्रं~~ चतुर्थकर्णे(षु?तु) पदेनैकेन निर्गतम् ।
 कोणकोणाश्च कर्तव्याः पदस्यार्धं समायताः ॥ २०५ ॥

पदेनाम्बुधरः कार्यः प्रवेशाद् विस्तृतेरपि ।
 विस्तारात् षट्पदं भद्रं पदद्वितयनिर्गमम् ॥ २०६ ॥
 नीरस्यालान्तरे(?) कार्या(?) तिलका द्वयंशविस्तृताः ।
 पदेनैकेन निष्क्रान्ताः शोभिताश्चारुकर्मणा ॥ २०७ ॥
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः श्रीनिवासे यथाक्रमम् ।
 खुरकस्योच्छ्रितः पीठे पादोनं पदमिष्यते ॥ २०८ ॥
 कुर्यात् सपा(दो?दे)नांशेन जाड्यकुम्भ(?!?)समुच्छ्रितिम् ।
 भागेनान्तरपत्रे तु भागेनैकेन मेखलाम् ॥ २०९ ॥
 पीठोत्सेधश्चतुर्भागः श्रीनिवासे भवेदिति ।
 वेदीबन्धस्य खुरको भागार्धेन समुन्नतः ॥ २१० ॥
 कुम्भकः सार्धभागेन तदर्धेन म + + + ।

[इत ऊर्ध्वमादर्शग्रन्थे द्वे पत्रे (१६८, १६९ तमे) लुप्ते । तयोराहत्य उपपञ्चाशाः
 श्लोका नष्टाः संभाव्यन्ते ।]

+ + + + + पञ्जरात् ॥
 त्रिभागेन तु भागस्य अष्टशृङ्गस्य(?) पक्षकः ।
 नष्टशृङ्गस्य (?) शृङ्गस्य चान्तरे सलिलान्तरम् ॥
 अन्योन्यं शृङ्गानिष्कासो भागेनैकेन शस्यते ।
 दशभागायतं भद्रं चतुर्थांशेन निर्ग(म?तम्) ॥
 एवमेष तलच्छन्दः कथितः सुरसुन्दरे ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो भागशुद्ध्या यथाक्रमम् ॥
 पीठादारभ्य विस्ता(रो?राद्) द्विगुणा स्यात् समुन्नतिः ।
 उपपीठेऽप्यलंकुर्याद् भागमेकं समुन्नतम् ॥
 पदेन पादहीनेन (गजा?)द्वारसमुन्नतिः ।
 उच्छ्रितिर्जाड्यकुम्भस्य सार्धभागा विधीयते ॥
 कलशोत्तरपत्रे च पादहीनपदोन्नते(?!?) ।
 अस्यादूर्ध्वं तु कर्तव्या पदार्थं ग्रासपट्टिका (?) ॥

(आयपीठोच्छदा प्रोक्ता मूलभूतोभिवास्तुनः?) ।
 खुरकश्च पदार्थेन (सार्धभागे कुम्भपूरकः?) ॥
 भागेनैकेन कलशः समवृत्तोऽतिसुन्दरः ।
 भागं सपादं कुर्वीत मेखलान्तरपत्रके ॥
 षड्भागे(नु^१नो)च्छ्रिता जङ्घा भागार्धं ग्रासपट्टिका ।
 कर्णे चैकेन भागेन भागार्धं (कुणपो?) भवेत् ॥
 भागेन हीरकं कुर्याद् यथा शोभा प्रजायते ।
 मेखलान्तरपत्रे च सार्धभागेन कारयेत् ॥
 ऊर्ध्वतः पदयोर्मध्ये स्यात् सार्धद्वादशांशकम् ।
 तन्मध्ये सार्धभागं तु राजसेनं सपट्टकम् ॥
 द्वौ भागौ वेदिका भागस्यार्धमासनपट्टकः ।
 भागं चन्द्रावलोकं स्यात् स्तम्भमासनमूर्धनि ॥
 निवेशयेत् पञ्चभागं भरणं भागिकं ततः ।
 भागमेकं समुच्छ्रा(यां^२यः) शीर्षकं द्विगुणायतम् ॥
 पट्टस्य कुर्यादुत्सेधं भागमर्धसमन्वितम् ।
 सार्धभागद्वयं बाह्यं (तद्रूपं दृतावलं छिवितम्?) ॥
 द्वौ भागौ छाद्यकस्योर्ध्वे कार्या वासनपट्टिका ।
 विराजमाना सा कार्या रूपग्रासवरालकैः ॥
 मेखलान्तरपत्रे(पु^३तु) भागाद् रूपसमन्विते ।
 भागद्वयेन कर्तव्या द्वितीया मेखला बुधैः ॥
 कूटान्यतः परं कुर्यात् कर्मयुक्तानि सर्वतः ।
 कूटेषु कुर्यात् प्रत्येकं सिंहकुम्भसमन्वितम्(?) ॥
 उरोमञ्जरिका तानि भवेत्येव(?) यथाक्रमम् ।
 अष्टाण्डकत्रयान्तेषु षडण्डं स्याच्चतुष्टयम् ॥
 चतुरण्डं द्वयं कृत्वा त्वेवं कर्णे विदुर्बुधाः(?) ।
 नव कुण्डानि(?) तुल्यानि विस्तारेण पदद्वयम् ॥

सार्धं भवति प्रत्येकं सार्धमुच्चैः पदद्वयम् ।
 एवं (निकर्त एकैकं स्यात्?) तत्पदं वांशदण्डकम् ॥
 सिंहकर्णः षडुच्छ्रायो भद्रे स्यात् पुवविस्तृतिः ।
 द्वितीय(श्चानुदन्तश्चा?) शोभितश्चारुर्मणा ॥
 तृतीयो द्विपदः कार्यः सिंहकर्णो मनोरमः ।
 विस्तारो मूलमञ्जर्याश्चतुर्दशपदो भवेत् ॥
 भागसप्तदशोच्चे तु मातृभिः(?) पञ्चकोशवत् ।
 स्कन्धश्चाष्टपदः प्रोक्तो ग्रीवा सार्धपदोच्छ्रिता ॥
 द्विपदश्चाण्डकोत्सेधश्चन्द्रिकार्धपदोन्न(तः?ता) ।
 कलशं त्रिपदं प्राहुर्मातुलिङ्ग(स्य?स)मुद्भवम् ॥
 मध्ये तु मूलमञ्जर्याः कुर्वीत शिखरत्रयम् ।
 सुरेखं सुप्रसन्नं च सर्वदेशिविभूषितम् ॥
 षट्पञ्चाशं(?) भवेदस्मिन्नण्डकानां शतद्वयम् ।
 एवं श्रेष्ठोऽयमाख्यातः प्रासादोऽण्डकमानतः ॥
 (सप्तशत)मेकान्नसप्तत्या युतं स्यान्मध्यमे पुनः ।
 एकोत्तरं श(रं?तं)प्राहुरण्डकानां कनीय(साम?सि) ॥
 मन्दारकुसुमाकारा(ण्या?ण्येता)नि सुरसुन्दरे ।
 कुर्याद् (य) एनं प्रासादमीदृशं सुरसुन्दरम् ॥
 स वैरिञ्चं (यु)गशतं सूर्यलोके महीयते ।

सुरसुन्दरः ॥

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमः प्रासादं नृपट्टिदम् ॥
 भूषितं (मना?नाग)कन्याभिर्वल्लभं पृथिवीभुजाम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ॥
 पदद्वयमिदं यत्र नादाय(?) ब्रह्मणः पदात् ।
 वृत्तं समालिखेद्गर्भा वस्मैलं च तुलं(?) भवेत् ॥
 भागेन च तुलो(?)भित्तिर्भागेन स्याद् भ्रमन्तिका ।
 भागेन बाह्यभित्तिः स्यात् पदपञ्चकवर्जिता ॥

कन्दे (वि?द्वि)भागं कुर्वीत पुष्पशेखरकं ततः ।
 द्विपदा बाह्यतः कर्णा विधातव्यास्तु वर्तुलाः ॥
 यथागात्रं विधातव्याः स्वस्तिकाकृतयश्च ते ।
 चत्वारो रथिका(कन्दो कोणे कर्णे?) चतुष्टयम् ॥
 पञ्चभागायतं भद्रं सार्धभागविनिर्गमम् ।
 भद्रान्तपातिनी कुर्यात् प+ङ्गे पदसंमिते ॥
 शेषं भद्रं तु कर्तव्यं विस्तारेण त्रिभागिकम् ।
 भागस्यार्धेन विस्तीर्णं तथा भागप्रवेशकम् ॥
 एतत्प्रमाणं कर्तव्यमिह प्राज्ञैर्जलान्तरम् ।
 तलच्छन्दानुगं भद्रं नन्द्याव(र्तै?ते) यथाक्रमम् ॥
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो नन्द्याव(र्तै?ते)यथाक्रमम् ।
 सार्धभागद्वयोच्छ्रा(यामासनं तस्य?)दूर्ध्वतः ॥
 (कार्यतुलोदयस्य+?) मध्ये भागैस्तथाष्टभिः ।
 तुलोदयस्य मध्ये स्याद् वेदीबन्धो द्विभागि(के?क): ॥
 भागिकः कुम्भको(सेन?त्सेधो) मेखलाकलशान्वितः ।
 चतुर्भागा भवेज्जङ्घा भागिकं भरणं भवेत् ॥
 मेखलान्तरपत्रे तु भागेनैकेन कल्पयेत् ।
 पादेन राजसेनं स्याद्(वद्वत्तच्च पट्टतः?) ॥
 वेदी साष्टपदोत्सेधा भागपादेन चासनम् ।
 भागार्धेन नतं कुर्याद् भागं (पञ्चवलोकत?) ॥
 पादोनत्रिपदः स्तम्भः पल्लवरूपशोभितः ।
 हीरग्रहणशीर्षं च कुर्याद् भागसमुच्छ्रिति ॥
 पट्टमेकपदोत्सेधं छाद्यकं द्विपदायतम् ।
 भागेन कुर्यादुपरि पट्टिकां चारुकर्मणा(म्?)॥
 अंशांस्त्रीनुच्छ्रितः सिंहकर्णः स्याच्चतुरायतः ।
 भूषितः(स्वरसे+न?) स च कार्योऽतिशोभनः ॥

१. 'यमासनं स्यात् त' इति स्यात् । २. 'कार्यस्तुलोदयस्तस्य' इति स्यात्

३. 'चन्द्रावलोकनम्' इति स्यात् ।

विस्ताराद् द्विपदे शृङ्गे सार्धभागद्वयोच्छ्रिते ।
 अस्योर्ध्वमन्यशृङ्गं स्यात् सदृशो(च्छ्रिच्च)परिस्तृतिः(?) ॥
 प्रत्य(ङ्गस्तु व?ङ्गेषु च) कूटानि सार्धाशोच्छ्रायवन्ति च ।
 द्वितीयः सिंहकर्णः स्यात् सिंहकर्णस्य मस्तके ॥
 (ततो शृङ्गं?) तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तस्य चोपरि ।
 षड्भागविस्तृता कर्ण(ः?)कूटस्था मूलमञ्जरी ॥
 सप्तभागोच्छ्रिता च स्यात्(स्कन्धस्यच्च शोच्छ्रितिः?) ।
 स्यादुरोमञ्जरी मूलमञ्जर्या मध्यसंश्रया ॥
 भागैश्चतुर्भिर्विस्तारः षड्भिश्चास्याः समुच्छ्रितिः ।
 कलशाण्डकसंयुक्ता कर्णाभ्यन्तरमञ्जरी ॥
 स्यादण्डकैकविंशत्या नन्द्यावर्तः सुलक्षणः ।
 भक्त्या ये कारयन्त्येनं नन्द्यावर्तमनुत्तमम् ॥
 विमानं शुभमारुह्य शक्रलोकं व्रजन्ति ते ।

नन्द्यावर्तः ॥

प्रासादमथ वक्ष्यामः पूर्ण पूरितवाञ्छितम् ॥
 वन्दि(तैः?)तं किन्नरैर्यक्षैर्मनुष्यपितृवल्लभम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ॥
 विस्ता(र?राद्) द्विपदो गर्भः कार्या भित्तिस्तु भागिका ।
 द्विपदं कन्दभद्रं च निर्गमोऽस्यार्धभागिकः ॥
 शोभना दि(षु?)क्षु) सर्वासु द्विपदा च भ्रमन्तिका ।
 पदिका बाह्यभित्तिस्तु द्विपदा कर्णविस्तृतिः ॥
 आयत्या चतुरो (भागावण्डभित्तेर्विनिर्गमा?) ।
 भद्रं सुशोभनं तस्या (द्वि?वि)धातव्यं द्विभागिकम् ॥
 पर्णस्तु पदिका(?) पक्षभद्रं भागार्धनिर्गतम् ।
 जलान्तरं तु भागार्धमायामक्षेपयोः समम् ॥
 चतुर्भागो बलस्यास्य(?) गर्भो भित्तिस्तु भागिकी ।
 यामायुर्वित्तगोस्त्रीणां बलभी कीर्तिकारयेत्(?) ॥

पूर्वतः कारयेद् द्वारं चतुर्गर्भेऽत्र मन्दिरे ।
 ऊर्ध्वमानं तु वक्ष्यामः प्रासादस्यास्य सम्प्रति ॥
 पीठं द्विभागिकं कार्यं वेदीबन्धो द्विभागिकः ।
 जङ्घा पदचतुष्कं च शोभिता रूपकर्मणा ॥
 पदद्वयं तु कर्तव्यं (हीनरं?) सातपत्रकम् ।
 कलशाण्डकयुक्तानामुच्छ्रायस्त्रिपदो बुधैः ॥
 कर्तव्यः कर्णशृङ्गाणां सर्वेषामपि मानतः ।
 चतुष्पदोच्चा वलभी घण्टाकलशसंयुता ॥
 मल्लच्छाद्यत्रयं कुर्यात् कर्णशृङ्गस्य चोपरि ।
 युक्तमन्तरपत्रेण भागोच्छ्रायं पृथक् पृथक् ॥
 भागेनैकेन घण्टा स्याद् (भद्रा'भागा)भ्यां कलशाण्डके ।
 समूलकलशे कर्णे सूत्रं सम्पातयेद् बुधः ॥
 मल्लच्छाद्यं विधातव्यं सूत्रेणैकेन लाञ्छितम् ।
 प्रासादमेवं पूर्णायुर्यः कुर्याद् भक्तिमानिमम् ॥
 (सप्तकामः+?) पुरुषः (सःश)र्वलोके महीयते ।

पूर्णः ॥

सिद्धार्थमथ वक्ष्यामः सर्वकामार्थसिद्धि(क?द)म् ॥
 कामाः सिध्यन्ति यत्कर्तुरिहलोके परत्र च ।
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे विभक्ते दशभिः पदैः ॥
 कुर्वीत षट्पदं गर्भं ++ चास्य चतुष्पदम् ।
 भागेनैकेन रमणीं बाह्यभित्तिं च भागिकीम् ॥
 कुर्वीत द्विपदान् कर्णाब् शालां षट्भिः पदैर्बु(धै?धः) ।
 तदूर्ध्वं कर्णशृङ्गाश्च(ङ्गं च) यथाशोभं प्रकल्पयेत् ॥
 त्रिपदं निर्गमं तस्याश्चतुष्कीश्च चतुर्दिशम् ।
 मध्ये बहिश्च कुर्वीत तस्या द्वारचतुष्टयम् ॥
 उन्नतं भागविंशत्या मानमस्योर्ध्वतो भवेत् ।
 त्रिपदः पीठबन्धः स्याद् द्विगुणोच्छ्रायबाह्यतः ॥

सार्धं भागद्वयं कार्यो वेदिवन्धस्तु शोभनः ।

अर्धकुम्भेकमर्दे च मेखलां सममुरकः(?) ॥

जङ्घा सार्धचतुर्भागा कार्योच्छ्रायेण शोभना ।

मेखलान्तरपत्रे च भागेनैकेन कारयेत् ॥

खुरका(द्) मेखला यावत् सप्तभागान्तरं भवेत् ।

भागाभ्यां राजसेनं च कुर्याद् वेदीं च सासनाम् ॥

त्रिभागं स्तम्भमुत्सेधाद् भागस्यार्धेन हीरकम् ।

भागार्धं स्तम्भशीर्षं स्याद् भागः षट्स्य चोन्नतिः ॥

सूर्यच्छाद्यो द्विभागः स्याद् भागेनैकेन लम्बना(ः?) ।

शृङ्गोत्सेधस्त्रिभागश्च कलशण्डकसंयुत(म्?) ॥

चतुर्भागोन्नतः सिंहकर्णः षट्भागविस्तृतः ।

कुर्वीत शृङ्गयोरूर्ध्वं शोभनां मूलमञ्जरीम् ॥

अष्टाभागप्रविस्तीर्णा नवभागसमुच्छ्रिता(ताम्) ।

स्कन्धः पञ्चपदो ज्ञेयो ग्रीवा चार्धपदोच्छ्रिता ॥

अण्डकं भागमात्रं स्यादूर्ध्वं भागेन चन्द्रिका ।

वर्तुलः समविस्तारः कलशस्तु द्विभागिकः ॥

भद्रे वराटकाश्चेह कर्तव्या हेमकूटवत् ।

यः कुर्यात् कारयेद् यस्तु सिद्धार्थं सर्वकामदम् ॥

स भवेत् सर्वकामाप्तिः शिवलोके च शाश्वतः ।

सिद्धार्थः ॥

अथाभिधीयते सर्वपापघ्नः शङ्खवर्धनः ॥

आलयः सर्वदेवानां प्रासादो भूभृतां प्रियः ।

चतुरश्रे समे क्षेत्रे(गर्भा कर्णे?) विशोधितम् ॥

वर्तुलं कारयेत् पश्चात् सर्वकोणेषु लाञ्छितम् ।

विस्तारार्थं भवेद् गर्भो यच्छेषं तेन (भर्तिवः ?) ॥

द्विगुणं कारयेदूर्ध्वं भागविंशतिभाजिते ।

तुलोदयोऽष्टभागः स्याद् द्वादशांशा च मञ्जरी ॥

कुम्भकं कलशं द्वाभ्यां कपोतालीं च कल्पयेत् ।
 पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा मध्येऽस्या ग्रासपट्टिका(म्) ॥
 मेखलान्तरपत्रे च भागेनैकेन कारयेत् ।
 भागार्धं कारयेत् प्राज्ञः (संख्या?शङ्खा)वर्तकमञ्जरीम् ॥
 शङ्खावर्तककूटांश्च विदधीत+विस्तरात् ।
 शतवास्तुविभक्तेऽस्मिन् या+मानानुसारतः ॥
 स्कन्धो विधेयो ग्रीवा च भागार्धेन समुच्छ्रिता ।
 चन्द्रिका शिरसा सार्धं कार्या सार्धपदोन्नता ॥
 द्विपदः कलशोच्छ्रायः कर्तव्यः शङ्खवर्धने ।
 गर्भ(श्चा?स्या)च्छादनं कुर्यात् (संख्या?शङ्खा)वर्तवितानकम् ॥
 यः शङ्खवर्धनं कुर्यात् स भुनक्ति चिरं महीम् ।
 वशगा चास्य सततं भवेत्लक्ष्मीजलाञ्जलिः (?) ॥
 शङ्खवर्धनः ॥

त्रैलोक्यभूषणं ब्रूमो वन्दितं त्रिदशैरपि ।
 आश्रयं सर्वदेवानां पापस्य च विनाशनम् ॥
 त्रिंशद्वस्तः कनीयान् स्यान्मध्यमस्त्रिदशाधिकः ।
 पञ्चाशद्वस्त उत्कृष्टस्त्रिवि(धं?धो) हस्तसंख्यया ॥
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे त्रिंशद्व(क्तोप?क्ते प्र)कल्पयेत् ।
 दशभागायतं गर्भं कन्दं द्विगुणसप्तकम् ॥
 चतुष्पदं कन्दक(र्त?र्ण) भद्रं चास्य द्विभागिकम् ।
 कुर्वीत षट्पदां शालां भागेनैकेन निर्गताम् ॥
 अन्धोऽर्धद्विपदे चास्य द्विपदाश्चात्र भित्तयः ।
 शृङ्गमेकं भवेन्मध्ये विस्तारेण चतुष्पदम् ॥
 मध्ये शृङ्गस्य चान्तः + + + षड्दारुकं भवेत् ।
 द्वयंशा द्वितीया रमणी(या?) बाह्यभित्तिर्द्विभागिका ॥
 कर्णशृङ्गद्वयं कार्यं विस्तारेण चतुष्पदम् ।
 द्वादशांशमृता शाला निर्गमोऽस्याः पदत्रयम् ॥

प्राकर्णशृङ्गमष्टांस्तिस्यादुर्जनफलोपमम् (?) ।
 ++ द्विशृङ्गभागेन विनिष्क्रान्तं चतुष्पदम् ॥
 द्विपदं तस्य भद्रं च निर्गमो द्विपदं भवेत् ।
 शृङ्गयोरुभयोर्मध्ये पदार्थं पक्षभद्रकम् ॥
 पदार्थं वारिमार्गश्च प्रक्षेपः पदसंमितः ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः षष्टिभागसमुच्छ्रितम् ॥
 तुलोदयस्ततो (विंशपञ्चसूदनुमञ्जरी?) ।
 (स नृप्तंसत्यदोच्छ्रायो?) भागेष्वेव विधीयते ॥
 तुलोदयस्य मध्ये तु वेदी पञ्चपदोदया ।
 तदर्थं कुम्भकं कुर्यात् तद्वत् कलशमेखला ॥
 एकादशपदा जङ्घा हीरकं तु पदत्रयम् ।
 द्वौ भागौ मेखला तद्वद् द्वितीयापि सतारका ॥
 ऊर्ध्वतस्तलपट्टस्य प+षोडशभिः पदैः ।
 राजसेनं सार्धभागं वेदी कार्या द्विभागिका ॥
 पदार्धमासनं सार्धपदं चन्द्रावलोकनम् ।
 स्तम्भः सप्तपदो(दैर्घ्यहार?) सार्धत्रिभागिकम् ॥
 शीर्षं सार्धपदोत्सेधं पक्षस्तु द्विपदो भवेत् ।
 त्रिपदं छाद्यकं कुर्याद् भागेनैकेन लम्बितम् ॥
 द्विपदां छेदहारां तु(?) द्वयंशा वा सन्तु पट्टिकाः ।
 तदूर्ध्वं मञ्जरीं कुर्याद् द्राविडक्रमभूषितम् ॥
 सप्तोच्छ्रितं कोणकूटं सघण्टाकलशाण्डकम् ।
 द्वितीयामेतदूर्ध्वं च तन्मानेनैव कारयेत् ॥
 कर्णे कर्णं समाश्रित्य षट्पदानि तु कारयेत् ।
 (षष्ट्याण्डके?) द्वे कुर्वीत ष(डंश?डण्ड)कचतुष्टयम् ॥
 एवं कर्णाण्डकानि स्युश्चत्वारिंशत् समासतः ।
 द्वादशांशकविस्तारमुच्छ्रायान्नवभागिकम् ॥

आद्यक्रमे विजानीयाद् द्वाविडाभक्रियान्वितम् ।
 अष्टाण्डकं समुत्सेधाद् विस्ताराद् दशभागिकम् ॥
 भद्रक्रमं द्वितीयं तु विद्यात् कर्मविभूषितम् ।
 विस्तारो मूलमञ्जर्या द्वाविंशत्यंशसंमितः ॥
 त्रयोविंशतिरुच्छ्रायः स्कन्धाश्चैव त्रयोदश ।
 ग्रीवा प(दृ?)द्वयोत्सेधात् त्रिपदोन्नतमण्डकम् ॥
 कर्परं द्विपदं भागचतुष्कं कलशोच्छ्रयः ।
 प्रासा(दा?)दे द्वादशैतस्मिन्नुरोमञ्जरिका मताः ॥
 अण्डकानां तु विज्ञेयं त्रिसप्तत्यधिकं मतम् ।
 त्रैलोक्यभूषणं कृत्वा त्रिदशानन्दकारकम् ॥
 कल्पान्तं यावदध्यास्ते पुरुषस्त्रिदशालयम् ।

त्रैलोक्यभूषणः ॥

प्रासादमथ पद्माख्यं कथयामोऽश्विनोः प्रियम् ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे सप्तभागविभाजिते ।
 त्रीन् भागान् मध्यमे त्यक्त्वा द्वौ (द्वौ) कोणेषु लाञ्छयेत् ॥
 (सा द्वयेद्वभि?)रष्टौ च पश्चादपि च षोडश ।
 विस्तारार्धेन गर्भः स्याद् विस्तारार्धं तथा बहिः ॥
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः पद्माख्यस्य यथाक्रमम् ।
 विस्ताराद् द्विगुणोत्सेधं भागविंशतिभाजितम् ॥
 वेदी जङ्घा तथैतस्मिन् कार्या मालाथ मञ्जरी ।
 ग्रीवाण्डकलशाश्चेह शङ्खवर्धनवर्त्मना ॥
 पद्माख्यः कारितो येन प्रासादो द(श?)स्त्र)वल्लभः ।
 आत्मा समुद्धृतस्तेन पापपङ्कमहोदधेः ॥

पद्माख्यः ॥

पक्षबाहुमथ ब्रूमः प्रासादं कुलनन्दनम् ।
 सर्वरोगहरं पुण्यं सर्वलोकक्षणं भवं(?) ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
 अष्टभागायतं गर्भं कुर्याद् भित्तिर्द्विभागिका ॥

द्विपदं कारयेत् कर्णं भागार्धमुदकान्तरम् ।
 प्रत्यङ्गं सार्धभागे (सास्यात्) शाला चैव चतुष्पदा ॥
 निष्क्राम(मुःउ)भयोर्भागाद् भागार्धेन पृथक् पृथक् ।
 कर्त(व्याःव्यौ) पक्षयोर्बाहू विस्तारे(ष्वःणा)ष्टभागिकौ ॥
 चतुष्पदस्तयोर्गर्भो द्विपदा भित्तिविस्तृतिः ।
 चतुर्भागं भवेद् भद्रं कोणश्चैव द्विभागिकः ॥
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमश्चतुर्विंशतिभागिकम् ।
 त्रिपदो वेदिकाबन्धो जङ्घा पञ्चपदोन्नता ॥
 द्वौ भागौ कलशः कार्यौ द्वौ भागौ चन्द्रिकाण्डकम् ।
 मध्ये तु मञ्जरी कार्या घण्टा(बधःवद्धा) च पार्श्वयोः ॥
 पक्षबाहुः कृतो येन त्रिगर्भः कर्मभूषितः ।
 स त्रिनेत्रप्रतापः स्या(च्चःत्) तुरङ्गव्रातनायकः ॥

पक्षबाहुः ॥

विशालं सम्प्रवक्ष्यामि विशालैरन्वितं गुणैः ।
 दयितं कृत्तिकासूनोः पूजितं गणकिन्नरैः ॥
 क्षे(त्रेःत्रं) दशांशं कुर्वीत षड्भागा मध्यमञ्जरी ।
 भागिक्यो भित्तयः कार्या भ्रम(न्त्यभिःन्त्योऽपि) तथाविधाः ॥
 भागद्वयं भवेत् कर्णो वारिमार्गेण संयुतः ।
 पदेन तिलकं कुर्याद् भागार्धेन विनिर्गतम् ॥
 आयामनिर्ग(माःमौ) चास्य चतुर्भागा चतुष्पिका ।
 चतुष्पदो मध्यग(र्भःर्भः) चतुर्द्वारस्य शस्यते ॥
 विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रा(यान्युःयम्)र्ध्वमानं विधीयते ।
 विदध्याद् वेदिकाबन्धं सार्धभा(गयःगेन) संमितम् ॥
 सार्धैश्चतुर्भिः कुर्वीत भागैर्जङ्घोच्छ्रृतिं बुधः ।
 मालामन्तरपत्रं च भागेनैकेन कारयेत् ॥
 सार्धद्विभागिकं शृङ्गं कलशाण्डकसंयुतम् ।
 तस्यार्धमपरं शृङ्गं तावन्मानं विधीयते ॥

षड्भागविस्तृतां जङ्घामन्तर्या भागसप्तकम् ।
 तद्विस्तारदशां(शैः?शे)स्यात् षड्भिः स्कन्धस्य विस्तृतिः ॥
 ग्रीवायास्तु विधातव्या पदस्यार्थं समुन्नतिः ।
 भागेनाण्डकमुच्छ्रायो भागेनार्धे(तु?न) चन्द्रिका ॥
 द्विपदं कलशं कुर्यात् समसूत्रं सुशोभनम् ।
 प्रासादोऽयं विशालः स्यादेवं सप्तदशाण्डकम् ॥
 यः करोति स लोकेऽस्मिन्(+र) नागाधिपो भवेत् ।
 लभते च बहून् कामान् देहान्ते चोत्तमं पदम् ॥

विशालः ॥

ब्रूमोऽथ ल(क्ष्म?क्ष्मी)दयितं प्रासादं कमलोद्भवम् ।
 सिद्धगन्धर्वसहितं स्कन्दो यत्र व्यवस्थितः ॥
 चतुरश्रं समं क्षेत्रं भुवि दिक्षु विदिक्षु च ।
 कृत्वा वृत्तं समालिख्य भागैर्द्वात्रिंशता भवे(वे?जे,त) ॥
 भागौ द्वौ द्वौ ततः कुर्यादेकैकां दलपट्टिकाम् ।
 कर्णं षोडशभिः (का?कु)र्यादम्भोजसदृशाकृति(ः?म्) ॥
 पञ्चभिर्भाजिते सीम्नि गर्भो भागत्रयं भवेत् ।
 अधस्तादा(समत्त स्यात्?) पञ्चपीठं प्रकल्पयेत् ॥
 कृत्वा (द्विगुणमूर्ध्वान्द्विंशत्या?) प्रविभाजयेत् ।
 तुलोदयोऽथ भागः स्याद् द्वादशांशा च मञ्जरी ॥
 वेदी जङ्घा च माला च स्याद् यथा शङ्खवर्धने ।
 तदूर्ध्वं पद्मकूटा(नि?दि) चोन्नतं पद्मपत्रवत् ॥
 भूमिका(ः) पञ्च कर्तव्या(ः) पदहीना (द्य?य)थोत्तरम् ।
 (देवि?वेदि)का तस्य कर्तव्या विक्रासिशतपत्रवत् ॥
 पादोनभागो ग्रीवा च सपादं पदमण्डकम् ।
 चन्द्रिका चैव भागेन विकासिकमलाकृतिः ॥

१. 'नरो' इति स्यात् । २. 'सन तस्य' इति स्यात् । ३. 'द्विगुणमूर्ध्वं तदि
 त्या' इति पठनीयं स्यात् ।

द्विपदं कलशं कुर्यात् साब्जपत्रं सपल्लवम् ।

आरोग्यं स्यात् पुरोदेशे कारिते कमलोद्भवे ॥

आयुःश्रीवृद्धिपुत्राः स्युरपयानां(?) च संख्यया ।

कमलोद्भवः ।

हंसध्वजमथ ब्रूमो हंसक्रीडाविभूषितम् ॥

सेवितं सुरसङ्घेन वल्लभं पद्मजन्मनः ।

विभज्य दशधा क्षेत्रमारभ्य ब्रह्मणः पदात् ॥

आदाय पार्श्वयोर्भागान्स्त्रीस्त्रीन् वृत्तं प्रकल्पयेत् ।

एवं गर्भो विधातव्यश्छाद्यस्य (जगतालुभिः?) ॥

द्विपदा बाह्यतो भित्तिः कर्णः कार्यो द्विभागिकः ।

भद्रं पञ्चपदं कार्यं पदार्धमुदकान्तरम् ॥

द्वौ भागौ निर्गतं भद्रं स्तम्भद्वयसमन्वितम् ।

मध्ये तुच्छाद्यकं कुर्याद् वातोच्छ्रायं(?) द्विविस्तृतम् ॥

कुर्याद् भागं सविस्तारं तोरणं चतुरुन्नतम् ।

वरालमकरैर्युक्तं स्तम्भेषु स्यात् तथेल्लिकाः ॥

पुरस्तान्मण्डपं प्राज्ञो (रवाय?रचये)न्मानपूर्वकम् ।

ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः सूत्रं स्याद् भागविंशतिः ॥

मेखलावेदिकाजङ्घाः शङ्खवर्धनवन्मताः ।

कर्तव्याः कर्णरथिकास्त्रिपदाः कलशान्विताः ॥

चतुष्किका पञ्चपदा वराटीघटयान्विता ।

कार्या कलशसंयुक्ता विस्तारोच्छ्राययोः समा ॥

काणशृङ्गोर्द्वयः(?) कुर्यादष्टांशां मूलमञ्जरीम् ।

उच्छ्रिता नवभिर्भागैः पञ्चभौमास्तु संवृताः ॥

प्रथमा द्विपदा भूमिर्हेमकूटक्रियोपमा ।

अन्यास्तु पदपादार्धहीनाः कार्या यथोत्तरम् ॥

महारत्नपुनः(?) कार्यो भूमिकापरिवर्तने ।
 भागेन वेदिकोच्छ्रायः स्कन्धस्तु शतवास्तुवत् ॥
 ग्रीवाण्डकसमुत्सेधं विदधीत पदद्वयम् ।
 अण्डके वर्तना कार्या कङ्कतीफलसन्निभा ॥
 चन्द्रिका भागमेकं च द्वौ भागौ चेत् + + + + ।
 हंसध्वजः कृतो येन बल्लभः पञ्चजन्मनः ॥
 स याति विविधैर्यानिर्देहान्ते वसु+गतिम् ।

हंसध्वजः ॥

अथ लक्ष्मीधरं ब्रूमो यं कृत्वा विजयं नरः ॥
 राज्यमायुष्यपूजां च गुणानाम्रोति चैश्वरान् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते षोडशभिः पदैः ॥
 कर्तव्यः षट्पदः कन्दो गर्भसूत्रचतुष्पदः ।
 चतसृष्वपि दिक्षु स्यात् त्रिभिर्भागैर्भ्रमन्तिका ॥
 द्विपदा बाह्यभित्तिः स्याच्छुभा कार्या चतुर्दिशम् ।
 कर्णेषु शृङ्गमेकैकं द्वे द्वे शृङ्गे तु मध्यगे ॥
 द्वयंशानि तानि विस्ताराद् दशशृङ्गाणि दि(क्रयेत्?कत्रये) ।
 षट्शालाश्च विधातव्याः शुभा दिक्षु तिसृष्वपि ॥
 याम्येन (च) चतुर्भागा भागद्वितयनिर्गताः ।
 तलच्छन्दोऽयमुद्दिष्टो मण्डपः पुरतो भवेत् ॥
 विस्ताराद् द्वि(गुणा सासः?णो यामः)प्रासादस्यास्य चोच्छ्रायः ।
 स्यात् त्रयोदशभागोऽत्र प्रमाणेन तुलोदयः ॥
 ऊर्ध्वं च विंशतिपदं वेदीबन्धः(?) पदत्रयम् ।
 उत्सेधात् षट्पदा जङ्घा भागेन भरणं भवेत् ॥
 भागैस्त्रिभिर्मेखले द्वे शृङ्गं च कलशं त्रिभिः ।
 उच्छ्रूयेण विधातव्यः सिंहकर्ण(च?श्च)तुष्पदः ॥
 दश शृङ्गाणि कुर्वीत घण्टा(पक्कं?)च (विक्र?दिकत्र)ये ।
 चतुर्दशांशविस्तारा पञ्चगा(?) मूलमञ्जरी ॥

ऊर्ध्वं सप्तदशांशा च ग्रीवोच्छ्रायः पदद्वयम् ।
अण्डकं द्विपदं कार्यं भागेनैकेन कर्परम् ॥
कलशं त्रिपदं मूर्ध्नि वर्तयेत् सुमनोरमम् ।
लक्ष्मीधराख्यं प्रासादं यः कुर्याद् वसुधातले ॥
अक्षये स पदे तच्चे लीयते नात्र संशयः ।

लक्ष्मीधरः ॥

महावज्रमथ ब्रूमः (प्र?प्रे)त्यपापहरं शुभम् ॥
प्रासादे का(रये?रिते) यत्र सुरेन्द्रः परितुष्यति ।
अष्टौ हस्तान् कनीयान् स्यान्मध्ये द्वादश मानतः ॥
उत्तमः षोडश प्रोक्तस्त्रिधैवं करसंख्यया ।
स्वविस्तारस्य सूत्रेण(++क्षेत्र)मालिष्य वर्तुलम् ॥
कोणेषु लाञ्छितं कृत्वा भागैः पट्त्रिंशता भजेत् ।
द्विपदाः कर्णिकाश्चेह कार्या द्वादशसंख्यया ॥
कर्णिकाद्वयमध्ये तु स्तम्भो भागे च वर्तुलः ।
शतपत्राकृतिः कायो द्वौ भागौ मूर्धमानतः ॥
अधस्तान्मेखलायाश्च कमलोद्भववद् भवेत् ।
स्तम्भयेत् कर्णिकामध्ये तेषु कूटानि कारयेत् ॥
कुर्यादालेखमुपरि कर्णिकायाः सुशोभनम् ।
कर्तव्या भूमयः पञ्च क्रमेणायतयान्विता (?) ॥
स्याद् भागार्धोदया ग्रीवा विस्तारेण चतुष्पदा ।
अण्डकं सार्धभागेन विधातव्यं सकर्परम् ॥
भागद्वयं तु कलशः शृङ्गकर्णैः सपल्लवैः ।
यः करोति महावज्रं प्रासादं पुरभूषणम् ॥
तुष्टो दिवि सदास्पत्यो रमते सोऽप्सरोगणैः ।

महावज्रः ॥

रतिदेहमथ ब्रूमः प्रासादं सुमनोरमम् ॥
अप्सरोगणसंकीर्णं कामदेवस्य मन्दिरम् ।
अष्टभागीकृते क्षेत्रे समभागे समायते ॥

द्विपदं कर्णकूटं स्याद् वारिमार्गसमन्वितम् ।
 आलिन्दस्य चतुर्भागा विस्तारायामतः समाः ॥
 भागिकी बाह्यभित्तिस्तु शेषं गर्भं प्रकल्पयेत् ।
 मध्ये चतुष्किका कार्या यत्र स्तम्भाः सुशोभनाः ॥
 नेकरका त्रिवक्त्रैश्च हस्ते सर्वैः सपत्रकैः(?) ।
 पल्लवैर्नागबन्धैश्च मालभञ्जिभिरन्विताः ॥
 खेलिका तत्र कर्तव्या मकरास्यविनिर्गता ।
 चत्वारो बाह्यतोऽलिन्दाः स्तम्भद्वितयभूकुलम् (?) ॥
 सदृशं प्रथमं कार्यं भवनं कर्षयुक्तिमतः ।
 द्वितीयं भवनं कार्यं बाह्यालि(ङ्क?)न्दविजितम् ॥
 शेषं कर्म तथा कार्यं प्रथमायां यथा (भवति?) ।
 तृतीयायां पुनः कार्या चतुःस्तम्भा चतुष्किका ॥
 खेलिकातोरणन्यस्ता(ः) समुखाश्च वरालकाः ।
 स्तम्भानां कुटकान् पूर्वान् निहक(र्ण?र्णा)श्चमध्यतः ॥
 म(ध्य?)लुच्छाद्यानि(वायार्ध?) भागोच्छ्रायान्यनुक्रमात् ।
 त्रीणि कुर्वीत युक्तानि शुभैरन्तरपत्रकैः ॥
 घण्टां च भागिनीं कुर्याद्(ध्व?ध्वे)नामलसारकीम् ।
 चन्द्रिकां भागपादेन द्विभागां कलशोच्छिद्रतिम् ॥
 एवंविधं यः कुरुते प्रासादं रतिवल्गुभम् ।
 सन्तोषयति कन्दर्पं स्याज्जनेषु स पुण्यभाक् ॥

रतिदेहः ॥

सिद्धिकाममथ ब्रूमः प्रमथैरुपशोभितम् ।
 धनपुत्रकलत्राणि कृते यत्राप्युयान्नरः ॥
 चतुरश्रीकृत क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ।
 गर्भे द्विभागं कुर्वीत भित्ति(र्भा?भा)गेन शोभनम् ॥
 भद्रं द्विभागविस्तारं भागेनैकेन निर्गतम् ।
 कर्णमेकेन भागेन कुर्यात् प्रतिदिशं बुधः ॥

अस्योर्ध्वं द्विगुणं कुर्यात् पष्ठभागविभाजितम् ।
 भागे च वेदिकाबन्धं जङ्घा सार्धपदोन्नता ॥
 मेखलान्तरद्वये च पादहीनं पदं मते ।
 स्यादुच्छ्रितीश्रामा(?) जङ्घा पादोनं पदपञ्चकम् ॥
 त्रिभागविस्तृता ग्रीवा भागपादसमुच्छ्रिता ।
 पदार्धमण्डकं प्राहुः पदपादेन चण्डिकाम् (?) ॥
 भागस्यार्धेन कलशसमुच्छ्रायो मतः समः ।
 + + + गुणमूत्रास्या द्वितीयाः पञ्चभूतिकाः(?) ॥
 यः सिद्धिकामं कुरुते सर्वपापविमोचनम् ।
 सर्वेऽस्य कामाः सिध्यन्ति येकेचिन्मनसि स्थिताः ॥

सिद्धिक्रमः ॥

अथाभिधीयतेऽस्माभिः प्रासादः पञ्चचामरः ।
 यो भक्त्या कारयत्येनं स चिरं दिवि मोदते ॥
 भक्ते द्वादशभिः क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।
 चतुर्भागे भवेद् गर्भो भित्तिं भागेन कल्पयेत् ॥
 अन्धारिका तु भागौ द्वौ बाह्यभित्तिस्तु भागिकी ।
 त्रि(भि)र्भागैर्विनिष्क्रान्तं तेषु कार्याश्चतुष्किकाः ॥
 द्विगुणं कथि(ते'लं) चोर्ध्वमानं घण्टाण्डकान्वितम् ।
 प्रमाणेन विधातव्यो दश भागास्तुलोदयः ॥
 त्रिपदो वेदिकाबन्धो जङ्घा स्यात्+पडंशकः ।
 मेखलान्तरपत्रे च भागेनैकेन कारयेत् ॥
 पदत्रयेण (सादूर्ध्वं शृङ्गं कलशं चाण्डकम्?) ।
 शिखरा विंशतिः कार्याः (सभित्ताः?संभिन्नाः) सर्वमण्डपैः ॥
 शृङ्गादधो विधात(व्या?व्यं) मल्लच्छाद्यं मनोहरम् ।
 एवं सर्वचतुष्केषु मल्लच्छाद्यानि कारयेत् ॥
 छाद्यकैः पञ्चभिः कार्यो मध्ये प्रासादनायकः ।
 घटिकानां समुच्छ्रायः सपादं पदमिष्यते ॥

घण्टायाः सार्धभागेन ग्रीवायाश्च पदा(दि?धि)का ।
कर्तव्यामलसारी तु (पादोनांशायवण्डिकाम्?) ॥

द्विपदः कलशः कार्यो बीजस्वरसमन्वितः ।
पञ्चघण्टावृतं कृत्वा विमा(ना?नं) पञ्चचामरम् ॥
(अतीतविस्त्वयान सर्वान् लोकः प्राप्नोति सम्भव?) ।

पञ्चचामरः ॥

नन्दिघोषमथ ब्रूमो विपक्षभयनाशनम् ॥
य एनं भक्तितः कुर्यात् स भवेदजरामरः ।
चतुरश्रे समे क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ॥
भद्रं द्विभागविस्तारं कुर्याद् भागविनिर्गमम् ।
भित्तिरत्र न कर्तव्या दिशि कस्यामपि ध्रुवम् ॥
कुर्वीत राजसेनं तु वेदिचन्द्रावलोकनम् ।
दिक्षु क्रमोऽयं सर्वासु त्यक्त्वा मार्गचतुष्टयम् ॥
विस्तारसदृशोच्छ्राया कर्तव्या पूर्वभूमिका ।
वक्ष्यमाणैर्विभागैश्च विप्रभज्यासणाः ++(?) ॥
भागेन राजसेनं स्याद् वेदिर्भागद्वयेन च ।
भागेन चन्द्रालोकः स्यादर्धेनासनपट्टकः ॥
स्तम्भोच्छ्रायस्त्रिभिर्भागैस्ततो भागेन शीर्षकम् ।
पट्टोच्छ्रायो भागमेकं स्याच्चतुर्विंशतिर्धराः ॥
नानासङ्घैः पल्लवैश्च चारुकर्मकराननैः ।
द्वितीया भूमिका कार्या स्तम्भैः षोडशभिर्युता ॥
एवं भूमौ द्वितीयायामपि कर्म विधीयते ।
स्तम्भैश्चतुर्भिः संयुक्ता तृतीयायां चतु(र्थि?ष्कि)का ॥
नन्दिघोषः कृतो येन (भूयं तेजो?) स जायते ।
कर्मक्ष(या तुतुं?त् तनुं) त्यक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥

नन्दिघोषः ॥

प्रासादमभिधास्यामो मन्तूकीर्णं महा(दुःदु)तम् ।
 विमृश्य बुद्ध्या निपुणं निर्मितं प्राक् स्वयम्भुवा ॥
 क्षेत्रे षड्भागविस्तारे ग(र्भे?र्भः) भागचतुष्टये ।
 कुर्वीत वृत्तं मध्ये च नवभिर्वृत्तिमालिका(?) ॥
 अष्टौ (च) रथिकाः कार्याः क्षेत्रे दिक्षु विदिक्षु वा ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो द्विगुणं द्विपदान्वितम् ॥
 (छाद्ययावद्विधातव्या तत्सार्धाङ्गैकपञ्चकम्?) ।
 भागानष्टार्धसहितान् कुर्यादूर्ध्वं तुलोदयात् ॥
 सार्धभागेन कर्तव्यो वेदीबन्धश्च शोभनः ।
 भागद्वयं ततः सार्धं कार्या जङ्घासमुच्छ्रितिः ॥
 भागार्धं हीरकं कुर्यान्मनोज्ञं क(र्ति?र्णि)कान्वितम् ।
 मेखलान्तरपत्रे च भागेनैकेन कारयेत् ॥
 शृङ्गोच्छ्रायस्ततः कार्यः सार्धभागद्वयोन्मितः ।
 मध्येन सर्वशृङ्गाणां मस्तके वृत्तमालिखेत् ॥
 षड्भागविरतृतं तस्य + षड्भागसमुच्छ्रितम् ।
 यावन्मात्रा(चरेत्?वरे) प्रोक्ता तावत् कार्या च मञ्जरी ॥
 त्रिभौमं पञ्चभौमं च विचित्रं कारये(दि)मम् ।
 ग्रीवा स्याद् भागपादेन विस्ताराद् द्विपदायता ॥
 पादहीनं पदं कुर्यादण्डकं मनुसंभवे(त्?) ।
 चन्द्रिका भागपादेन पादोनं (कुशलः?कलशः) पदम् ॥
 प्रासादं मनसाप्येवं मनुकी(र्तः?र्ण)करोति यः ।
 स (गंध्या?गत्वा) भवनं शम्भोर्गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥
 मानकीर्णः(?) ॥

अथ सुप्रभनामानं प्रासादमभिदध्महे ।
 यं कृत्वा प्रभयान्येषां प्रभा हन्ति रविर्यथा ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
 कुर्याच्चतुष्पदं गर्भं विस्तारो यामतः समः ॥

प्रासादार्थं भवेत् कन्दः कन्दभद्रं पदद्वयम् ।
 भ्रमन्ती द्विपदा दिक्षु चतसृष्वपि शोभना ॥
 पदिका बाह्यभित्तिस्तु द्विपदा कर्णविस्तृतिः ।
 चतुष्पदं मध्यमभद्रं विनिष्क्रान्तं त्रिभिः पदैः ॥
 (अस्यैर्वातः?) पुनः कार्या द्विपदा तु चतुष्किका ।
 (सौलायाः?) पार्श्वतः कुर्यादतिभद्रद्वयं बुधः ॥
 तयोः पादेन निष्कासं पार्श्वयोरुभयोरपि ।
 पार्श्वभद्रस्य कर्णस्य चान्तरं पदिके नयेत् ॥
 जालैर्विचित्रितं कुर्यान्मध्ये ज्योतिर्यथा भवेत् ।
 एवं दिक्षु समस्तासु कुर्वीतैनमनुक्रमात् ॥
 प्रासादभागविधिना पुरः कुर्वीत मण्डपम् ।
 चतसृष्वपि मञ्जर्यो दिक्षु कार्या यथाक्रमम् ॥
 लीयमूलसजङ्घात्रा स्वसार्धा च यथादिमम् (?) ।
 उच्छ्रायो मूलविस्ताराद् द्विगुणो द्विकलाधिकः ॥
 तुलोदयो दशपदो मञ्जरी षोडशांशिका ।
 वेदीबन्धसमुत्सेधः सार्धभागद्वयोन्मितः ॥
 पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा हीरं भागसमुन्नतम् ।
 सार्धभागेन कर्तव्ये मेखलान्तरपत्रके ॥
 कर्णशृङ्गसमुत्सेधः कलशान्तस्त्रिभागिकः ।
 दिङ्मञ्जरी तु कर्तव्या विस्तारेण चतुष्पदा ॥
 उदयेन विधातव्या पञ्चभागा प्रमाणतः ।
 ग्रीवा पदस्य पादेन कलशोऽर्धपदं भवेत् ॥
 विस्तारो मूलमञ्जर्याः कर्तव्यो दशभागिकः ।
 ++ भागत्रयोत्सेधो ग्रीवा पा(दे?दो)नभागिका ॥
 अण्डकं सार्धभागेन द्विपदा कलशोच्छ्रितः ।
 (देशांशवद्गतो मूलास्कन्धोरेषोऽन्तको?) भवेत् ॥

विस्तारो मूलमञ्जर्याः कर्तव्यो दशभागिकः ।
 नराण्डकोऽयं कर्तव्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥
 यः प्रासादमिमं कुर्यात् सुप्रभं भक्तिमान् नरः ।
 दिव्यते(ज्वारवहस्यास्य?) देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥
 शुभलक्षणः ॥

सुरानन्दमथ ब्रूमः प्रासादमतिमुन्दरम् ।
 चतुरश्रं समं क्षेत्रे(त्रे?त्रं) दशधा प्रविभाजयेत् ॥
 षड्भागो गर्भविस्तारो द्वौ भागौ भित्तिविस्तृतिः ।
 कर्तव्या सार्धभागेन(?) भागार्धेन जलाश्रयः ।
 प्रत्यङ्गस्थानकं कुर्यात् (सप्रसं वृत्त?)भागिकम् ।
 शालास्त्रिभिः पदैः कार्याः शुभरूपाश्चतुर्दिशम् ॥
 शालायाः पार्श्वयोः कार्यो वारिमार्गः पदार्धकः ।
 परस्परं तु निष्कासो भागं भागं विधीयते ॥
 ऊर्ध्वमानं विधातव्यं विस्ताराद् द्विगु(णो?णं) बुधैः ।
 गर्भच्छाद्यं पदान्यष्टौ भागा द्वादश मञ्जरी ॥
 वास्तुविस्तारपादेन वेदीवन्धो विधीयते ।
 चतुष्पदोर्ध्वतो जङ्घा भागार्धं ग्रासपट्टिका ॥
 मेखलान्तरपत्रे च विधातव्ये पदोच्छ्रिते ।
 कोणा द्रविडकूटस्य वृत्तस्तम्भा वराटका(?) ॥
 मध्याङ्गतोरणानां स्युद्विशतिश्चतुरो(?) भवेत् ।
 षट्पदः स्कन्धविस्तारो ग्रीवा भवति भागिकी ।
 शिरः सार्धं पदं ज्ञेयं भागमेकं च चन्द्रिका ।
 कलशोऽशद्वयोच्छ्रायः कार्यः पल्लवभूषितः ॥
 यः करोति सुरानन्दं वरदास्तस्य मातरः ।
 सुरास्तस्य ह्यनिस्तार्यमपमृत्युं हरन्ति च ॥

सुरानन्दः ॥

१. 'जोवहः स स्याद्' इति पाठ्यं स्यात् । २. उपक्रमोपसंहरयोः सुप्रभ इत्यस्य नाम दृश्यते । ३. अत्र क्रियांश्चिच्छोकांशो गलित इव भाति ।

अथ हर्षं प्रवक्ष्यामि सर्वलोकप्रहर्षणम् ।
 नित्यं वसति यत्र श्रीः स्थानं यद् विश्वकर्मणः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ।
 प्रतिकोणं विधातव्याः (कर्णेभागौ?) स्त्रिभिस्त्रिभिः ॥
 द्विपदं कर्णभद्रं च भागेनैकेन निर्गतम् ।
 वारिमा(र्ग?र्ग) पदं कुर्यात् प्रवे(श्य?शा)यामतः समम् ॥
 त्रिभागमस्य प्रत्यङ्गं पदद्वितयनिर्गमम् ।
 वेदिचन्द्रावलोकाभ्यां प्रत्यङ्गे कर्म कल्पयेत् ॥
 चतुष्पदं मध्यभागं द्विपदं चास्य भद्रकम् ।
 विनिर्गतं च भागेन विदधीत विचक्षणः ॥
 वलभ्यश्च द्विभागाः स्युः(खा?स्वा)नुरूपाश्चतुर्दिशम् ।
 गर्भो भागैश्चतुर्भिस्तु वलभीनां विधीयते ॥
 द्विपदा बाह्यतो भित्तिर्द्विपदा च भ्रमन्तिका ।
 स्कन्धः स्याद् दशभिर्भागैर्गर्भः षट्त्रिंशता पदैः ॥
 ऊर्ध्वप्रमाणमेतस्य स्याच्चत्वारिंशता पदैः ।
 भागैः षोडशभिश्चास्य विदध्याच्छादनं शुभम् ॥
 वेदीबन्धः पञ्चपदो जङ्घा चाष्टपदा भवेत् ।
 शा(ला?लां) चान्तरपत्रं च कुर्याद् भागत्रयाद् बुधः ॥
 ऊर्ध्वमन्तरपत्रं स्याद् विधातव्यं यथाक्रमम् ।
 वलभीसंवृतिः प्राज्ञैरुच्छ्रायात् पञ्चभागिकी ॥
 (सा?स)शृङ्गैः सिंहकर्णेश्च का(र्यो?र्या) भागसमुच्छ्रितिः ।
 वर्धमानेन कर्तव्या त्रिपदा कर्णमञ्जरी ॥
 ऊर्ध्वं पदेभ्यस्त्रिभ्यः स्याद् भागेन कलशाण्डकम् ।
 विस्तारात् षोडशपदा कर्तव्या मूलमञ्जरी ॥
 ऊ(र्ध्व?ध्व)र्विंशतिभागास्य स्कन्धो नवपदायतः ।
 ग्रीवा सार्धपदं कार्या ततो द्विपदमण्डकम् ॥

चन्द्रिकैकेन भागेन कलशस्त्रिपदात् ततः ।
हर्षणः क्रियते यत्र स देशः सुखमेधते ॥
क्षेमं गोब्राह्मणानां स्यात् पूर्णकामश्च पार्थिवः ।

हर्षणः ॥

इदानीं दुर्धरं ब्रूमः प्रासादं शुभलक्षणम् ॥
चतुरश्रे समे क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
कर्णाः (षडापदाः कार्या प्रतिरथं च?) द्वयं भवेत् ॥
कर्तव्याष्टपदा शाला निर्गमोऽस्य चतुष्पदः ।
पदद्वयं विनिष्क्रान्ता सर्वतः कर्णशोभिता ॥
द्विपदा बाह्यभित्तिः स्याच्चतुर्भागान्धकारिका ।
द्विपदा कन्दभित्तिस्तु गर्भश्चाष्टपदायतः ॥
षट्पदा कन्दशाला च कन्दकर्णाः पदत्रयम् ।
ऊर्ध्वप्रमाणं विस्ताराद् द्विगुणं द्विपदाधिकम् ॥
(विंशत्यम्?) तुलोच्छ्रायाः शिखरं त्रिंशता पदैः ।
कुम्भः सार्धद्विभागश्च कलशो भागमुच्छ्रि(ति?) ॥
भागार्धेनान्तरं पत्रं भागेनैकेन मेखला ।
दशभागोच्छ्रिता जङ्घा हीरकं भागिकं भवेत् ॥
भागैश्चतुर्भिः कर्तव्यं मेखलाद्वितयं ततः ।
अधस्तादूर्ध्वपट्टस्य तलपट्टस्य चोपरि ॥
भवेत् षोडशभिर्भागैरनयोरन्तरं द्वयोः ।
द्विपदो वेदिकाबन्धो वेदी कार्या चतुष्पदा ॥
आसनं चैव भागेन स्तम्भः पञ्चपदैर्भवेत् ।
भागेनैकेन भरणं शीर्षकं भागमुन्नतम् ॥
पट्टो भागद्वयोत्सेधश्छाद्यं च त्रिपदायतम् ।
मूलभरणानि(?) चत्वारि कोणभद्राणि (कं भवेत्?) ॥
कर्णशृङ्गाणि दश च द्वयम(थ?)स्मिंश्चतुर्दिशम् ।
(ग्रीवां+भगसन्तानां?) शृङ्गाणां त्रिपदोच्छ्रितिः ॥

षट्पदाः कर्णमञ्जर्यः सप्तभागसमुच्छ्रिताः ।
 ग्रीवार्धभागिकी भागः स्यादुच्छ्रायोऽण्डकस्य (तत्?) ॥
 पदत्रयोन्नता कार्या सिंहकर्णश्चतुष्पदा (?) ।
 मध्ये भद्रे तदुत्सेधो विस्तारादर्धभागिकः ॥
 विस्तारो मूलमञ्जर्याः पदैः षोडशभिर्भवेत् ।
 अष्टादशभिरुच्छ्रायो ग्रीवा सार्धपदोच्छ्रिता ॥
 अण्डकं द्विपदं कार्यं चन्द्रिका पदमुच्छ्रिता ।
 कलशं त्रिपदं विद्यात् सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
 अण्डकैः सप्तदशभिः प्रासादो दुर्धरो भवेत् ।
 दुर्धरं यः करोतीह (भागा?भर्गा)च्छक्तिं स(मा?आ)प्नुयात् ॥
 कालेन शिवसायुज्यं (निगधिश्च प्रच्यते?) ।

दुर्धरः ॥

इदानीं दुर्जयं ब्रूमः प्रासादं शत्रुमर्दनम् ॥
 यं कृत्वा (दुर्जयं लोके?) भवेत् क्रीडति च क्षितौ ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पञ्चभागविभाजिते ।
 गर्भं नवपदं कुर्याद् भित्तिः षोडशभागिकी ।
 भागेन कर्णरथिका भागाभ्यां मध्यमे रथः ॥
 भागेन निर्ग(मं?स्त)स्य वि(धि)रेष चतुर्दिशम् ।
 भद्रकर्णान्तरे कुर्याद् वारिमार्गं पदाधिकम् ॥
 ऊर्ध्वमानं विधातव्यं (त्वमस्मि?) दशभागिकम् ।
 वेदिबन्धः सपादांशौ जङ्घांसौ पादसंयुतौ ॥
 मेखलान्तरपत्रे तु पदार्धेन प्रकल्पयेत् ।
 शिखरः (स्त्रिखरैः?) सार्धं भागषट्कोच्छ्रितो भवेत् ॥
 त्रिपदः स्कन्धविस्तारो रेखा पद्मदलाकृतिः ।
 भूमयः पञ्च कर्तव्या न्यूनमाना यथाक्रमम् ॥
 प्रथमा सार्धभागान्या पदपादोनिता क्रमात् ।
 स्कन्ध(ः)पादोनभागेन स्याद् ग्रीवा(र्ध?र्ध) पदेन च ॥

१. 'निषने च प्रच्यते' इति स्यात् । २. 'दुर्जयो लोको' इति स्यात् ।

अण्डकं त्वेकभागेन कर्परं चार्धभागिकम् ।
भागोत्सेधस्तु कलशः समवृत्तः सुशोभनः ॥
दुर्जयः क्रियते यत्र पुरे वा नगरेऽथवा ।
न भवेत् तत्र दुर्भिक्षं न च व्याधिकृतं भयम् ॥

दुर्जयः ॥

ब्रूमस्त्रिकूटं ब्रह्माद्यैः सेवितं त्रिदशैस्त्रिभिः ।
फलं क्रतुसहस्रस्य येन मोक्षं च विन्दति ॥
(संसाध्यतुल्यन्निभजं?) क्षेत्रमिष्टप्रमाणतः ।
ततोऽस्य बाहुमेकैकं चतुर्भिर्विभजेत् पदैः ॥
द्विभागं मध्यमं भद्रं भागिकीं कर्णप(क्षि?ट्टि)काम् ।
अर्धेन गर्भमर्धेन कुर्याद् भित्तित्रयं बुधः ॥
विस्तारं पञ्चधा भ(क्ता?क्त्वा) कुर्याद् द्विगुणमुच्छ्र(य?यम्) ।
वेदिबन्धो विधातव्यः सपादं भागमुच्छ्रितः ॥
जङ्घा सपादौ भागौ द्वौ कार्या तस्य समुच्छ्रितिः ।
मेखलान्तरपत्रे च भागस्यार्धेन कारयेत् ॥
मञ्जरी भागषट्केन पञ्चभागविभाजिता ।
आसमन्तात् (स्तम्भस्कन्धः?) कार्यः पूर्वोक्तवर्त्मना ॥
पादभागेन तु ग्रीवामर्धभागेन चाण्डकम् ।
चन्द्रिका भागपादेन कलशं भागमुच्छ्रितम् ॥
त्रिकूटं कारयेद् यस्तु ब्रह्मेशानहरिप्रियम् ।
सि(द्धा?द्धो)भूत्वा पुरीं तेषां यात्यसौ नात्र संशयः ॥

त्रिकूटः ॥

इदानीमभिधास्यामः प्रासादं नवशेखरम् ।
चतुरश्रं भजेत् क्षेत्रं विंशत्यैकोनया पदैः ॥
कर्णाश्चतुष्पदाः कार्यास्तेषां भद्रं द्विभागिकम् ।
विनिर्गतं पदार्धेन जलमार्गस्त + + + ॥

++ भागायता कार्या सा भवेहि (?) विचक्षणैः ।

शाला(कर्णपदाद्वतु?) प्रत्यङ्गं भागमानतः ॥

त्रिपदो रथकः कार्यो मञ्जरीणां चतुष्टयम् ।

चतुष्पदा भवेद् भित्तिर्गर्भश्चैकादशांशकः ॥

चत्वारिंशत्पदादूर्ध्वं यावत् स्कन्धं समस्तकम् ।

तुलोदयः षोडशभिर्मञ्जरी चाष्टकैस्त्रिभिः ॥

चतुष्पदो वेदिबन्धो जङ्घा साष्टपदा भवेत् ।

भागेन भरणे त्र्यंशं मेखलान्तरपत्रकम् ॥

उच्छ्रायतः पञ्चपदा कर्तव्या कर्णमञ्जरी ।

ग्रीवार्धभागेन भवेदण्डकं चैव भागिकम् ॥

भागेन चन्द्रिकामूर्ध्वं भागेन कलशं तथा ।

सपादमुदयं (शाला मञ्जर्या विस्तृते?) विदुः ॥

ग्रीवा पादेन भागेन सपा(दासमता?)ण्डकम् ।

भागाद्धि चन्द्रिका भागद्वयेन कलशोदयः ॥

विस्तारो मूलमञ्जर्याः कार्यः पञ्चदशांशकः ।

तथा सप्तदशोच्छ्रायः स्कन्धायामो नवांशकः ॥

ग्रीवा चास्यार्धभागेन सार्धद्विपदमण्डकम् ।

वण्डिका सार्धभागेन त्रिपदः कलशोदयः ॥

एवं यः कारयत्येनं प्रासादं नवशेखरम् ।

नवभिः सहितां खण्डैः स भुनक्ति वसुन्धराम् ॥

नवशेखरः ॥

पुण्डरीकमथ ब्रूमी यशसो वर्धनं परम् ।

धम्मिन् कृते स्थिरा कीर्तिर्भवेद् यावद् वसुन्धरा ॥

चतुरश्रं समं क्षेत्रं विभजेत् पञ्चभिः पदैः ।

त्रिपदं कल्पयेद् गर्भं तस्य भित्तिं च भागिकाम् ॥

त्रिपदं तस्य भद्रं स्यात् सार्धभागविनिर्गमम् ।

अद्रेषु वर्तुलं दिक्षु रथिकानां चतुष्टयम् ॥

भागैर्नैकेन रथिका मूलच्छन्दोऽयमीरितः ।
 ऊर्ध्वमानं भवेद् यस्य द्विगुणो दशभागिकम् (?) ॥
 भागेनोच्छालकं विद्याद् भागार्धेन तु मेखला ।
 वेदिवन्धं न कुर्वीत जङ्घा सार्धद्विभागिका ॥
 मेखला चार्धभागेन भवेत् सान्तरपत्रका ।
 पदानि पञ्च सार्धानि मञ्जर्याः स्यात् समुच्छ्रितः ॥
 त्रिपदः स्कन्धविस्तारो ग्रीवा वा (पदसादिकाः?) ।
 अण्डकं स्यात् पदार्धेन भागपादेन चन्द्रिका ॥
 भागोच्छ्रायस्तु कलशः कर्तव्यः शुभलक्षणः ।
 मध्येन मूलमञ्जर्यास्त्रिपदा भद्रमञ्जरी ॥
 सार्धा+त्रिपदोच्छ्राया ग्रीवा भागसमुच्छ्रिता ।
 अण्डकं च त्रिभागेन कलशो भागमुच्छ्रितः ॥
 पञ्चाण्डः पुण्डरीकोऽयं कर्तव्यः शुभवर्धनः ।

पुण्डरीकः ॥

सुनाभ(स)मथ ब्रूमो वन्दि(तोःतं) देवदानवैः ॥
 वल्लभं लोकपालानां पुण्यमुत्कृष्टलक्षणम् ।
 विभजेत् सप्तदशभिः समक्षेत्रं चतुर्भुजम् ॥
 पञ्चभागायताः कोणा गर्भः कार्यस्त्रिभिः पदैः ।
 उभयोः कोणयोर्मध्ये सप्तभागिकमन्तरम् ॥
 व्यक्षेपात्(?) कर्णयोर्मध्ये (प्रा?प्रो)ञ्छयेत् पदमन्तरम् ।
 भागप्रवेशं भागा(र्धे?र्ध)विस्ता(रा?र)मुदकान्तरम् ॥
 द्विपदा बाह्यभित्तिः स्यात् त्रिपदाथ भ्रमन्तिका ।
 पञ्चभागायतो मध्ये भवेत् प्रासादनायकः ॥
 त्रिपदस्तस्य गर्भस्तु भित्तिर्भागं विधीयते ।
 त्रिपदं कर्णभद्रं च भागेनैकेन निर्गतम् ॥
 पदप्रमाणकोणांस्तु च(त्वा?तु)रो(प?वि)निवेशयेत् ।
 यथा कन्दस्तथा कोणो विभागैः स विधीयते ॥

पञ्च गर्भास्तु कर्तव्याः सममानप्रकल्पिताः ।
 द्विगुणं चोर्ध्वमानं स्याद् ग्रीवाण्डकविवर्जितम् ॥
 त्रिभिः पदैर्वेदिबन्धो जङ्घा सप्तपदा भवेत् ।
 पदत्रयेण कर्तव्यं मेखलाद्वितयं बुधैः ॥
 ऊर्ध्वतो बाह्यच्छन्दः(स्यात्स्य) कर्तव्या कर्णमञ्जरी ।
 षट्पदाः कर्णमञ्जर्यो द्विपदं कलशाण्डकम् ॥
 (द्वादशा सप्तविस्तारा^१) कर्तव्या मूलमञ्जरी ।
 त्रयोदशपदोच्छ्राया ग्रीवास्या भागमुच्छ्रिता ॥
 अण्डकं द्विपदोत्सेधं भागोत्सेधा तु चन्द्रिका ।
 कलशस्त्रिपदोत्सेधो वतुलः शुभलक्षणः ॥
 यावत् क्षितिर्यावदब्धिर्यावच्छशिदिवाकरौ ।
 कर्तास्य तावद् दिव्यास्ते यावत् सुग्गुरुः सुराः ॥

सुनाभाः ।

माहेन्द्रमथ वक्ष्यामः प्रासादं भूषणं क्षितेः ।
 सेवितं यक्षगन्धर्वैः फणीन्द्रैश्च महाप्रभैः ॥
 माहेन्द्रं पञ्चदशभिर्भागैः प्राज्ञो विभाजयेत् ।
 नवभागायतं गर्भं कुर्याद् भित्तिं त्रिभागिकीम् ॥
 विस्तारेणास्य विख्याता तज्ज्ञैः शाला पदत्रयम् ।
 शालायाः पार्श्वयोः कार्यौ रथौ सार्धपदा बुधैः ॥
 रथशालान्तरेणैव कर्तव्यमुदकान्तरम् ।
 (रथस्याप्रातः पञ्चारि गृहकार्यं पदार्धकम्?) ॥
 प्रत्यङ्गानि पदं सार्धं + + + जलान्तरम् ।
 द्विपदं कर्णमानं च कार्यं कोणचतुष्टय(्ये) ॥
 भागेनान्योन्यमेतेषां विधातव्यो विनिर्गमः ।
 ऊर्ध्वमानं तु कर्तव्यं द्विगुणं सीमविस्तृतेः ॥
 तुलोदयो दशांशः स्याद् विंशत्यंशा च मञ्जरी ।
 वेदिबन्धं प्रकुर्वीत सार्धभागद्वयं बुधः ॥

जङ्घयोस्तु समुच्छ्रायमर्धपञ्चमभागिकम् ।
 भागेन भरणं कुर्याल्लाञ्छितं पत्रभङ्गिभिः ॥
 तदूर्ध्वं मेखला कार्या भागद्वितयमुच्छ्रिता ।
 ऊर्ध्वतो मञ्जरी कार्या क्रमेणैव मनोहरा ॥
 नवभागायतं (रुद्धो?) ग्रीवा भागसमुन्नता ।
 अण्डकं द्विपदोत्सेधं चन्द्रिका भागमुच्छ्रिता ॥
 द्विपदं कलशं कुर्याद् विस्तारोत्सेधतः समाः ।
 लताः सप्त विधातव्या (रेषा ब्रूम कुलाकृति?) ॥
 मध्ये लतायाः कर्णस्य वेलकः षड्विधः क्रमः ।
 प्रत्यङ्गे तिलका कूटाः पञ्चालार्धा द्विपक्षकः (?) ॥
 कोणे वराटका(?) कूटाः कार्या माहेन्द्रमन्दिरे ।
 कृत्वा महेन्द्रं राजा स्याद् माहेन्द्रस्य(?) वसेद् दिवि ॥

महेन्द्रः ॥

अथो ब्रूमो वराटारुखं प्रासादं शुभलक्षणम् ।
 दयितं किन्नरेन्द्राणां नागानां चातिवल्लभम् ॥
 चतुरश्रं समं क्षेत्रं विभजेद् दशभिः पदैः ।
 कु(र्या)त् षड्भिः पदैर्गर्भं भित्तिं भागद्वयेन च ॥
 द्विपदं कर्णविस्तारं कुर्यात् कोणचतुष्टयम्(ये) ।
 उदकान्तरविस्तारमर्धभागप्रवेशकम् ॥
 पञ्चभागायतं भद्रमन्तरं वारिमार्गयोः ।
 विस्तारार्धेन कर्तव्यस्तस्य भद्रस्य निर्गमः ॥
 कुर्यान्मध्येऽष्टभिर्भागैः सपादैर्द्वै(तः)त्तमुत्तमम् ।
 सहितो वारिमार्गेण तलच्छन्दोऽयमीरितः ॥
 ऊर्ध्वप्रमाणमेतस्य विस्ताराद् द्विगुणं भवेत् ।
 तुलोच्छ्रायोऽष्टभिर्भागैः पदानि द्वादशोर्ध्वतः ॥
 पदत्रितयमुत्सेधात् कर्तव्यं भद्रपीठकम् ।
 विस्तारार्धार्धमुत्सेधं वेदिबन्धस्य कारयेत् ॥

चतुर्भागोच्छ्रितां जङ्घां ह्रीरकं चार्धभागिकम् ।
 मेखलान्तरपत्रं च कुर्याद् भागसमुच्छ्रितम् ॥
 त्रिपदं शृङ्गमुत्सेधाद् ग्रीवा च कलशाण्डकम् ।
 (पःत)दूर्ध्वं पञ्चविस्तारा स्यादुरोमञ्जरी शुभा ॥
 ग्रीवा कार्या पदार्धेन भागेनैकेन चाण्डकम् ।
 कलशोऽशोच्छ्रितोऽष्टांशविस्तारा मूलमञ्जरी ॥
 तस्याः कार्याः समुत्सेधः प्रमाणान्नवभागि(का?क)ः ।
 स्कन्धः पञ्चपदो ग्रीवा पादहीनं पदं भवेत् ॥
 सपादं पदमञ्जर्या(?) पदस्यार्धेन चन्द्रिका ।
 कलशो द्विपदोच्छ्रायः प्रासादे स्याद् वराटके ॥
 वराटं कारयेद् यस्तु प्रासादं भक्तिमान् नरः ।
 स याति यानैर्विविधैः स्वर्गं प्राप्नोति चाक्षयम् ॥

वराट् ॥

सुमुखस्याधुना लक्ष्म प्र(का?क्र)मागतमुच्यते ।
 भागैरेकोनविंशत्या चतुरश्रे विभाजिते ॥
 तत्रैकादशभिर्गर्भश्चतुर्भिर्भित्तिरंशकैः ।
 कोणो द्विभागिकस्तत्र भागपादो जलान्तरम् ॥
 भागार्धेन प्रवेशोऽस्य चतुरंशकविस्तृतम् ।
 भद्रमेवं विनिर्दिष्टमर्धभागेन निर्गतम् ॥
 पादोनभागद्वितयादन्तरे कर्णभद्रयोः ।
 त्रयः प्रतिरथाः कार्याः सहिताः सलिलान्तरैः ॥
 अर्धभागोऽर्धभागश्च मिथस्तेषां विनिर्गमः ।
 ऊर्ध्वमानं भवेदस्य द्विगुणं द्विकलाधिकम् ॥
 अंशकैः पञ्च(म?भि)श्चैव विधेयोऽस्य तुलोदयः ।
 विभागैः पञ्चविंशत्या तदूर्ध्वं मञ्जरी भवेन् ॥
 वेदीबन्धो विधेयोऽस्य सार्धभागचतुष्टयात् ।
 जङ्घांशैरष्टभिः सार्ध(?)वरण्डी तु द्विभागिका ॥

लताभिर्नवभिर्युक्ता प्राग्वत् कार्यास्य मञ्जरी ।
 स्यादेकादशभिर्भागैरेतत्स्कन्धस्य विस्तृतिः ॥
 चतुर्गुणेन सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ।
 कोणासन्नप्रतिरथो द्राविडोऽस्य विधीयते ॥
 भूमिका नव कर्तव्याः शेषं कार्यं महेन्द्रवत् ।
 पादोनभागद्वितया ग्रीवास्य च विधीयते ॥
 सार्धभागद्वयमितं विदध्यादण्डकं शुभम् ।
 चण्डिका सार्धभागेन कलशश्चाण्डकैस्त्रिभिः ॥
 इत्येष कथितः सम्यक् प्रासादः सुमुखाभिधः ।
 य एनं कारयेद् भक्त्या स कामानश्नुतेऽखिलान् ॥
 भुक्त्वेह विपुलान् भोगान् पदमभ्येति शाश्वतम् ।

सुमुखप्रासादः ॥

*चतुर्मुखा(?)श्रीधरादीनां ये प्रोक्तास्तान् प्रचक्ष्महे ॥
 लक्षणैरधुना सम्यग देवानामनिवर्तनात्(?) ।
 यत् स्याद् विजयभद्रस्य रूपं तस्मिन्नथास्थिते ॥
 विजयो नाम कर्तव्यः प्रासादो देवताप्रियः ।
 कर्णे केसरि + + + सर्वतोभद्रकः पुनः ॥
 निवेशनीयो रथकैः सर्वलक्षणसंयुतः ।
 तस्योपरि विधातव्या मञ्जरी चारुरूपिणी ॥
 विस्तारादुदयात् तस्याः कुर्वीतैककलाधिकम् ।
 स्कन्धस्तु षट्पदः कार्यो ग्रीवा भागसमुच्छ्रिता ॥
 अण्डकं सार्धभागेन चन्द्रिकापि च तत्समा ।
 तस्या एव हि मध्ये तु कुर्यादामलसारकम् ॥
 सार्धभागद्वयोत्तरेण कलशं च तदूर्ध्वतः ।
 द्राविडैश्च घराटैश्च प्रकुर्वीतास्य मञ्जरीम् ॥

१- 'श्चाण्डकैस्त्रिभिः' इति तु युक्तः पाठः ।

* इह ग्रन्थपात इव लक्ष्यते ।

++++ प्रपन्ना नापि जन्मनि जन्मनि(?) ।

नन्दः ॥

महाघोषाभिधानोऽथ प्रासादः कथ्यतेऽपरः ॥

नन्दिघोषस्य संस्थाने रूपे चास्य व्यवस्थितः ।

अस्य क(र्तृ?)णेषु सर्वेषु भद्राणि विनिवेशयेत् ॥

भद्रे चतुष्किका कार्या द्विपदायामनिर्गमा ।

भागिकी भित्तिरन्तश्च शेषं गर्भगृहं स्मृतम् ॥

शृङ्गाणि कर्णे कुर्वीतेत्येषा प्रथमभूमिका ।

द्वितीया तु पुनः कार्या भित्तिविन्यासवर्जिता ॥

चतुर्दिशं विधातव्यं वेदीचन्द्रावलोकनम् ।

विदधीत चतुःस्तम्भां तृतीयामपि भूमिकाम् ॥

छाद्यकैरूर्ध्वेन तस्या कार्या संवरणा बुधैः(?) ।

कारयेन्नन्दिघोषं यः प्रासादमिममुत्तमम् ॥

विभूतिर्वाञ्छिता तस्य कुलेऽपि न विनश्यति ।

महाघोषः ।

प्रासादो मिश्रकेष्वेव वृद्धिरा(गो?)मो विधीयते ॥

(स्त्री)निसस्य?) संस्थानं यत् तदस्यापि कीर्तितम् ।

गर्भकन्दं परित्यज्य स्तम्भैः षोडशभिर्वृतम् ॥

अस्य मध्यं विधातव्यं शेषं च श्रीनिवासवत् ।

उरोघण्टाभिरष्टाभिरश्वशालाभिरेव च ॥

अस्य भद्राणि कुर्वीत सर्वालङ्कारवन्ति च ।

वसुन्धरस्य ये भेदास्तैः सर्वैरन्वितः शुभः ॥

कलशैरेकविंशत्या वृद्धिरामः प्रशस्यते ।

प्रासादस्यास्य कर्ता च यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥

तावदिन्द्र इव स्वर्गे क्रीडत्यप्सरसां गणैः ।

वृद्धिरामः ॥

वृद्धिरामस्य संस्थाने प्रासादः स्याद् वसुन्धरः ॥

१. 'छाद्यकैरूर्ध्वतस्तस्याः कारये संवरण बुधैः' इति पठनीयं स्यात् । २. 'भ्रा' वाच्य' इति स्यात् ।

बाह्यभित्तिः परित्यज्य गर्भभित्तिर्विधीयते ।
वेदिकाकालरूपाद्यो(?) भद्रतोरणभूषितः ॥
एतज्ज्येदसमायुक्तः प्रासादः स्याद् वसुन्धरः ।
भक्त्या यः कारयेदेनं सोऽधितिष्ठत्यसंशयम् ॥
दुष्प्रापमपि देवानां महादेवस्य मन्दिरम् ।

वसुन्धरः ॥

प्रासादं मुद्रनामानमिदानीमभिदध्महे ॥
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे षड्भिर्भागैर्विभाजिते ।
कुर्वीत भागिकीं भित्तिं गर्भं चैवास्य वर्तुलम् ॥
भद्रं चतुष्पदं वृत्तं निर्गमेण पदद्वयम् ।
स्वस्तिक(श्च?स्य) समाकाराश्चत्वारो रथिकाः स्मृताः ॥
कर्णाश्च सर्वे कर्तव्या अश्रिभिः षड्भिरावृताः ।
जङ्घा वेदी च पीठं च (तत्र कीर्ति?)निभानि च ॥
विस्तृतान्येकभागेन द्विभागोत्सेधवन्ति च ।
कर्णकूटानि कुर्वीत सप्त(त्रा?त्र)मकराणि च ॥
भद्रं चतुष्पदायामं पञ्चभागसमुच्छ्रितम् ।
ग्रीवाण्डकं सकलशं कुर्यात् सार्धपदद्वयम् ॥
विस्तारं मूलमञ्जर्याः षट्पदं ++ मालिखेत् ।
उच्छ्रयं दशभिर्भागैर्ग्रीवाकलशसंयुतम् ॥
मञ्जरीमत्र कुर्वीत (मैत्रकीर्त्ते?) यथा कृता ।
प्रासादं + + + + यो भक्तितः कारयेदिमम् ॥
गायन्ति तस्य किन्नर्यो दिवि चन्द्रामलं यशः ।

मुद्रप्रासादः ॥

इदानीं म + + + + + हच्छालं सु(रा)लयम् ॥
कमलोद्भवसंस्थाने कुर्वीतेमं यथास्थितम् ।
दिक्सूत्रे कर्णसूत्रेण रथ + + + + + त् ॥

कर्णान्ते भद्रमध्ये च कारयेदुदकान्तरम् ।
 पदपादेन विस्तीर्णं प्रक्षेपेण पदार्धकम् ॥
 कर्णाध + + + तव्या षड्भिरमृलिङ्गवृत्ताः(?) ।
 पीठं वेदी च जङ्घा च मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 कमलोद्भववत् कार्यं बहुधा क + + वितम् ।
 कर्तव्यशिखरं(?) कुर्यात् + + + + + ॥
 इलिकामकरग्रासैर्वरालैः सासुरैश्चिता ।
 कथिता पुष्पके यादृग् (ज)(घा?ङ्घा)तादृगिहेष्यते ॥
 ऊर्ध्वपीठप्रमाणस्य तथावच्छादकस्य च ।
 यन्मध्यं तत्र कुर्वीत षड्दारुकनिवेशनम् ॥
 रुष्टिकातोरणश्चारुसालभञ्जाविराजितम्(?) ।
 वेदिकाराजसेनाढ्यं (शमूतेद्ववलोकनम्?) ॥
 सस्तम्भशीर्षभरणं पट्टरङ्गोपशोभितम् ।
 (मल्लं?मल्ल)च्छाद्यं विधातव्यं सिंहकर्णविभूषितम् ॥
 सिंहरूपैः समाक्रान्तं विचित्रैश्च वरालकैः ।
 त्र्यंशोच्छिन्नं कर्णकूटं कुर्याद(दिग्व?द्विप)दविस्तृतम् ॥
 ग्रीवाण्डकसमेतं च (व)रण्ड्यां (का?)कलशान्वितम् ।
 कर्णाः पृथक् पृथक् चेह स्युः पदपञ्चाशदण्डकाः ॥
 उरोमञ्जरिकाभिस्ते तिसृभिः स्युर्विभूषिताः ।
 कर्णान्ते मूलरेखा च विस्तारात् सप्तभागिका ॥
 सार्धभागाष्टकं चास्या विधातव्या समुच्छ्रितः ।
 उरोमञ्जरिका कार्या चतस्रोऽनुदिशं तथा ॥
 प्रथमा स्यादुरोरेखा द्वादशाण्डकभूषिता ।
 चतुर्दशाण्डका चान्या तृतीया षोड(शांश?शाण्ड)का ॥
 अष्टादशाण्डकोपेता चतुर्थी परिकीर्तिता ।
 षट्त्रिंशताण्डकैर्युक्ता मूलरेखा विधीयते ॥
 ग्रीवा पदं स्यात् पादोनं सपादं पदमण्डकम् ।
 कबलीफलतुल्यं तच्चन्द्रिका च पदोच्छ्रिता ॥

द्विपदं कलशं विद्यात् समवृत्तं मनोरमम् ।
 अधोतु द्व विधातव्यं बुजं तस्य चोपरि(?) ॥
 विचित्रभूमिके(सप्तदशम्मिलिख्यराक्षणयपि?) ।
 स्तम्भैर्विविधविन्यासैर्बहुभङ्गविनिर्मितैः ॥
 भूषितैः कर्मभिश्चित्रैः सर्वत्र शुभलक्षणैः ।
 चन्द्रशालादिसंयुक्तैस्तोरणैश्चारुचामरैः ॥
 तथाक्षतमुखग्रासैर्धनरूपतया स्थितैः ।
 व्यालैर्व्यालोलजिह्वैश्च मकरग्राससंयुतैः ॥
 मदान्धालिकुलाकीर्णगजवक्रविभूषितैः ।
 विद्याधरवधूवृन्दैः क्रीडारम्भविभूषितैः ॥
 सुराणां सुन्दरीभिश्च वीणाहस्तैश्च किन्नरैः ।
 सिद्धगन्धर्वयक्षाणां वृन्दैश्च परितः स्थितैः ॥
 अप्सरोभिश्च दिव्याभिर्विमानावलिभिस्तथा ।
 चारुचामीकरान्दोलाक्रीडासक्तैश्च ^१(निःसराभू?) ॥
 नागकन्याकदम्बैश्च सर्वतः समलङ्कृतम् ।
 एवंविधाभिः सर्वत्र भूमिकाभिर्निरन्तरम् ॥
 अलङ्कृतो विधातव्यो मेरुः प्रासादनायकः ।
 मध्य(म)द्विगुणैर्ज्येष्ठः क(र्तव्यो)मेरुरण्डकैः ॥
 कनीयान् मध्यमार्धेनेत्यण्डकस्थितिरीरिता ।
 उत्तमेषूत्तमं न्यस्येन्मध्यमेषु च मध्यमम् ॥
 (अध)मेष्वाधमं लिङ्गमेवमन्येषु धामसु ।
 मेरोस्तु त्रिविधस्यापि लिङ्गमुत्तममृद्धिदम् ॥
 अन्यथाविहित + + + + + दिरोषकृत् ।
 मेरुं मेरूपमं दिव्यं यः कारयति पार्थिवः ॥
 स प्राप्नोति परां भुक्तिं + + + + + सदाशिवाम् ।
 मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य काञ्चनं यत्फलद्विभाक् ॥

शैलेष्टकादारुमये कृतेऽस्मिंस्तत्फलर्द्धिभाक् ।
/ मेरुः ॥

(लक्षणं) मन्दरस्याथ प्रासादस्याभिधीयते ॥

सिद्धिप्रदस्य पुण्य(स्य)स्तुतस्य त्रिदशैरपि ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे + + भागविभाजिते ॥

गर्भः कार्यश्चतुर्भागो भित्तिरेकांशविस्तृता ।

अन्धारिकैकभागेन बाह्यभित्तिस्तु भागिकी ॥

कोणेषु रथिकाः कार्याः पदद्वितयसंमिताः ।

चत्वारो मण्डपाः कार्याः पद्त्रिंशत्पदसंमिताः ॥

चतुर्दिशमलिन्दाश्च विधातव्याश्चतुष्पदाः ।

भागेन निर्गतास्ते च सर्वतः शुभलक्षणाः ॥

अस्योर्ध्वमानं कर्तव्यं विस्ताराद् द्विगुणं बुधैः ।

कर्णावेधश्च(?) विस्तारसीमा सर्वत्र गृह्यते ॥

प्रासादे मूलमानं यत् तच्च सम्यक् प्रकल्पयेत् ।

द्विपदं पीठमुत्सेधात् कार्यं ग्राह्य(मुनतो?मूलतो) बहिः ॥

तत् पञ्चैरङ्कितं कार्यं सिंहैरपि च मन्दिरे ।

पदार्थं खुरकः कार्यः प्रासादसमवर्जितः(?) ॥

सार्धं पदद्वयं कार्यो वेदीबन्धः सुशोभनः ।

चतुर्भागोन्नता जङ्घा भागार्थं रूपपट्टिका ॥

मेखलान्तरपत्रं च कार्यं पदसमुच्छ्रितम् ।

पदद्वयायतानि स्युः कर्णे शृङ्गाणि मानतः ॥

उच्छ्रयस्त्रिपदस्तेषां ग्रीवाण्डकलशैः सह ।

मूलरेखा विधातव्या कर्णकूटस्य चोपरि ॥

नवभागोच्छ्रिता शस्ता विस्तारेणाष्टभागिका ।

विस्तारं दशधा कृत्वा तैः षड्भिः स्कन्धविस्तृतैः ॥

लताः पञ्च विधातव्याः श्रीवत्से कथिता यथा ।

कुर्वीत पञ्चभौमं वा सप्तभौममथापि वा ॥

ग्रीवा पादोनभागा स्यात् स(पादं) पदमण्डकम् ।
 चन्द्रिकैकपदा कार्या कलशो द्विपदोदयः ॥
 (त्रिभ्रं?)त्रिपदं कुर्यात् तत्रैकं भागमुत्सृजेत् ।
 शुकनासोत्सृतं कुर्यात् सिंहस्थानविभूषितम् ॥
 कनकाभरणैर्युक्तः पुमान् यद्वद् विराजते ।
 तथा प्रासादराजोऽयं शोभते चित्रकर्मभिः ॥
 मञ्जरीं दशधा कृत्वा कर्मशोभां प्रकल्पयेत् ।
 भागैर्भद्रस्य विस्तारः षड्भिर्भागेन निर्गमः ॥
 भागिक्यौ रथिके तत्र कुर्याद् भागाद् विनिर्गमः ।
 भागद्वयमितान् कर्णान् विदिक्षु च निवेशयेत् ॥
 शालाश्वतस्रः कर्तव्या युक्ताः कूटैर्मनोरमैः ।
 नीरान्तराणि ता अष्टौ मञ्जर्या द्विगुणान्विता ॥
 कूटोर्ध्वे प्रथमा भूमिः कार्या भागद्वयोच्छ्रिता ।
 पदपादविहीनास्तु क्रमेणोपरि भूमिकाः ॥
 अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा भागिकोच्छ्रायमण्डकम् ।
 भागेन कलशः कार्यः सर्वलक्षणसंयुतः ॥
 विस्तारार्धेन कर्तव्यो वेदीबन्धो विबन्धुरः ।
 षड्गुणेनैव सूत्रेण मध्यरेखां समालिखेत् ॥
 द्वितीयामालिखेत् पञ्चगुणितेन विचक्षणः ।
 सार्धत्रिगुणसूत्रेण + + रेखां समालिखेत् ॥
 मञ्जरीभिर्विचित्राभिः सर्वत्रैव विराजितः ।
 प्रासादो मन्दरः कार्यः प्रमाणेनामुना शुभः ॥
 मन्दरं मन्दराकारं कृत्वा प्रासादमुत्तमम् ।
 प्राप्नोतीह परं सौख्यं परत्र च शुभां गतिम् ॥
 मन्दरः ॥

कथयामोऽथ कैलौसमशेषसुरसेवितम् ।
 प्रमथप्रवरैर्जुष्टं प्रासादं पुण्यवर्धनम् ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे शतधा प्रविभाजिते ।
 शाला षड्भागविस्तारा कर्तव्या भागनिर्गमा ॥
 (कलात्रिभागिका कुर्यात् सलिलान्तरसंयुतान्?) ।
 (आरभ्य ब्रह्मणः स्थानात् समा इव पादद्वयम्?) ॥
 भ्रमयित्वा समं वृत्तं (गर्भं?गर्भमंशं) प्रकल्पयेत् ।
 तथा भित्तिर्विधातव्या समन्तादर्धभागिका ॥
 भागिका बाह्यभित्तिः स्यात् (कार्या स्याद्?) भद्रभूषिता ।
 अन्तराले तु सर्वत्र विदध्यादन्धकारिकाम् ॥
 अलिन्दकाश्चतुर्भागाः कर्तव्या दिक्त्रये बुधैः ।
 भागद्वयेन निष्क्रान्ताः सर्वतः शुभलक्षणाः ॥
 (चतुर्थोकां?) विधातव्यास्तेषु स्तम्भद्वयान्विताः ।
 मुखे तु मण्डपः कार्यः स्तम्भपङ्क्तिविराजितः ॥
 अथोर्ध्वमानं वक्ष्यामः कैलासस्य यथास्थितम् ।
 पीठं तस्य पदे द्वे तु कर्तव्यं गणभूषितम् ॥
 पदस्यार्धेन कर्तव्यः खुरकस्तु खुरादिति (?) ।
 तदूर्ध्वं द्विगुणा ज्ञेया प्रासादस्य समुच्छ्रितः ॥
 एकेन कुम्भकः कार्यो भागेन समवर्जितः ।
 मसूरकस्तु भागेन पादोनेन विधीयते ॥
 कार्यं पदस्य पादेन ततश्चान्तरपत्रकम् ।
 मेखलार्धपदेन स्याच्चन्द्रशालाविभूषिता ॥
 जङ्घा तदूर्ध्वं कर्तव्या सार्धं पदचतुष्टयम् ।
 भागेनैकेन कुर्वीत मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 कर्णशृङ्गं त्रिभिर्भागैः कुर्यात् सकलशाण्डकम् ।
 तदूर्ध्वं द्विपदानि स्युः कूटान्युच्छ्रायमानतः ॥
 पूर्वोक्तानाममीषां च प्रक्षेपः स्यात् पदां(शतः) ।
 चतुर्धा कूटविस्तारं संविभज्य पदद्वये ॥

(संद्रस्यादितित्तयनि?) सिंहक्रान्तानि कारयेत् ।
 विस्तारं मूलमञ्जर्याः कुर्यात् षड्भागसंमितम् ॥
 सप्तभागिकमुच्छ्रायं कैलासेऽस्याः प्रकल्पयेत् ।
 भागार्धेन भवेद् (भाग?)भागिकोच्छ्रायमण्डकम् ॥
 चण्डिकामर्धभागेन कलशं सार्धभागिकम् ।
 कुर्वीत शिखरं चास्य स्वस्तिकस्य यथोदितम् ॥
 युक्तं भूमीभिरष्टाभिर्मञ्जरीभिरलङ्कृतम् ।
 सिंहकर्णैर्विचित्रैश्च भद्राण्यस्य विभूषयेत् ॥
 कर्तव्यः स्कन्धविस्तारस्तस्मिन् पदचतुष्टयम् ।
 विदधीत समालेखमुत्रेण त्रिगुणेन च ॥
 एवं + + + + + कैलासं विदधाति यः ।
 विभूतिं लभते सोऽत्र सुखसौभाग्यसंयुताम् ॥
 कामानवाप्य विविधान् कीर्तिमारोग्यमेव च ।
 भुक्त्वा भोगांश्च कैलासे कल्पान्ते यावदीप्सितम् ॥
 शर्वं पदमवाप्नोति शान्तं ध्रुवमनामयम् ।

कैलासः ।

त्रिविष्टपमथ ब्रूमः प्रासादममरप्रियम् ॥
 सेवितं यक्षगन्धर्वसिद्धविद्याधरादिभिः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्यंशविभाजिते ॥
 षड्भागविस्तृता शाला स्याच्चतुर्भागनिर्गमा ।
 चतु(रंश?श्श)ती कोष्ठकानां द्वासप्तत्यधिका भवेत् ॥
 आशात्रयस्थितैर्भद्रैः सार्धमेवं प्रजायते ।
 कुर्याद् गर्भगृहाण्यष्टौ (दिक्षुष्वास्वपि?) तानि तु ॥
 कोणे तु षोडशांशानि तन्मध्ये चतुरोऽंशकान् (?) ।
 भित्तिर्द्वादशाभिर्भागैर्गर्भाणामिति निर्णयः ॥
 चतुःषष्टिपदः कार्यो मध्ये प्रासादनायकः ।
 पदैः षोडशभिस्तस्य मध्ये गर्भं प्रकल्पयेत् ॥

द्विभागविस्तृता भित्तिः कर्तव्या तस्य बाह्यतः ।
 (चतुर्द्विशतिं भ्रमन्ती स्य?)+पञ्चपदायता ॥
 बलभीः कारयेत् तद्वद् (द्विदिग्) भागेषु चतुर्ष्वपि ।
 प्रत्यङ्गं द्विपदं कर्णशालावलभिकान्तरे ॥
 तच्च द्विपदमुद्दिष्टं जलमार्गे पदार्थिके ।
 पदैर्द्वादशभिर्दिक्षु चतसृष्वपि मण्डपान् ॥
 प्रासादस्य प्रकुर्वीत कर्मशोभाविभूषितान् ।
 मू(ला?ल)प्रासादगर्भस्य कुर्याद् द्वारचतुष्टयम् ॥
 विज्ञे(ये?यं) तच्च दिग्भद्रे सूत्रमार्गानुसारतः ।
 जलान्तराणि कुर्वीत प्रत्यङ्गे पार्श्वयोरपि ॥
 बाह्यभित्तिं तु कुर्वीत भागेनैकेन संमिताम् ।
 एवं विभज्य कुर्वीत पुरतो मुखमण्डपम् ॥
 ऊर्ध्वमानमथ(स्त्रिंशा?)तत्र पीठं चतुष्पदम् ।
 मध्यप्रासादजङ्घा च तद्वदेव समुच्छ्रिता ॥
 अतः पदैः स्याद् विस्ताराद् द्विगुणा शिखरोन्नतिः ।
 तस्याश्च मध्ये कुर्वीत षोडशांशं तुलोदयम् ॥
 तुलोदयस्य मध्ये द्वे वेदीबन्धं सपञ्चकाम् (?) ।
 जङ्घा चाष्टपदा कार्या मध्ये चासनपट्टिका ॥
 एषा (त?मन्तर)पत्रं च कर्तव्यं त्रिपदोच्छ्रितम् ।
 तुलोदयस्योपरिष्ठात् प्रमाणमथ कथ्यते ॥
 चतुष्पदेषु कर्णेषु कृतं पञ्चपदोदयम् ।
 ग्रीवा पदस्य पादो(न?ना)त्रिभिः पादैस्तथाण्डकम् ॥
 चन्द्रिकाकलशोत्सेधं पादेनैकेन कल्पयेत् ।
 प्रत्यङ्गे तिलकास्त्र्यंशा घण्टाकलशसंयुताः ॥
 मध्ये तु बलभीशृङ्गमुन्नतं सप्तभिः पदैः ।
 ऊर्ध्वतस्तिलकानां स्यादुरोमञ्जरिका दश ॥

विस्तारेण पदान्यूर्ध्वं भवेद् द्वादशभागिका ।
 स्कन्ध(पट्टादि?)विस्तारो ग्रीवा पादोनभागिका ॥
 अण्डकं सार्धभागेन चन्द्रिका भागमुच्छ्रिता ।
 द्विपदः कलशोच्छ्रायस्तद्वद्(द्व?)बीजपूरकम् ॥
 विस्तारो मूलमञ्जर्याः कार्यः षोडशभिः पदैः ।
 उच्छ्रायः सप्तदशभिः स्कन्धो नवपदः स्मृतः ॥
 कार्या सप्तलतोपेता प्रशस्ता मूलमञ्चरी ।
 ग्रीवास्य भागिका भागद्वयमामलसारकम् ॥
 चन्द्रिका भागमेकं स्यात् त्रिपदा कलशोच्छ्रितिः ।
 उक्ता या मूलमञ्जर्यः प्राक् प्रासादेषु तास्वियम् ॥
 कार्ये माहामाकारा(?) चारुकर्मोपशोभिता ।
 बाह्यभित्तिसमायुक्तं प्रासादस्य चतुर्दिशम् ॥
 मल्लच्छाद्यं प्रकुर्वीत यथाशोभं विचक्षणः ।
 सर्वतश्चारुरूपाद्यैर्विचित्रैः शुभलक्षणैः ॥
 विभूषयेत् सिंहकर्णैर्मल्लच्छाद्यं मनोहरैः ।
 वलभीत्रयसंयुक्तं कर्णकूटचतुष्टयम् ॥
 यथाशोभं विधातव्यं प्रासादेऽस्मिन्निविष्टपे ।
 वास्तौ शतपदे यानि मर्माण्युक्तानि सर्वतः ॥
 उत्सृज्य तानि यत्नेन परिकर्मात्र कारयेत् ।
 प्रासादं कारयित्वैनमुक्तरूपं त्रिविष्टपम् ॥
 लभेतेह यशो राज्यं परत्रानन्त्यमेव च ।
 कृत्वा त्रिविष्टपं दिव्यं प्रासादं पुरभूषणम् ॥
 वसेत् त्रिविष्टपे तावद् यावदाभूतसंप्लवम् ।
 तस्यान्ते तु परे तच्चे लयमाप्नोति मानवः ॥

त्रिविष्टपः ॥

अथाभिधीयते सम्यक् प्रासादः प्रथिवीजयः ।
 किन्नरासुरयश्चाद्यैर्वीन्दितः सुरसत्तमैः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे(विभागाष्व?) विभाजिते ।
 चतुर्भागा भवेच्छाला सपा(दै?दां)शविनिर्गता ॥
 कर्णशृङ्गद्वयं कार्यं प्रत्येकं भागविस्तृतम् ।
 पादोनपदनिष्क्रान्तं + + + + + ॥
 भागैश्चतुर्भिर्गर्भः स्याद् भित्तिः कार्या तु भागिका ।
 भ्रमन्तिकापि भागेन बाह्यभित्तिश्च भागिकी ॥
 भागद्वयेन कुर्वीत दिक्त्रयेऽस्य चतुष्किकाम् ।
 पुरतो मण्डपं कुर्यादुपेतं कर्मशोभया ॥
 एवं विभागान् संकल्प्य यथोद्देशं विचक्षणः ।
 मन्दरस्येव कुर्वीत कर्मशोभां समन्ततः ॥
 ऊर्ध्वतो यत् प्रमाणं स्यात् तदस्येहाभिधीयते ।
 अधस्तान्नागपीठः स्यात् प्रमाणेन पदद्वयम् ॥
 हीरकं भागपादेन तस्य मध्ये निवेशयेत् ।
 विस्ताराद् द्विगुणं चोर्ध्वमानं भागार्धसंयुतम् ॥
 ऊर्ध्वमानस्य मध्ये स्यात् पट्टपदानिबर्हणादयः(?) ।
 वेदीबन्धश्च तन्मध्ये कर्तव्यः सार्धभागिकः ॥
 ततो हीरकसंयुक्ता जङ्घा पदचतुष्टया ।
 मेखलान्तरपत्रं च कार्यं भागार्धसंमितम् ॥
 भागद्वयेन कर्तव्यं वेदिका राजसेरका ।
 चन्द्रावलोकं भागेन विदधीत विचक्षणः ॥
 कुर्यात् पदस्य पादेन तत्रैवासनपट्टकम् ।
 पदद्वयेन सांशेन स्तम्भमूर्ध्वं निवेशयेत् ॥
 अर्धभागेन कुर्वीत भरणं स्तम्भशीर्षके ।
 अर्धभागेन पट्टं चच्छाद्यं सार्धपदायतम् ॥
 (द्वे सन्त पठिका?) कार्या ततो भागार्धसंमिता ।
 ऊर्ध्वमन्तरपत्रस्य (कथमोथ?) यथाक्रमम् ॥

कुर्याद् ग्रीवाण्डकलशं चन्द्रिकाभिः समं बुधः ।
 उच्छ्रायं कर्णशृङ्गाणां सार्धभागं प्रमाणतः ॥
 स्तम्भसूत्रेण कर्तव्यं नष्टशृङ्गं विचक्षणैः ।
 कूटानि पञ्च कुर्वीत यथावत् प्रथमक्षितौ ॥
 (प्राग्ग्रीवा)णि भूमौ द्वितीयायां तृतीयायां तु कूटकम् ।
 कुर्यात् तुल्यसमुच्छ्रायविस्तारं तच्च मानतः ॥
 कर्णे कर्णे तु कूटानि भवन्त्येवं पृथङ् नव ।
 शुकनासोन्नतिः कार्या सार्धभागद्वयं बुधैः ॥
 स्यादुरोमञ्जरी पूर्वा नष्टशृङ्गस्य चोपरि ।
 विस्तारात् त्रिपदा सा स्यात् सार्धभागत्रयोन्नता ॥
 भागं सपादं कुर्वीत ग्रीवांसकलशाण्डकम् ।
 द्वितीयशृङ्गस्योर्ध्वं स्यादुरोमञ्जरिकापरा ॥
 विस्तीर्णा चतुरो भागान् कार्या पञ्चपदोच्छ्रिता ।
 स्कन्धावरोहणग्रीवाचन्द्रिकाकलशैः सह ॥
 एतेषां तु समुच्छ्रायः सार्धभागं विधीयते ।
 उरःशिखरकाण्यष्टावेवं कुर्याच्चतुर्दिशम् ॥
 तृतीयकर्णशृङ्गस्य स्यादूर्ध्वं मूलमञ्जरी ।
 सा भवेत् षट्पदोच्छ्राया पदपञ्चकविस्तृता ॥
 त्रिपदः स्कन्धविस्तारो दिक्षु स्याच्चतसृष्वपि ।
 कूटैश्च विविधन्यासैरलङ्कुर्वीत मञ्जरीम् ॥
 अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा सार्धांशद्वयविस्तृता ।
 अण्डकस्य समुच्छ्रायस्त्रिभागोनपदं भवेत् ॥
 कर्परं चार्धभागेन कलशः पदमुच्छ्रितः ।
 नवभिः शिखरैर्युक्तः कर्तव्योऽयं समन्ततः ॥
 वेदीबन्धस्तु सर्वत्र कर्तव्यः शतवास्तुवत् ।
 कुर्यात् तेन विभागेन कलशानपि शोधनान् ॥
 मञ्जरीः पञ्चपञ्चाग्रतुल्याः सर्वत्र कारयेत् ।
 अण्डकानि भवन्त्यत्र चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥

एवंविधं विधत्ते यः प्रासादं पृथिवीजयम् ।
 पृथ्वीं विजयते कृत्स्नां निर्जितारिः स पार्थिवः ॥
 अन्योऽपि कश्चिद् यः कुर्याद् (वर्णाच्छतः?) भक्तिमानिमम् ।
 सोऽपि सौख्यमवाप्नोति पश्चादन्ते परं पदम् ॥

८

पृथिवीजयः ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रासादं क्षितिभूषणम् ।
 अमरैर्वन्दितं सर्वैस्तथा चाप्सरसां गणैः ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
 भद्रे पञ्च पदानि स्युः कोणे कार्यं पदत्रयम् ॥
 गर्भं षोडशभिर्भागैस्तस्य कुर्याद् विचक्षणः ।
 कर्तव्या पदविंशत्या कन्दभित्तिः समन्ततः ॥
 प्रासादस्यास्य कर्तव्या रमणी तु पदद्वयम् ।
 प(ट्टि?)दिका बाह्यभित्तिः स्याद् द्विपदो भद्रनिर्गमः ॥
 जलान्तरं तु भागस्तु + + + + गवाक्षकाः ।
 भद्राणां मध्यतः पञ्च(स?)प्रकाशाः (स?)मनोरमाः ॥
 बाह्यालिन्दं प्रकुर्वीत वेदीजालविभूषितम् ।
 तस्योपरिष्ठात् कुर्वीत माल्युच्छ्रायं सुशोभनम् ॥
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः प्रासादे क्षितिभूषणे ।
 क्षुरकं तस्य कुर्वीत त्रिपदं पीठसंयुतम् ॥
 अस्योच्छ्रायस्ततः सार्ध(पदाः स्यात्?)पञ्चविंशतिः ।
 एतन्मध्ये तु दशभिः पदैः कार्यस्तुलोदयः ॥
 रेखा पञ्चदशांशा स्यात् स्कन्धशीर्षं पदार्धकम् ।
 वेदीबन्धस्तु कर्तव्यः सार्धभागद्वयं बुधैः ॥
 जङ्घा षड्भागिकोच्छ्राया भागार्ध(पेचराः?)शुभाः ।
 मेखलान्तरपत्रं च पदेनैकेन कारयेत् ॥
 कार्या चतुष्पिका पञ्चविस्तारा त्रिपदोच्छ्रिता ।
 तदूर्ध्वतः क्रमः कार्यो द्विपदोऽन्योऽधिकं पदम् ॥

भूमयः पञ्च कर्तव्या न्यूना(+च?)यथोत्तरम् ।
 प्रथमा भूमिका (का)र्या सार्ध(द्विभागास्तु गवाक्ष?, भागत्रयं बुधैः ॥
 सपादास्तु त्रयो भागा द्वितीया(या?स)मुदाहृता ।
 तृतीया त्रिपदा ++++++ परा ॥
 १ ++++++ पञ्चमी भूमिरिष्यते ।
 पादहीनपदं ग्रीवा सपादपदमण्डकम् ॥
 चन्द्रिका भागमेकं स्यात् पद्मपत्रनिभा शुभा ।
 त्रिपदं कलशं विद्यान्मातुलिङ्गसमन्वितम् ॥
 द्वाविडं नागरं वापि वाराटं वास्तु शोभनम् ।
 (यदेकं तेवते कर्तु?)तद्रूपं तं प्रकल्पयेत् ॥
 नानाप्रकारैः स्तम्भैश्च नानाभूषणभूषितैः ।
 कलशैः पद्मपत्रैश्च हीरकैश्चोपशोभितम् ॥
 कृत्रिमग्रासयुक्ताभिश्चन्द्रशालाभिरन्वितम् ।
 मरुग्राससंयुक्तैस्तोरणैर्लक्षणान्वितैः ॥
 (कोणोत्कण्ठैः?)विचित्रैश्च रूपैश्चित्रैश्च शोभितम् ।
 कर्म रम्यं प्रकुर्वीत यथावद् वित्तविस्तृतम् ॥
 गुणवान् नृपतिर्यद्वद् भूषयत्यखिलां महीम् ।
 क्षितिं विभूषयत्येवं प्रासादः क्षितिभूषणः ॥
 द्रव्येषु रेणुसंख्या या सुधायामपि यावती ।
 तावद्युगसहस्राणि कर्ता शिवपदे वसेत् ॥

क्षितिभूषणः ॥

संस्थानं सर्वतोभद्रस्याधुना परिकीर्त्यते ।
 चतुरश्रीकृतं क्षेत्रं विभजेद् दशभिः पदैः ॥
 तत्र गर्भो भवेत् तावान् यावत् स्याद् ब्रह्मणः पदम् ।
 ++++++ भित्तिश्चेति पदं पदम् ॥

१. 'न्यूनास्ताश्च' इति स्यात् ।

२. 'तृतीया त्रिपदा कार्या पादोनत्रिपदा परा ।' इति पाठ्यं स्यात् ।

३. 'अर्धहीनात्रभागा तु पञ्चमी भूमिरिष्यते' इति पाठ्यं स्यात् ।

भागषट्केन भद्रं स्यात् सार्धभागविनिर्गतम् ।
 कर्णं द्विभागिकं कुर्यात् + लमाग्रसमन्वितम् ॥
 पदपादस्य पादेन विस्तारो जलवर्त्मनः ।
 यत्रैकमेव भद्रं स्याच्चारुस्तम्भैरलङ्कृतम् ॥
 (स+सं)मोददं स्यात् तद् वस्तु धनधान्यसुखावहम् ।
 चतुर्भिर्विस्तृतं भागैः सार्धभागविनिर्गतम् ॥
 भद्रस्यैवाग्रतो भद्रं त(च्छा+श्च) बाह्योदरं विदुः ।
 विस्ताराद् द्विगुणश्चास्य समुच्छ्रायः प्रकीर्तितः ॥
 कुम्भकं भागिकं कुर्याद् भागार्धेन मसूरकम् ।
 भागपादेन कुर्वीत ततश्चान्तरपत्रकम् ॥
 मेखलायाः समुच्छ्रायमर्धभागेन कारयेत् ।
 चतुर्भागेन्नता जङ्घा प्रासकिङ्किणिकान्विता ॥
 पदं पादविहीनं स्यात् (कुण्डलं?)स्थानेषु हीरकम् ।
 मेखलान्तरपत्रं च पदार्धेन समु(द्यु+च्छि)तम् ॥
 त्रिभागविनतं कुर्याद् भागे चन्द्रावलोकनम् ।
 ऊर्ध्वमासनपट्टस्य स्तम्भं कुर्यात् पदद्वयम् ॥
 हीरग्रहणशीर्षं च पदेनैकेन कारयेत् ।
 भागेनैकेन कुर्वीत पट्टपिण्डं विचक्षणः ॥
 द्विपदं छाद्यविस्तारं तदर्धेन(तुलस्वनमः?) ।
 जठरं बाह्यसीमा च भित्तयश्चान्धकारिका ॥
 जङ्घोत्सेधश्च कर्णश्च + + + यथा भवेत् ।
 कोणेषु रथिकाः कार्याः कलशान्ताः पदत्रयम् ॥
 द्वितीया द्विपदोच्छ्राया रथिका परिकीर्तिता ।
 उच्छ्रायः सिंहकर्णस्य प्रथमस्य पदत्रयम् ॥
 पदद्वयं द्वितीयस्य तत एव समुन्नतिः ।
 शृङ्गाणां स्यान्मिथः क्षेपो भागं (प+?)यथोत्तरम् ॥
 भागान् समोच्छ्रितं कुर्याच्छिखरं विस्तृतं + षट् ।
 अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा स्यादेकं भागमण्डकम् ॥

चन्द्रिकार्धपदेन स्यात् सार्धं तु कलशः पदम् ।
 मञ्जरीः पञ्चपत्राग्रे तुल्याः सर्वत्र कारयेत् ॥
 अधस्ताद् भद्रपीठं तु वास्तु(वाःपा)देन शोभनम् ।
 यः कुर्यात् सर्वतोभद्रं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
 जयश्रीर्जायते तस्य + + + + + ।

सर्वतोभद्रः ॥

ब्रूमो(१)विमानं दस्या सादस्याथ?) लक्षणम् ॥
 गणगन्धर्वजुष्टस्य वल्लभस्य दिवस्पतेः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे शतधा प्रविभाजिते ॥
 विमानं विभजेत् प्राज्ञः श्रेयःपुष्टिसुखावहम् ।
 भद्रैश्चतुर्भिस्तं कुर्यात् कर्णप्राग्ग्रीवकैस्तथा ॥
 विस्तारार्धं भवेद् गर्भो यच्छेषं तेन भित्तयः ।
 (१)त्रिंशद्वा)मतो ज्येष्ठो मध्यमः पञ्चविंशतिः ॥
 कनीयांस्तु विधातव्यः षोडशाप्येकविंशतिः ।
 जातिशुद्धो भवेदेको मञ्जरीभिस्तथापरः ॥
 मिश्रकस्य विमानस्य त्रैविध्यमिति कीर्तितम् ।
 (ज्येष्ठो मिश्रको निर्माणेः सर्वः कैलास द्रवान्?) ॥
 मध्यमो जातिशुद्धस्तु मञ्जरीभिर्विवर्जितः ।
 कनीयांश्च विधातव्यो मञ्जरीभिरलङ्कृतः ॥
 कर्णप्राग्ग्रीवविस्तारः कर्तव्यो भागसम्मितः ।
 भागार्धं क्षोभणा कार्या यच्छेषं तच्च कर्णवत् ॥
 भागस्यार्धेन कुर्वीत तस्माद् भद्रस्य निर्गमम् ।
 मिश्रकस्य चतुर्भागः प्राग्ग्रीवो विस्तरेण तु ॥
 मूलसूत्रानुसारेण पार्श्वयोः पदिकौ रथौ ।
 ऊर्ध्वमानं विमानस्य यथावदथ कथ्यते ॥

१. 'विमानसंज्ञस्य प्रासादस्याथ' इति पाठ्यं स्यात् ।

२. 'त्रिंशत्पदयो' इति स्यात् ।

द्विपदं पीठमाख्यातं किन्नरैरुपशोभितम् ।
 स्कन्धं यावच्च भागानां द्वाविंशतिरुदाहृता ॥
 (वेदीबन्धो तु + + + सार्धभागद्व + भवेत् ?) ।
 (चतुर्भागोऽत्र + छाद्या भागार्धेन + किन्नरा ?) ॥
 मेखलान्तरपत्रं च पदमेकं समुन्नतम् ।
 रूपाणि जङ्घागात्रे स्युर्वा (चारिणां रथके ?) ॥
 (स्तरसेका ?) तस्य मध्ये स्यान्मकरग्रासभूषिता ।
 भल्लिकातोरणेश्वारुघण्टाचमरकिन्नरैः ॥
 ऊर्ध्वं तुलाप्रमाणस्य चतुर्भौमं तु प्रथम (?) ।
 + + + + भूमिकायां चतुर्भागसमुन्नता ॥
 (सोर्धभागा त्वपरा विस्तारा ?) सार्धभागिकी ।
 संक्षेपः प्रथमतोऽस्याः कलशान्ते पदं भवेत् (?) ॥
 तृतीया त्रिपदा कार्या सपादपदविस्तृता ।
 पदार्धेन तु संक्षेपस्तस्याः कार्यो विचक्षणैः ॥
 चतुर्थी त्रिपदा कार्या भूमिर्मेखलया सह ।
 ललिता मञ्जरिभिश्च नीलोत्पलदलाकृतिः ॥
 सीमः पञ्चगुणं सूत्रं रेखान्तं तत्र वर्तयेत् ।
 (व्यासहवसममात्रा ?) प्रवेशः प्रथमो भुवः ॥
 ततोऽर्धवृद्धिवृद्धौ द्वावन्यस्तुर्यस्तु तत्समः ।
 पदार्थं वेदिकोत्से (ध ? धाद्) विस्तारात् पञ्चभागिकी ॥
 ग्रीवा पादोनभागं स्यात् सपादं भागमण्डकम् ।
 कङ्कतीफलरूपं च मन्दारकुसुमाकृति ॥
 चन्द्रिका ग्रीवया तुल्या कलशो द्विपदोन्नतः ।
 विमानं छन्दकं कुर्यात् सर्वलक्षणसंयुतम् ॥
 अश्वमेधप्रधानैर्यदिष्टैः (क्र) तु शतैर्भवेत् ।
 तदेकेन विमानेन फलमाप्नोति मानवः ॥

विमानम् ॥

नन्दनस्याथ वक्ष्यामः प्रासादस्येह लक्षणम् ।
 द्वाविंशतिकरं क्षेत्रमष्टधा प्रविभाजयेत् ॥
 चतुर्भागप्रविस्तारं तस्य भद्रं प्रकल्पयेत् ।
 भागेनैकेन निष्क्रान्तं प्राग्रीवं चास्य शोभनम् ॥
 मूलकर्णस्य पदिकौ कर्तव्यौ पार्श्वगौ रथौ ।
 षडङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वा चतुरङ्गुलमेव च ॥
 तूलान्तरं प्रकुर्वीत दीयते तत्र मञ्जरी ।
 नैश्चतुर्भिर्भागैः स्याच्छेषं भिन्न्यन्धकारिका ॥
 द्विपदं कन्दभद्रं स्यात् पदपादेन निर्गतम् ।
 पुरतो मण्डपं चास्य सुग्रीवं नाम कारयेत् ॥
 द्वैगुण्यं मूर्धविस्तारार्धं भ + + + वेदिका ।
 रेखामस्य तथा कुर्यात् कैलासस्य यथोदिता ॥
 भूमयः षड् विधातव्या द्वादशाण्डाः पृथक् पृथक् ।
 नन्दयत्येष कर्तारमिह लोके परे च यत् ॥
 नन्दनो नाम तेनोक्तः प्राज्ञैः प्रासादसत्तमः ।

नन्दनः ॥

अ(था)भिदध्मः प्रासादं स्वस्तिकं स्वस्तिदायकम् ॥
 देवासुरगणैर्वन्द्यं यक्षसिद्धमहोरगैः ।
 ज्येष्ठमध्यकनिष्ठस्य तलच्छन्दोऽस्य (यदेशः? यादृशः) ॥
 यादृगूर्ध्वप्रमाणं च तत् सम्यगिह कथ्यते ।
 चतुरश्रे समे क्षेत्रे पञ्चविंशतिहस्तके ॥
 सूत्रपातं प्रकुर्वीत कर्णतिर्यङ्मुखायतम् ।
 ततः सीमार्धसूत्रेण वृत्तमालिख्य निश्चितम् ॥
 द्वात्रिंशता समन्ता(त्त)द्रेखाभिर्विभजेत् ततः ।
 वृत्तं (तथोमुघाताक्षि 'दिर्विद?')स्थाभिरङ्कयेत् ॥
 दिक्कर्णसूत्रयोर्मध्यं (ततो सेव?)त्रयं बुधः ।
 कुर्याद् द्वात्रिंशदेवं स्युर्भागास्तुल्यप्रमाणकाः ॥

ऐन्ध्यादिष्वीशपर्यन्तास्वष्टौ शालाः प्रकल्पयेत् ।
 शालान्तरेषु कुर्वीत कोणानष्टौ यथाक्रमम् ॥
 कोणात् कोणं नयेत् सूत्रं त्यक्त्वा शालाद्वयं मुहुः ।
 विदिक्ष्वष्टसु सूत्राग्रं पद्मपत्रवदानयेत् ॥
 कोणाश्च रथिकाश्चैव भवन्त्येवं सुलक्षणाः ।
 चतुरश्रा भवन्त्यष्टौ शाला भागद्वयायताः ॥
 द्व्यंशानि कर्णभद्राणि पद्मपत्रनिभानि च ।
 ऊर्ध्वमानं भवत्यस्य द्विगुणं (तूर्ध्वमा+नात्?) ॥
 विंशत्या विभजेदूर्ध्वं तत्राष्टाष्टांशस्तुलोदयः ।
 शेषां तु मञ्जरीं कुर्यादास्कन्धावधि बुद्धिमान् ॥
 विस्तारपञ्चमांशेन पीठोच्छ्रायं प्रकल्पयेत् ।
 त्रिपदं वेदिकाबन्धं (सुएकेण?) समन्वितम् ॥
 जङ्घांशलं(ब)नां कुर्याच्चतुर्भागसमुच्छ्रिताम् ।
 मेखलान्तरपत्रं च भागेनैकेन कारयेत् ॥
 द्वादशांशोच्छ्रिता रेखा कार्या सप्त च भूमयः ।
 अर्धभागोच्छ्रिता ग्रीवा विस्तारेण चतुष्पदा ॥
 स्कन्धः षड्भागविस्तारः कार्यो वृत्तः सुशोभनः ।
 समालिखेदेषु कोशं विस्तारात् त्रिगुणात्मना ॥
 सूत्रेण येन वा स्कन्धो भवेत् षड्भागविस्तृतः ।
 हस्तैः स्यात् पञ्चविंशत्या ज्येष्ठः षोडशभिः परः ॥
 कनीयान् स्वस्तिको ज्ञेयः करैर्द्वादशभिः पुनः ।
 भागषट्कसमुच्छ्राया जङ्घा ज्येष्ठस्य कीर्तिता ॥
 मध्यमाधमयोः पञ्चचतुर्भागोच्छ्रिता क्रमात् ।
 स्वस्तिके कारिते स्वस्ति सर्वलोकस्य जायते ॥
 विशेषतश्च भूपानां कर्तुं स्यात् समीहितम् ।

स्वस्तिकम्-॥

सूक्तकोणमथ नमः प्रासादं स्यात् स च शिवा ॥

हस्तैः क्रमेण ज्येष्ठादिः षोडशद्वादशाष्टभिः ।
ज्येष्ठोऽष्टादश भागान् स्यान्मध्यमस्तु चतुर्दश ॥
कनीयान् दश भागा(न्) (य?स्या)त् सदस्तस्याभिधीयते ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ॥
कोष्ठकानां विधातव्यं चतुर्विंशं शतत्रयम् ।
भागषट्त्रिंशता कुर्यान्मध्ये गर्भगृहं शुभम् ॥
बाह्यभित्तिस्तथान्धारी मध्यभित्तिरिति त्रयम् ।
पृथक् पृथक् स्याद् द्विपदविस्तारं परिमाणतः ॥
चतुर्भागायता शाला भागेनैकेन निर्गता ।
शालाया भूषणं भद्रं विधायैतत् पदद्वयम् ॥
तत्पार्श्वद्वितये कुर्यात् त्वधिके भागिके बुधः ।
वार्यन्तराणि कुर्वीत दिक्ष्वष्ट चतसृष्वपि ॥
वार्यन्तरानन्तरं तु भागद्वितयसंमितान् ।
अष्टौ कुर्वीत रथिकांश्चतुर्दिशमनुत्तमान् ॥
कोणे द्विभागिकैः कुर्याद् रथानामांससंमिता (?) ।
कोणे रथान् परित्यज्य शेषं कुर्याद् यथोदितम् ॥
मध्यमोऽयं समाख्यातः कनीयान् कथ्यतेऽधुना ।
चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ॥
चतुर्भागा भवेच्छाला भागेनैकेन निर्गता ।
एकभागप्रमाणानि पार्श्वे वार्यन्तराणि च ॥
तेषां मध्ये प्रकुर्वीत सरोजदलसंनिभम् ।
रथक(र्णोन्य?र्णे य)थावच्च सलिलान्तरभूषणम् ॥
•भागार्ध क्षोभणा कार्या चतुष्कोणे व्यवस्थिता ।
सार्धभागोन्मितान् कुर्यात् कर्णप्राग्ग्रीवकान् शुभान् ॥
वार्यन्तराणां (१+प्रोक्ता भूषणोभि?) कनीयसि ।
प्रासादे मध्यमेऽप्येषा ज्यायस्यपि च कल्प्य(वै?ते) ॥

समराङ्गणसूत्रधारे

त्रेविधोऽयं समाख्यातो मुक्तकोणः समासतः ।
 ऋध्वमानं भवेदस्य विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रयम् ॥
 अस्तिस्तु?) पञ्चदशभिस्तन्मध्यं स्यात् तुलोदयः ।
 तदुष्पदो वेदिबन्धो जङ्घा सार्धैश्च सप्तभिः ॥
 खलान्तरपत्रं(चार्ध सार्ध?) हीरकं पदम् ।
 त्रेपदा कर्णशृङ्गास्य कलशान्तसमुच्छ्रयान्(?) ॥
 संहकर्णश्च कर्तव्यः स्व+भागे समुन्नतः ।
 ऋध्वतः कर्णशृङ्ग(स्य) विधेया मूलमञ्जरी ॥
 सावधो विस्तरः + +)पदान्यष्टादशोच्छ्रिताः(?) ।
 तुर्दिशं समायामः स्कन्धः स्यान्नवभागिकः ॥
 अर्ज्यास्त्रयंशपुरेन(?) शुकनाससमुच्छ्रितिः ।
 त्रि + मेन भागेन कुर्याद् द्विपदमण्डकम् ॥
 ण्डिकां सार्धभागेन त्रिपदं कलशोच्छ्रयम् ।
 + + + यन्नरः कश्चिन्मुक्तकोणं महायशः ॥
 १)प्राप्नोति महासौख्यं विमुक्तः सर्वपातकैः ।
 र्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः सर्वकिल्बिषवर्जितः ॥
 र्वपापविनिर्मुक्तो भोगं मोक्षं च विन्दति ।

मुक्तकोणः ॥

वत्समथ वक्ष्यामः प्रासादं सुरपूजितम् ॥
 सुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ।
 त्रिभिर्भागैर्भवेद् गर्भो भित्तिः कार्या द्विभागिकी ॥
 त्रिपदं कुर्यात् प्रत्यङ्गात् सार्धभागिकात् ।
 पदं कर्णमस्याहुर्विदिक्षु चतसृष्वपि ॥
 गार्धं क्षोभणा क्षेपात् तदर्धार्धं जलान्तरम् ।
 त्रिपदः स्यात् पदार्धेन पदमानस्य बाह्यतः ॥
 पदे निर्गतं चास्य शुकनासं नि(वे)शयेत् ।
 तुविस्तारपादेन कर्तव्या द्वारविस्तृतिः ॥

निर्मापयन् नरः ' इति श्रुत्वा ।

द्वारोच्छ्राय(स्तु)विस्तारात् कर्तव्यो द्विगुणो बुधैः ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमः श्रीवत्सस्य यथोदितम् ॥
 पीठं प्रासादपादेन खुरकश्च पदार्धकः ।
 विस्ताराद् द्विगुणं (चार्ध?) कर्तव्यं कुम्भकादितः ॥
 अंशैर्द्वादशभिस्तेषु कुर्याच्छिखरमायतम् ।
 अष्टभागं तुलोच्छ्रायं वेदी सार्धद्विभागिकी ॥
 कुम्भकं पदिकं कुर्यात् पादोनांशं मसुरकम् ।
 (पादोनं पादेन स्यात्?) मेखलान्तरपत्रकम् ॥
 चतुर्भागोच्छ्रिता जङ्घा भागार्धं हीरकं भवेत् ।
 मेखलान्तरपत्रं तु भागेनैकेन कारयेत् ॥
 षड्भागविस्तृतं स्कन्धं भाजयेद् दशभिः पदैः ।
 यथा मूले तथा स्कन्धेऽप्यङ्गप्रत्यङ्गकल्पना ॥
 स्कन्धपार्श्वे तु या रेखा व्यक्ताश्च स्कन्धबाह्यतः ।
 भजेत् ता दशभिर्भागै(रूढ?)मेवं विभाजयेत् ॥
 (ऊर्ध्वार्धः प्रतिभागस्तत्रास्यात्?) पत्रसंहतिः ।
 तदाकृतिं बाह्यरेखां गात्रे गात्रे प्रकल्पयेत् ॥
 अनुमात्रगुणं सूत्रं त्रिभागेन समन्वितम् ।
 भ्रमयेत्(कोणरेखा स्यात् प्रत्यङ्गस्तत्रपञ्चकान्?) ।
 षड्गुणेन तु सूत्रेण रथरेखां समालिखेत् ।
 अत्र स्युर्भूमयः सप्त प्रथमांशद्वयोच्छ्रिता ॥
 द्वितीया पदपादार्धहीना भूमिस्ततो भवेत् ।
 पादद्वयं भागहीनं तृतीयायां भवेद् भुवि ॥
 सार्धभागविहीनं च चतुर्थी स्यात् पदद्वयम् ।
 पञ्चमा सार्धभागेन पदं स्यात् स्कन्धशीर्षकम् ॥
 एवं परस्परं भागं पादार्धेन(जिता?) भुवः ।
 त्रिभागीकृत्य शिखरं तत्रैकं भागमुत्सृजेत् ॥
 शुकनासोच्छ्रितः शेषं सिंहेनाधिष्ठिता भवेत् ।
 पादोनभागं ग्रीवाण्डं सपादं षडमुच्छ्रितम् ॥

रेखा + + विधाव्यं + + न्यूनाधिकमण्डकम् ।
 सपादभागमानेन कर्तव्यं चन्द्रिकाद्वयम् ॥
 पद्मपत्राकृतिं कुर्यान्मध्ये चामलसारि(काम्) ।
 द्विपदं कलशं कुर्याद् बीजपूरकवर्जितम् ॥
 श्रीवत्सं कारयेद् यस्तु प्रासादमतिमुन्दरम् ।
 कुलानां शतमुद्धृत्य स व्रजत्यमरावतीम् ॥

श्रीवत्सः ॥

13
 अथ हंसस्य वक्ष्यामः प्रासादस्येह लक्षणम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भिर्विभजेत् पदैः ॥
 भागैश्चतुर्भिर्गर्भः स्याद् भित्तिर्द्वादशभागिकी ।
 भागद्वयेन भद्राणि ततश्च परिकल्पयेत् ॥
 चतुर्भागेन निष्क्रामस्तेषां गर्भस्य शस्यते ।
 भागस्य षोडशांशेन कुर्याद् नी(र?)रान्तराणि च ॥
 पीठिका वेदिकाबन्धो जङ्घा मेखलया सह ।
 ऊर्ध्वमानं च कर्तव्यं स्वस्तिकस्य यथोदितम् ॥
 मध्ये किन्नररूपाणि पद्मपत्राणि चाप्यधः ।
 उपरि व्यालहाराश्च पीठमेवं विभूषयेत् ॥
 त्रिभौमं पञ्चभौमं वा कुर्यादेनं विचक्षणः ।
 नागरं द्रावि(डे?)श्चेति कर्णे कर्णे निवेशयेत् ॥
 भूमिकाभाञ्जि कूटानि कुर्यादेकान्तराणि च ।
 रथिके रथिका(?) कुर्याद् (विन्य?)नागरकर्मणा ॥
 विस्तारार्थेन वेदी स्याद् ग्रीवा चास्य पदार्थिका ।
 अण्डकं पदिकं कार्यं कङ्कतीफलसन्निभम् ॥
 + चण्डिका(चार्धेन?)कलशः स्यात् पदोच्छ्रितः ।
 यथा विराजते हंसो(हंसोमाशिरासि?)स्थितः ॥
 प्रासादोऽपि तथा हंसः पुरमध्ये विराजते ।
 हंसारूढमेनं प्रासादं कारयेद् यो(भरोत्तमा?) ॥

तावत् स्वर्गे वसेच्छ्रीमान् यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

हंसः ॥

^{१४}रुचकाख्यमथ ब्रूमः प्रासादं पुरभूषणम् ॥

आदौ समस्तवस्तूनां कल्पितं पद्मजन्मना ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भिर्भाजिते पदैः ॥

भागमेकं भवेद् भित्तिस्तस्य गर्भः पदद्वयम् ।

वेदीबन्धं तथा जङ्घां मेखलामूर्ध्वमेखलाम् ॥

मानमूर्ध्वमधश्चास्य श्रीवत्सस्येव कारयेत् ।

कोणेषु स्तम्भकाः कार्याः (हाइ हीइसार्षः?) समन्विता ॥

मध्ये तु रथिका कार्या चारकर्मविभूषिता ।

चतुर्भौममिदं कार्यं (स्तवैवसटः?) कर्मणा ॥

युक्तं मध्ये तु रथिका प्रतिभूमि विधीयते ।

रुचकः कारितो येन प्रासादः शुभवास्तुनि ॥

कुलानां तारितं तेन शतमात्मा तथोद्धृतः ।

रुचकः ॥

^{१५}वर्धमानमथ ब्रूमो धर्मारोग्ययशस्करम् ॥

तस्याष्टगुणमैश्वर्यं भवेद् यः कारयेद् यदि ।

चतुरश्रं समं क्षेत्रं भाजयेद् दशभिः पदैः ॥

ततो भागचतुष्केन कर्तव्यो मध्यमो रथः ।

एकैकेन विभागेन द्वौ रथौ वामदक्षिणौ ॥

(कर्णास्तु पदा कार्या वर्जं चारिधर्माभिः?) ।

भद्रस्य निर्गमं तत्र भागेनैकेन कारयेत् ॥

भागस्यार्धेन पार्श्वस्थरथकानां विनिर्गतम् ।

विस्तारार्धेन गर्भः स्याद् यच्छेषं तेन भित्तयः ॥

ऊर्ध्वमानं भवेदस्य स्वस्तिकस्य यथोदितम् ।

वर्धमानोऽयमाख्यातो यशोलक्ष्मीविवर्धनः ॥

वर्धमानः ॥

16

गरुडस्याधुना गूमः प्रासादस्येह लक्षणम् ।
 प्रासादः सर्वदैवायं गरुडध्वजवल्लभः ॥
 द्वाविंशतिपदं क्षेत्रं (भक्ताल्या समायतम् ?) ।
 पूर्वापरेण दशभिर्भागैर्भूयो विभाजितम् ॥
 कुर्वीत मध्ये प्रासादं तस्मिन् शतपदं बुधः ।
 द्विपदं भित्तिविस्तरं कर्णाश्चापि द्विभागिकान् ॥
 उत्सृष्टमूलप्रासादमुभयोरपि पक्षयोः ।
 अग्रतः पृष्ठतश्चापि द्वौ द्वौ भागौ परित्यजेत् ॥
 शेषेण षट्पदौ + + सहस्रायामविस्तृती (?) ।
 गर्भः षोडशभिर्भागैर्भित्तिः स्यात् पदमेतयोः ॥
 श्रीवत्सहंसरुचकवर्धमानेषु कोऽपि यः ।
 रोचते गरुडं कुर्यात् तमेकं स्वेच्छया बुधः ॥
 तस्य पक्षौ विधातव्यौ निर्गतौ वामदक्षिणम् ।
 एवमेते त्रयो गर्भा गरुडे परिकीर्तिताः ॥

गरुडः ॥

17

प्रासादस्य गजस्याथ लक्षणं सम्प्रचक्ष्महे ।
 चतुःषष्टिपदं क्षेत्रं विधाय विभजेद् गजम् ॥
 ततः सीमार्धसूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ।
 गर्भं कुर्यात् तदर्धेन + + रेखाकृतिं त + ॥
 ऊर्ध्वप्रमाणमधुना गजस्य स्पष्टमुच्यते ।
 स्तम्भाश्चतुष्पदोच्छ्रायाः कार्याः कोणचतुष्टये ॥
 जङ्घेयमस्य निर्दिष्टा (खलुस्तम्भान्तरं?) भवेत् ।
 पट्टिकान्तरपत्राभ्यां समभागेन मेखला ॥
 अग्रतः शूरसेनं स्यात् पृष्ठतस्तु गजाकृतिः ।

.8

गजः ॥

प्रासादस्याधुना लक्ष्म सिंहसंज्ञस्य कथ्यते ॥

वतुरश्च समं क्षेत्रं विभजेन्नन्दने यथा ।

गर्भो भागैश्चतुर्भिः स्यात् क(श्च?न्द)भिश्चिह्नु भाभिर्भी ॥

भागेनान्धारिका कार्यो वाञ्छाभिसिञ्च भागिकी ।

भद्रं भागैश्चतुर्भिः स्याद् भागेनैकेन निर्मेतम् ॥

कर्णस्तु द्विपदः कार्यो जलमर्मसमान्वितः ।

द्विपदं पीठमुत्सेधात् सिंहरूपैरधिष्ठितम् ॥

खुरकं च पदार्थेन कुर्यात् पीठस्य मध्यतः ।

कुर्यादूर्ध्व + विस्ताराद् द्विगुणं कलयाधिकम् ॥

द्विपदं वेदिकाधन्धं जङ्घा चास्य चतुष्पदम् ।

मेखलान्तरपत्रं च विदध्याद् भागिकोदयम् ॥

त्र्यंशानि कर्णशृङ्गाणि ग्रीवाण्डकलसैः सह ।

सिंहकर्णस्तु कर्तव्यः समुच्छ्रायाच्चतुष्पदः ॥

सिंहरूपसमाक्रान्ते प्रासादे सिंहसंज्ञिते ।

ऊर्ध्वतः कर्णशृङ्गस्य षट्पदा मूलमञ्जरी ॥

सप्तभागसमुत्सेधा लताभिः पञ्चभिर्युता ।

ग्रीवोच्छ्रायस्तु कर्तव्यः पदं पादेन वर्जितम् ॥

अण्डकं तु पदोत्सेधं रेखायां च द्विनिस्तृतम् ।

पादोनभागमुच्छ्रायश्चन्द्रिकायाः प्रकीर्तितः ॥

द्विपदं कलशं कुर्याद् बीजपूरकसंयुतम् ।

(यैदामं?) कारयेत् स स्यादजेयः पुरुषो ध्रुवम् ॥

व्यवहारे नृपकुले सङ्ग्रामे शक्रसंसदि ।

सिंहः ॥

इदानीं ^{११}पञ्चकं ब्रूमः प्रासादं पञ्चस्तभिभम् ॥

यः (केसान्?) कारयत्येनं स कामाक्ष्यं भतेऽस्त्रिंशत्

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे + + दिक्षु विदिक्षु वा ॥

न्यस्येत् पृथक् पृथक् सूत्राण्यथ वृत्तं प्रसाधयेत् ।

(दिधिसूत्रयोर्मध्ये चतुरश्रं तु रोमकम् ॥

१. 'य इमम्' इति 'यो' 'यः सिंहम्' इति 'यो' स्यात् । २. 'पुनर्दि' इति

तुल्यप्रामाण्यविन्यस्येत् स्युर्द्वात्रिंशदमीरितः (?) ।

विस्तृतान्यथ भागौ द्वौ कर्णपत्राणि षोडश ॥

पञ्चपत्रसमानानि वारिमार्गान्वितानि च ।

गर्भः स्याद् बाह्य(संमोहा?)सीमार्धं यच्छेषं तेन भित्तयः ॥

षडष्टद्वादशकरः पञ्चो ज्येष्ठादिकः क्रमात् ।

द्वात्रिंशत् षोडशाष्टौ च तस्य स्यू रथकाः क्रमात् ॥

जलान्तराणि चैतस्य श्रीवत्सस्येव कारयेत् ।

पीठकं वेदिकाबन्धं जङ्घाशेखरचन्द्रिकाः ॥

अण्डकं कलशं ग्रीवामेतस्योच्छ्रयमानतः ।

कुर्वीत स्वस्तिकस्येव स्वविस्तारानुसारतः ॥

पञ्चः ॥

अथाभिधीयते सम्यक् प्रासादो नन्दि^{२८}वर्धनः ।

नन्दयत्येष कर्तारं पुत्रदारधनादिभिः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भजेत् षोडशभिः पदैः ।

शतद्वयं विभागाः स्युः षट्पञ्चाशत् तथा(परैः?) ॥

गर्भः शतपदः कार्यो भित्तिश्च त्रिपदायता ।

कर्णप्रमाणं त्रिपदं नवबन्धसमन्वितम् ॥

भागायतं भाग(पदं?पाद)विस्तीर्णं वारिवर्त्म च ।

विभजेत् पञ्चधा कर्णं तस्य भद्रं त्रिभिः पदैः ॥

भागं भागं भवेत् कर्णे भागार्धं भद्रनिर्गमः ।

प्रत्यङ्गं द्विपदं कुर्याद् वारिमार्गेण संयुतम् ॥

निर्ग(मा?मः) सार्धभागेन पार्श्वयोरुभयोरपि ।

ज्ञात्वाष्टपञ्चविंशत्या मत्स्या भागनिर्गमम् ॥

भद्रं तदग्रतः कुर्याद् विस्तारेण चतुष्पदम् ।
भागार्धनिर्गमं सम्यग् (दिक्षु) सर्वास्वयं विधिः ॥

कर्णस्यार्धे नयेद् गर्भाद् वृत्तं तत् पूर्वमालिखेत् ।
अनुसारेण वितरेदङ्गप्रत्यङ्गनिर्गमम् ॥

सार्धभागं गजाधारं साब्जपत्रं समेखलम् ।
कुर्यात् पदं पादहीनं जङ्घाकुम्भसमुच्छ्रितम् ॥

भागपादेन कणकं पादोनान्तरपत्रकम्
तदर्थं ग्रासहारं च भागार्धं खुरकं तथा ॥

खुरकेण समं प्रोक्ता पीठस्थैषा समुच्छ्रितिः ।
विस्ताराद् द्विगुणश्चायं (स्यादूर्ध्वकल्पयाधकः?) ॥

तुलोदयो विधातव्यस्त्रयोदशभिरंशकैः ।
विंशत्यंशं तु शिखरं + + + + चतुष्पदम् ॥

पादोनभागद्वितयं कुम्भकं तेषु कारयेत् ।
भागेनैकेन कलशमर्धेनान्तरपत्रकम् ॥

पादहीनपदं कार्या मेखलास्य सुशोभना ।
जङ्घा षड्भागिकोच्छ्राया भागार्धं ग्रासपट्टिका ॥

हीरकं चैकभागेन कर्णस्थं परिकीर्तितम् ।
मेखलान्तरपत्रं च सार्धभागसमुन्नतम् ॥

जङ्घामध्ये तु कर्तव्या रथकारथकास्तथा (?) ।
वृत्तस्तम्भैः समकरैर्ग्रासैर्मुक्तावरालकैः ॥

जङ्घा तु संवृता कार्या मलुच्छाद्यैर्विभूषिता ।
जलान्तरेषु रूपाणि कुर्यात् सङ्घाटकैः शुभैः ॥

कुर्यात् तुलोदयस्योर्ध्वमिमि(?)भूमिभिरष्टभिः ।
स्कन्धाष्टांशोऽस्य दूराद्या + + + सपदत्रयम् ॥

द्वितीया त्रिपदा प्रोक्ता तृतीया षड्वर्जिता
सार्धमंशा चतुर्थी च पादोना पञ्चमी ततः ॥

षष्ठी तु द्विपदा कार्या पादोना सप्तमी ततः ।
 अष्टमी तु (कृ?क्षि)तिः कार्या सार्धभागेन संपिता ॥
 एकैकस्याः पदार्धेन प्रक्षेपः स्यात् परस्परम् ।
 कोणे कूटानि कुर्वीत प्रत्यङ्गे ति(का?ल)कानि च ॥
 भद्रे कुर्वीत रथिका विविधाः कर्मसङ्कुलाः ।
 रथस्य पार्श्वयोर्लेखाः कर्तव्याश्चोभयोरपि ॥
 वेदिकास्य विधातव्या भागमेकं समुन्नता ।
 ग्रीवा तावद् भागमेकमण्डकं द्विपदोदयम् ॥
 कुर्यात् सामलसारि च चन्द्रिकां सार्धभागिकाम् ।
 कलशस्त्रिपदः कार्यो बीजपूरं बहिस्ततः ॥
 पुरतः शूरसेनं स्यान्मध्ये रूपसमाकुलम् ।
 मिश्रकस्य विमानस्य सदृशं कारयेदमुम् ॥
 भूषणं भवनस्यास्य प्रासादं नन्दिवर्धनम् ।
 प्रासादविंशतिरियं परिकीर्तितेह
 मेर्वादिका सकलनाकसदामभीष्टा ।
 तत्त्वेन वेत्ति य इमां स समग्रशिल्पि-
 वर्गाग्रणीर्बहुमतश्च भवेन्नृपाणाम् ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारापरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

मेर्वादिविंशिका नाम (षट्?सप्त)पञ्चाशोऽध्यायः ॥

—:०:—

अथ प्रासादस्तवनं नाम अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ।

—:०:—

प्रासादानां चतुःषष्टिरिदानीमभिधीयते ।
 या पूर्वं ब्रह्मणा दत्ता (प्रा?प्र)सादा विश्वकर्मणे ॥ १ ॥
 मर्मवेधस्थिता वास्तुदेवाः पूज्या यथोचितम् ।
 पूज्यता च स्मृता तेषां प्रासादे मण्डपे ध्वजे ॥ २ ॥

आसने वाहने तद्वत् सर्वोपकरणेष्वपि ।

प्रासादे 'थादृश' (इह्णन्दस्तादृङ्मन्दपीठयोः?) ॥ ३ ॥

तथा वास्तुविरुद्धं स्यात् प्रासादाङ्गे हिते(?) विदुः ।

अष्टावष्टौ स्मृतास्तेषु त्रिदशानां पृथक् पृथक् ॥ ४ ॥

शम्भो(हरे)र्विरिञ्चस्य ग्रहाणाम(धिपस्य च) ।

चण्डिकाया गणेशस्य श्रियाः सर्वदिवौकसाम् ॥ ५ ॥

विमानः सर्वतोभद्रो गजपृष्ठोऽथ पद्मकः ।

वृषभो मुक्तकोणश्च नलिनो द्वाविडस्तथा ॥ ६ ॥

इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टाः प्रासादास्त्रिपुरद्रुहः ।

गरुडो वर्धमानश्च शङ्खावर्तोऽथ पुष्पकः ॥ ७ ॥

गृह(रः)राट् स्वस्तिकश्चैव रुचकः पुण्ड्रवर्धनः ।

कार्या जनार्दनस्याष्टौ प्रासादाः पुरभूषणाः ॥ ८ ॥

मेरुमन्दरकैलासा हंसाख्यो भद्र एव च ।

उत्तुङ्गो मिश्रकश्चैव तथा मालाधरोऽष्टमः ॥ ९ ॥

इत्यष्टौ ब्रह्मणः प्रोक्ताः प्रासादाः पुरमध्यगाः ।

गवयश्चित्रकूटश्च किरणः सर्वसुन्दरः ॥ १० ॥

श्रीवत्सः पद्मनाभश्च वैराजो वृत्त एव च ।

एते कार्या रवेरष्टौ प्रासादाः शुभलक्षणाः ॥ ११ ॥

(नैऋत्यवर्तश्चैव चलभश्चर्णदिख्यः?) सिंह एव च ।

विचित्रो योगपीठश्च घण्टानादपत्ताकिनौ ॥ १२ ॥

अष्टावेते विधातव्याश्चण्डिकायाः सुरालयाः ।

(गुहारसलोकश्च?) वेणुभद्रोऽथ कुञ्जरः ॥ १३ ॥

तथाच हर्षविजयाबुदकुम्भोऽथ मोदकः ।

एतान् विनायकस्याष्टौ प्रासादान् कारयेच्छुभान् ॥ १४ ॥

महापद्म(हर्म्यननल)मुज्जयन्तस्तथा परः ।

गन्धमादनसं(ज्ञं)च(ज्ञश्च)शतशृङ्गा(नवष्ककौ?)नवद्यकौ ॥ १५ ॥

१. 'नैऋत्यवर्तो वलम्यश्च सुपर्णः' इति पठनीयं भाति । २. 'गुहारश्च शाला-
क' इति पाठ्यं भाति । ३. 'स्तथा हर्म्य' इति पाठ्यं स्यात् ।

सु(मः)विभ्रान्तो (मनो)हारीत्यष्टौ लक्ष्म्याः प्रकीर्तिताः ।
 वृत्तो वृत्तायतश्चैत्यः किङ्किणी लयनाभिधः ॥ १६ ॥
 पट्टिशो विभवाख्यश्च तत(श्चाऽस्ता)राग(णाऽणोऽष्टमः ।
 कुर्वीत सर्वदेवानां प्रासादान् वास्तुशास्त्रवित् ॥ १७ ॥
 (प्रासादस्तवनं नाम?)

—:०:—

विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

—:०:—

विमानमथ वक्ष्यामः प्रासादं शम्भुवल्लभम् ।
 स्वर्गपातालमर्त्यानां त्रयाणामपि भूषणम् ॥ १ ॥
 सर्वेषां गृहवास्तूनां प्रासादानां च सर्वतः ।
 प्रासादो मूलभूतोऽयं तथाच परिकर्मणाम् ॥ २ ॥
 एकाशीतिप(देऽदं) वास्तु विमाने पञ्चभूमिकं ।
 कर्णान्तयोः शतपदं प्रासादेष्वपरेषु तु ॥ ३ ॥
 ब्रह्मासृजत् पञ्चभौमविमानानि पुरा रवेः ।
 मूलकर्णानुगैर्भद्रैर्द्विगुणोच्छ्रायवन्ति च ॥ ४ ॥
 शेषभद्रस्य निष्कासो भद्रदेवचतुष्टयम्(?) ।
 आकाशदेवताधार(चत्र्यथा?) विदिक्षु च ॥ ५ ॥
 दशधा कृतविस्तारो विमाने सम्प्रकीर्तितः ।
 पञ्चभा(ग्यऽग)प्रमाणश्च गर्भे भित्तिस्तदर्धतः ॥ ६ ॥
 प्राग्ग्रीवं भित्तिविस्तारं गर्भायामत्तथाग्रतः (?) ।
 ततः प्राग्ग्रीवविस्तारः क्षोभणीयः कगाङ्गुलैः ॥ ७ ॥

१. इहाध्यायस्य समाप्तिरिति भवति । अतः “ इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेव-
 विराचिते समराङ्गणसूत्रधारपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे प्रासादस्तवन नामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ”
 इति लेखनीयम् ॥

भागिको रथविस्तारः कर्णिका चार्धभागिकी ।

भागपञ्चकविस्तारं भद्रं यत् (तत्) प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥

(भूणस्तोवहेस्तस्य?) निर्गमो भागिकः स्मृतः ।

भागार्धेन विधातव्यः क्षोभणो जलवर्त्मनः ॥ ९ ॥

कर्णिकां जलमार्गं (च) समसूत्रेण मापयेत् ।

अथोच्यते भूमिकानां स्तम्भानां चेह लक्षणम् ॥ १० ॥

विस्ताराद् द्विगुणः स्कन्धः सर्वस्मिन् बुद्धनागरे ।

++++ पञ्चभागा स्याज्जङ्घास्वसमुच्छ्रितः ॥ ११ ॥

तिलकानां तथोच्छ्रायो विधातव्यो द्विभागिकः ।

तिलकस्य शिरोघण्टां चैकमूत्रेण मापयेत् ॥ १२ ॥

जङ्घामानत्रिभागेन खुरपिण्डीं प्रकल्पयेत् ।

खुरकं वेदिबन्धं च समसूत्रेण मापयेत् ॥ १३ ॥

जङ्घामानत्रिभागेन खुरपिण्डीं प्रकल्पयेत् ।

खुरकं वेदिबन्धं च समसूत्रेण सूत्रयेत् ॥ १४ ॥

द्वितीयभूमिकोत्सेधं सिंहकर्णं विभूषयेत् ।

मस्तके घण्टया युक्ता चतुर्भागोच्छ्रिता च सा ॥ १५ ॥

ततस्तृतीयभूत्सेधः पदतुल्यांशवर्जितः ।

चतुर्थी भूमिका कार्या सार्धभागत्रयोच्छ्रिता ॥ १६ ॥

मञ्जरीस्तम्भयोर्मध्ये सवातायनमेखला ।

द्वितीया भूमिका या सा सिंहकर्णैरलङ्कृता ॥ १७ ॥

तस्या द्वारं विधातव्यं कपाटद्वयसंयुतम् ।

(स्यावर्द्धात्?) पाटितं द्वारं तृतीयायां सदा भुवि ॥ १८ ॥

पा(दे?दो)नद्विपदोत्सेधा तदूर्ध्वं वेदिमेखला ।

कैरवाणां दलैर्युक्ता कर्तव्या दृष्टिहारिभिः ॥ १९ ॥

वेदिका पञ्चविस्तारा कार्या भागसमुच्छ्रिता ।

ग्रीवार्धभागिकोत्सेधा घण्टैकं भागमुच्छ्रिता ॥ २० ॥

पञ्चभाग + विस्तारा घण्टाकोटिविधीयते ।

(कुमान्दं^१) वेदिवन्धं च घण्टाग्रं मस्तकोदयम् ॥ २१ ॥

मापयेत् समरूत्रेण समन्ताद् भूमिपञ्चके ।

व्यासार्धहस्तसङ्ख्यानि(प्रवेशा^१) प्रथमं क्षितेः ॥ २२ ॥

अङ्गुलानि तदा त्रयो द्वितीयायाः प्रकीर्तिताः(?) ।

संयोगादनयोः स्यात् तृतीयायास्तमादिशेत् ॥ २३ ॥

तदध्यर्धश्चतुर्थ्यास्तु पञ्चम्याः शेष ईरितः ।

स्वमूलविस्तृतेर्भागस्तृतीयो वेदिकोर्ध्वतः ॥ २४ ॥

लतया विस्तृतिर्भद्रे युक्ताया जालवर्त्मनः(?) ।

(वेदिदोग्रविधातव्यो^१) सार्धसविस्तृतौ ॥ २५ ॥

मञ्जर्याः स्तम्भसीमानां क्षोभयेत् पुष्टिमानतः(?) ।

(वेद्यां भागे^१) शालायां निष्क्रामो मूलकोणतः ॥ २६ ॥

स्थानैर्विचित्ररूपैः स्यात् सिंहकर्णैश्च भूषितः ।

पञ्चव्यासेन सूत्रेण रेखामस्य समालिखेत् ॥ २७ ॥

एतद् विमानं ललितं देवदेवस्य कारयेत् ।

विमानम् ॥

संस्थानं सर्वतोभद्रस्येदानीमभिधीयते ॥ २८ ॥

जठरं बाह्यसीमा च तथा भिन्न्यन्धकारिका ।

जङ्घोत्सेधश्च कर्णौ च यथा मेरोस्तथा भवेत् ॥ २९ ॥

तथैव भद्रविस्तारः षड्भागेन समन्ततः ।

रथिके च द्विभागे स्तः कोणसंज्ञे च पार्श्वयोः ॥ ३० ॥

मुष्टिप्रमा(णं^१) विस्तारं कर्तव्यमुदकान्तरम् ।

विस्ताराद् द्विगुणः स्कन्धस्योच्छ्रायो भागविंशतिः(?) ॥ ३१ ॥

पञ्चभागसमुत्सेधा जङ्घा कार्या सदा बुधैः ।

मेखलान्तरपत्रं च सार्धभागसमुच्छ्रितम् ॥ ३२ ॥

१. 'मञ्जर्याः स्तम्भसीमानं क्षोभयेन्मुष्टिमानतः' इति पाठः स्यात् ।

विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । ११६

शृङ्गं भागत्रयोत्सेधं सग्रीवामलसारकम् ।

मूलशृङ्गस्य गर्भेण न्यस्येदुपरिभूमिकाम् ॥ ३३ ॥

द्वितीयभूमिविस्तारं दशधा प्रविभाजयेत् ।

द्वौ भागौ शृङ्गविस्तारौ विधेयः पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ३४ ॥

सग्रीवामलसारस्य तैः शृङ्गस्योदयस्थितिः ।

तस्य शृङ्गस्य गर्भेण कर्तव्योपरिभूमिका ॥ ३५ ॥

तस्या भूमेस्तु विस्तारं दशधा भाजयेत् पुनः ।

यः शेषः शिखरायामो (तद्वित्तिनंतः) विनिर्दिशेत् ॥ ३६ ॥

विभजेद् वर्धमानं वा रुचकं वास्तु शोभनम् ।

कर्णान्तरे भद्रमध्ये बल्लभाऽलभीं तत्र कारयेत् ॥ ३७ ॥

भूमिकाशिखरेणोर्ध्वं नवभूमिं विभेदयेत् ।

वेदिकामध्यसूत्रस्य (कर्णतोर्ध्वं भुवस्तथा) ॥ ३८ ॥

भूमिकोर्ध्वं भुवश्चैव विस्तारं दशधा भवे(ज)ेत् ।

मूलसीमानुसारेण स्याच्छेदावधि संहतिः ॥ ३९ ॥

ग्रीवा मूलार्धभागे + + + नामलसारकम् ।

चन्द्रिका चार्धभागेन + + + कलशो भवेत् ॥ ४० ॥

सर्वतोभद्रः ॥

गजस्य संस्थानमथ प्रासादस्याभिधीयते ।

चतुःषष्टिपदं वास्तु प्रासादस्य विभाजयेत् ॥ ४१ ॥

ततः सीमार्धसूत्रेण पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ।

पञ्चभागमिता जङ्घा मेखला सार्धभागिकी ॥ ४२ ॥

अग्रतः सूरसेनः स्यात् पृष्ठतः कुञ्जराकृतिः ।

सीमानमष्टधा कृत्वा विभजेन्नन्दने यथा ॥ ४३ ॥

द्वौ द्वौ च कर्णयोर्भागौ भद्रेषु चतुरो विदुः ।

विस्तारार्धेन जङ्घा स्याद् रथिकायाः पृथक् पृथक् ॥ ४४ ॥

भागत्रयोच्छ्रितं शृङ्गं कर्णदेशे विधीयते ।

सप्तभागसमुत्सेधा बलभी मध्यसंश्रिता ॥ ४५ ॥

समन्ताद् भद्रसंस्थाना रेखाग्रीवाण्डकादिभिः ।
 सिंहकर्णैश्च भद्रेषु प्रासादो गर्भ उच्यते(?) ॥ ४६ ॥
 (वित्तसाध्यविहीनेन?) कर्तव्यः स्वस्तिके यथा ।
 (सर्ववत् तस्य स्युः पत्रनिभाः?) ॥ ४७ ॥
 विस्तारोऽथ जङ्घा च लतिनि स्वस्तिके यथा ।
 उदकान्तर + + + श्रीवत्से नन्दने यथा ॥ ४८ ॥

*पद्मः ॥

ब्रूमोऽथ वृषभं स स्यात् पूर्वोक्तै रूपकर्मभिः ।
 चतुर्भद्रश्चतुर्द्वारो विमानो (सत्रिसाकृति?) ॥ ४९ ॥
 (तेवृद्धिस्तत्प्रमाणाश्च?) सीमाशिखरकोदयैः ।
 कर्णवेदकपोताली जङ्घाग्रे मस्तकेन च(?) ॥ ५० ॥
 सार्धद्विभागविस्तारौर(थ)कैर्वाग्मदक्षिणौ ।
 कार्यौ भद्रं चतुर्भागं भागार्धं सलिलान्तरम् ॥ ५१ ॥
 स्तम्भद्वयं भवेत् तस्य सर्वभूम्यन्तरेषु च ।
 एकः स्तम्भो विमाने स्याद् द्वौ स्तम्भौ वृषभे पुनः ॥ ५२ ॥
 एष भेदः समाख्यातो विमानस्य वृषस्य च ।

वृषभः ॥

मुक्तकोणमथ ब्रूमस्तं भागैरष्टभिर्भजेत् ॥ ५३ ॥
 मूलकर्णावुभौ भागौ भवतो वामदक्षिणौ ।
 मध्यशृङ्गं चतुर्भागं प्रमाणं जठरस्य च ॥ ५४ ॥
 कर्णशृङ्गान्तयोर्मध्ये कुर्वीत सलिलान्तरम् ।
 रथकौ पार्श्वयोः पूर्णौ भद्रदेशे जलान्तरम् ॥ ५५ ॥
 विस्तारोत्सेधजङ्घाश्च सग्रीवामलसारकः ।
 लतिनामिव कर्तव्याः प्रमाणेन समन्ततः ॥ ५६ ॥

मुक्तकोणः ॥

ब्रूमोऽथ नलिनीं तस्याः प्रमाणं लक्षणान्वितम् ।
 तस्यां तु (मार्गस्यश्च?) देवगर्भः सुरालयः ॥ ५७ ॥

● पद्मप्रासादलक्षणस्यारम्भो गजवृद्धप्रासादलक्षणस्यावसानं च नोपलभ्यते ।

भित्तिविस्तृतिरायामो मुक्तकोणे यथा तथा ।

मध्यदेशे तु यच्छृङ्गं + + कर्णान्तरे च यत् ॥ ५८ ॥

मुक्तकोणे यथा तच्च भेदः कर्मविभेदनात् ।

चतुरश्रे स्मृतो मध्ये कर्णशृङ्गे विचक्षणैः ॥ ५९ ॥

नलिनः ॥

ब्रूमोऽथ मणिकं तस्य शालालि(ङ्गः)समुद्रता ।

अलिन्दकार्धसीमायां सर्वतः स्याच्चतुष्किका ॥ ६० ॥

श्रेयःपुष्टिसुखार्थोऽयं मणिकोऽत्र विमानवत् ।

दशधा क्षेत्रसीम्नः स्याद् विभागः सर्वतोदिशम् ॥ ६१ ॥

रथ + कर्णिकार्धं च जलवत्सीथं भद्रकम् ।

मूलगर्भस्तथोत्सेधो घण्टा स्तम्भान्तविस्तृता ॥ ६२ ॥

भूमिजङ्घाममुत्सेधः कपोताद् द्वारनिर्गमः ।

सिंहकर्णा विमानानि स्तम्भचित्रादिकास्तथा ॥ ६३ ॥

तोरणान्यथ माल्यानि तस्यालङ्करणानि च ।

नीलोत्पलदलाकारा मञ्जर्यः सर्वशोभनाः ॥ ६४ ॥

विमानमपरं ह्येतद् योनिरेकस्तयोर्द्वयोः ।

केवलं भद्रभेदेन मणिको द्वाविडोऽप्ययम् ॥ ६५ ॥

मणिकः ॥

प्रासादमथ वक्ष्यामो गरुडं सर्वसुन्दरम् ।

दशधा क्षेत्रविस्तारं तस्य पूर्वं विभाजयेत् ॥ ६६ ॥

द्वौ भागौ रथिकाः कार्या मूलकर्णाद् विनिस्तृताः ।

भद्रं षड्(भाग)विस्तारं पक्षवंशादिभेदितम् ॥ ६७ ॥

अलिन्दनिर्गमः कार्यः सीमार्धेन चतुर्दिशम् ।

मूलसीमा तु कर्तव्या सलिलान्तरवर्जिता ॥ ६८ ॥

स्यान्मूलसीमविस्तारात् स्कन्धः स्याद् द्विगुणोच्छ्रितिः ।

प्रासादस्य समुच्छ्रायात् त्रिभागेन समेखलाम् ॥ ६९ ॥

जङ्गामन्तरपत्रेण (कुं + युक्तं कुर्वस्तसा?) ।

(जी?ही)रकं वेदिवन्यं च भागत्रयसमुच्छ्रितम् ॥ ७० ॥

अलि(म्बा?न्दा)नां समुत्सेधं (शे?शि)खरार्धेन कारयेत् ।

षड्भागं स्कन्धविस्तारं विदधीत विचक्षणः ॥ ७१ ॥

ग्रीवार्धभाग(मुत्से)धाद् भागमामलसारकम् ।

कुमुदं चार्धभागेन कुम्भः स्यादेकभागिकः ॥ ७२ ॥

गरुडः ॥

अथोच्यते वर्धमानो दशधा तं विभाजयेत् ।

पादोनांशद्वयं कुर्यात् पार्श्वयोः कर्णविस्तृतिम् ॥ ७३ ॥

सपादपदविस्तारौ रथकौ वामदक्षिणौ ।

चतुर्भागोन्मितं भद्रं विस्तारेण प्रकीर्तितम् ॥ ७४ ॥

विस्ता(रो?राद्) द्विगुणोच्छ्रायं स्कन्धं यावत् प्रकल्पयेत् ।

खुरकस्याथ जङ्गाया मञ्जरीस्कन्धयोरपि ॥ ७५ ॥

ग्रीवामलसारकादेः प्रमाणं गरुडे यथा ।

वर्धमानः ॥

द्वाविंशतिकरायामः शङ्खावर्तोऽथ कथ्यते ॥ ७६ ॥

मूलसीमावृत्तनाहस्तस्य स्यात् पद्मके यथा ।

भित्तिगर्भस्य विस्तारः (पादेनार्धनवक्रमात्?) ॥ ७७ ॥

अलिन्दमग्रतः कुर्यात् सिंहकर्णविभूषितम् ।

उत्सेधत्र्यंशतो जङ्गा (वेद्यं?) तत्र विभागतः ॥ ७८ ॥

आस्कन्धं वेदिकाबन्धाद् विस्तृतेर्द्विगुणोच्छ्रितः ।

मेखलान्तरपत्रं च जङ्गामध्ये विधीयते ॥ ७९ ॥

भ्रमयेत् कर्णसूत्रेण बहिर्वृत्तं समन्ततः ।

कर्णदिक्पालयोर्मध्यं वृत्तसूत्रेण वर्त(यन्?येत्) ॥ ८० ॥

अवशिष्टं त(ल)च्छन्दं स्वस्तिकस्येवं कारयेत् ।

ग्रीवा(म)मलसारं च कलशं वारिनिर्गमम् ॥ ८१ ॥

कुर्वीत स्वस्तिकस्येव विस्तारोत्सेधमानतः ।

(शू?मू)लसीमानुसारेण छेदे संवरणं भवेत् ॥ ८२ ॥

तद्वृषमेव लतिनं वर्तयेद् बलनाकृतिम् ।

शङ्खावर्तः ॥

ब्रूमोऽथ पुष्पकं स स्याद् विमानसदृशाकृतिः ॥ ८३ ॥

तावत्प्रमाणस्तद्वृद्धिः पञ्चभूश्चतुरश्रकः ।

(विमानेन मानयुक्तः?) यन्मञ्जर्या यच्च लक्षणम् ॥ ८४ ॥

तत् कार्यमत्र मञ्जर्या नतु कार्यं जलान्तरम् ।

पुष्पकः ॥

गृहराजमथ ब्रूमः स स्यात् कैलाससन्निभः ॥ ८५ ॥

विटङ्कनिर्गमाधारनिर्युहैः सर्वतो वृतः ।

बलभ्या भूषितो मध्ये गवाक्षद्वारसंयुतः ॥ ८६ ॥

कपोतस्तम्भपर्यन्तः शा(ला?ल)भञ्जीविराजितः ।

वेदिकाखण्डजालाद्यं क + + परितो भवेत् ॥ ८७ ॥

(कुर्वीत्य?) मल्लकच्छाद्यैः सिंहकर्णैश्च भूषितः ।

अलिन्दभेदतः प्राहु(र्गृह)राजमि(तं?मं) बुधाः ॥ ८८ ॥

कैलासस्येव संस्थानं स्यादस्योर्ध्वमधोऽपिच ।

गृहराजः ॥

ब्रूमोऽथ स्वस्तिकं तस्य पूर्ववन्मानलक्षणम् ॥ ८९ ॥

तेनैव लतिनं सर्वं कुर्वीतैनं विचक्षणः ।

यथा मूले विभक्ताः स्युर्लतिनस्वस्तिकादयः ॥ ९० ॥

तथैषां स्कन्धभक्तानां मध्ये रेखां प्रकल्पयेत् ।

प्रासादः स्वस्तिको नाम स्यादेवं लक्षणान्वितः ॥ ९१ ॥

(सुधानासोदयः?) स्वस्य कर्तव्यः स + भागिकः ।

स्कन्धं यावत् समुत्सेधो विस्ताराद् द्विगुणो भवेत् ॥ ९२ ॥

(त्यट्?)द्वागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला चा + भागिकी ।
 मध्यशाला द्विभागाश्च मूलसूत्रविभागतः ॥ ९३ ॥
 कर्णा द्विभागिकाश्चैवं जलमार्गस्तु षोडश ।
 अष्टौ शाला भवन्त्यस्मिन् कर्णाश्चाष्टौ समन्ततः ॥ ९४ ॥
 प्राग्ग्रीवं बाह्यतः कुर्यात् (सुखभाग?) विचक्षणः ।
 कलशश्चण्डिका ग्रीवा तद्वदामलसारकः ॥ ९५ ॥
 ऊर्ध्व ऊर्ध्वप्रमाणं च यथैवाद्य(?)तथा भवेत् ।

स्वस्तिकः ॥

रुचकं ब्रूमहे तस्य विभागो दशधा भवेत् ॥ ९६ ॥
 भागद्वयमितौ कर्णौ भद्रं पङ्कभागसम्मितम् ।
 तेषां विनिर्गमं विद्या(द्विस्तामात्रा?)प्रमाणतः ॥ ९७ ॥
 कुर्यादुदकमार्गाश्च प्रासादे रुचके क्वचित् ।
 स्कन्धावशिष्टमुत्सेधो विस्ताराद् द्विगुणो भवेत् ॥ ९८ ॥
 वेदिकायास्तु विस्तारः स्कन्धे पङ्कभागिकः स्मृतः ।
 तृतीयांशेन कुर्वीत जङ्घामूर्ध्वं मुरोदयान् ॥ ९९ ॥
 जङ्घायाश्च त्रिभागेन कार्या खुरखरण्डिका ।
 मेखलान्तरपत्रं च कुर्यादध्यर्धभागिकम् ॥ १०० ॥
 सार्धत्रिगुणसूत्रेण पूर्वा कर्कटना भवेत् ।
 (चतुर्गुणं मूलसूत्रेण मध्ये कर्कटना स्मृता?) ॥ १०१ ॥
 विभज्य दशधा स्कन्धविस्तारं तैः प्रकल्पयेत् ।
 भद्रं चतुर्भिः क(र्णाशु?)र्णास्तु) कुर्याद् भागैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १०२ ॥
 स्वच्छाया भूमिकाः कार्या या वा मूलार्धभागिकीः(?) ।
 भागेनामलसारं च कुमुदं चार्धभागिकम् ॥ १०३ ॥
 कुम्भं भागेन कुर्वीत प्रासादे रुचके बुधः ।
 साधारणोऽयं सर्वेषां प्रासादस्तु दिवाकसाम् ॥ १०४ ॥

रुचकः ॥

१. 'मुखभागे' इति स्यात् । २. 'द्विस्तमात्रम्' इति स्यात् । ३. 'चतुर्गुणेन सूत्रेण मध्यकर्कटना स्मृता ।' इति स्यात् ।

पुण्ड्रवर्धनकं ब्रूमः प्रासादं बल्लभं हरेः ।
 भ्रमयेन्मूलसीमास्पृष्टत्तमादौ समन्ततः ॥ १०५ ॥
 तच्छालाकर्णसंयुक्तं कर्तव्यं सर्वतोदिशम् ।
 यश्छन्दः स्वस्तिकं (ऽस्य^१स) स्याद् द्विगुणः पुण्ड्रवर्धने ॥ १०६ ॥
 जङ्घोदकान्तभद्राणामुच्छायो विस्तृतिश्च या ।
 स्वस्तिके कथिता सैव विज्ञेया पुण्ड्रवर्धने ॥ १०७ ॥
 पुण्ड्रवर्धन ।

अथाभिधीयते मेरुदर्शना तत्र भाजयेत् ।
 मीमा(नं) तस्य कुर्वीत शृङ्गं चापि (वि?)भागिकम् ॥ १०८ ॥
 शेषं+भागिकं भद्र(मायमाने?) विधीयते ।
 पदस्य षोड(शौसेनं?शांशेन) कर्तव्यमुदकान्तरम् ॥ १०९ ॥
 पदैः षोडशभिर्गर्भो विधातव्यः पदं पदम् ।
 भित्तिरन्धारिका बाह्यभित्तिश्चास्य विधीयते ॥ ११० ॥
 भागषट्कोच्छ्रिता जङ्घा मेखला चैकभागिकी ।
 शृङ्गं च त्रिपदोत्सेधं शिखरं स्याद् दशोच्छ्रितम् ॥ १११ ॥
 कर्तव्यं वास्तुशास्त्रज्ञैस्तस्यैकादशभूमिकम् ।
 अर्धपञ्चमविस्तारः स्कन्धो ग्रीवाधभागिका ॥ ११२ ॥
 उच्छ्रायेण विधातव्या भा(गि)कोत्सेधमण्डकम् ।
 भागा(धि?)कं च कुमुदं भागिका कलशोच्छ्रितिः ॥ ११३ ॥
 षड्गुणेनैव सूत्रेण रेखा तस्य प्रकीर्तिता ।
 मेरुं मेरुगिरिप्रख्यमेवं यः कारयेदिदम् ॥ ११४ ॥
 शिलाभिरिष्टकाभिर्वा स महत् पुण्यमाप्नुयात् ।
 मेरुः ॥

लक्षणं मन्दरस्याथ प्रासादस्याभिधीयते ॥ ११५ ॥
 गर्भस्यार्धेन निष्क्रान्तं भद्रं कुर्वीत मन्दरे ।
 + + + मेरुसङ्काशं विन्यस्येत् सर्वतोदिशम् ॥ ११६ ॥

बलभी मध्यदेशे तु शिखरोर्ध्वसमुदधृता ।
सर्व(मा?म)न्यत् प्रमाणं तु मेरोरिव भवेदिह ॥ ११७ ॥

मन्दरः ॥

कैलासमथ वक्ष्यामो दशधा तं विभाजयेत् ।
भद्रं षड्भागविस्तारं मध्यदेशे विनिःसृतम् ॥ ११८ ॥

क(र्ण?र्णो) द्विभागविस्ताराः सलिलान्तरवर्जिताः ।
गर्भस्यार्धेन निष्कासः कार्यो भद्रस्य सर्वतः ॥ ११९ ॥

(लतिस्याखरं?) मध्ये शिखरार्धसमोदयम् ।
भित्तिगर्भभ्रमन्तीनां जङ्गामेखलयोरपि ॥ १२० ॥

विस्तारमुदयं चास्मिन् विदध्यात् स्कन्धशृङ्गयोः ।
मेरोरिवास्मिन् प्रासादे (ववचद्र?, ग्रीवाण्डकस्य च ॥ १२१ ॥

कैलासः ॥

धूमोऽथ हंस(क?म)स्य स्याद् विभागो रुचके यथा(?) ।
जलान्तरं विशेषोऽत्र शेषं (भ?रु)चकवद् भवेत् ॥ १२२ ॥

हसः ॥

भद्रस्य लक्षणं धूमो दशधा तं विभाजयेत् ।
गर्भविस्तारमानेन स्यादस्मिन् भद्रविस्तृतिः १२३ ॥

सार्धद्विभागविस्तारौ रथकौ वामदक्षिणौ ।
गर्भार्धा(?) तुल्यमायामान् प्राग्ग्रीवं चेह(लं?)कारयेत् ॥ १२४ ॥

प्राग्ग्रीवस्य समुत्सेधं शिखरार्धेन कारयेत् ।
बलभी मध्यदेशेऽस्य सिंहकर्णसमन्विताम् ॥ १२५ ॥

(लताजलेगवाक्षाद्या?)श्चतुष्काभिश्चतुर्दिशम् ।
भद्रो भवति शेषं तु स्यादत्र रुचके यथा ॥ १२६ ॥

भद्रम् ॥

अथ तुङ्गं प्रवक्ष्यामो द्वितीयो ह्येष मन्दरः ।
भूषयेत् सिंहकर्णैस्तं लतामूर्ध्वं च कारयेत् १२७ ॥

भूमिभूमिसमुत्सेधः स्तम्भचित्रादिकं तथा ।

मेरोरिवात्र मध्ये तु मञ्जर्यः सर्वतोदिशम् ॥ १२८ ॥

तुङ्गः ॥

ब्रूमोऽथ मिश्रकं स स्यान्मानसंस्थानलक्षणैः ।

भूमो(?)वि(मानव)न्मध्ये शृङ्गं कैलासवद् भवेत् ॥ १२९ ॥

मिश्रकः ॥

(अथ मालामाकारं तु तं कृत्वा गवाक्षैरुपशोभयेत्?) । *

यत्किञ्चिन्मानमध्यं तु तदाद्यस्येव (प्र?)कल्पयेत् ॥ १३० ॥

गवयः ॥

चित्रकूटमथ ब्रूमो दशधा तं विभाजयेत् ।

प्राग्ग्रीवा निर्गता(?) तस्य गर्भमानेन कारयेत् ॥ १३१ ॥

सार्धद्वयाधोविस्तारांस्तत्कर्णान् वामदक्षिणान् ।

उत्सेधस्य विभागेन जङ्घोत्सेधं प्रकल्पयेत् ॥ १३२ ॥

जङ्घोत्सेधत्रिभागेन विन्यस्येत् खुरपिण्डिकाम् ।

कपोतान्तरपत्रं च तत्र स्यादर्धभागिकम् ॥ १३३ ॥

शिखरोत्सेधमानं यत् तत् त्रयोदशभिः पदैः ।

तत्र(भूमास्तदुत्सेधं?) कल्पयेदनुसारतः ॥ १३४ ॥

(स्तास्तम्भसो भित्तिः?) कुर्यान्मुक्ताश्च परिकर्मणा ।

कूटच्छेदेन तत्कर्म विन्यस्येत् सर्वतोदिशम् ॥ १३५ ॥

भक्तमन्तरपत्रेण तलच्छन्दं तदूर्ध्वतः ।

द्वे द्वे कूटे ततो न्यस्येद् वामदक्षिणकर्णयोः ॥ १३६ ॥

शालामध्ये तु चत्वारि (नामे?)कूटानि सर्वतः ।

भूमिकाः सिंहकर्णाश्च कपाटद्वारघटनाः ॥ १३७ ॥

शिखराणां समुत्सेधो (त?)यथैवाद्ये तथा भवेत् ।

चित्रकूटः ॥

किरणः कथ्यते स स्यात् पद्मतुल्यः प्रमाणतः ॥ १३८ ॥

* अत्र मालाधरप्रसादलक्षणस्यावसानं, गवयप्रानादलक्षणस्यारम्भश्च मातृकाया

नोपलभ्यते ।

द्वात्रिंश(दनारा?)नस्मिन् विदध्यात् षोडशायत्रा ।
 शालासु भेदः कर्णः स्याच्छेषं मालाधरे यथा ॥ १३९ ॥
 किरणः ॥

सर्वाङ्गसुन्दरं ब्रूमः कर्मभेदैरनेकधा ।
 नानाशिल्पलताधारं प्रासादैर्बहुभिर्युतम् ॥ १४० ॥
 (तलच्छन्दतुल्यन्यासविरुक्तं?) बहुलक्षणम् ।
 ना + + + + + प्रासादे सर्वसुन्दरे ॥ १४१ ॥
 तोरणैः सिंहकर्णेश्च संयुक्तं परिकर्मभिः ।
 प्रमाणमिह यत्किञ्चित् सर्वं विद्यात् तदाद्यवत् ॥ १४२ ॥
 सर्वसुन्दरः ॥

श्रीवत्समथ वक्ष्यामां दशधा तं विभाजयेत् ।
 भागत्रयेण कुर्वीत शालां तत्र विचक्षणः ॥ १४३ ॥
 सार्धभागप्रविस्तारौ रथकां वामदक्षिणां ।
 मूलकर्णा भवन्त्यत्र भागद्वितयविस्तृताः ॥ १४४ ॥
 प्रासादहस्तमात्राभिः प्रत्येकं भद्रनिर्गमः ।
 अङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वापि चतुरङ्गुलमे(व वा) ॥ १४५ ॥
 (भली?)मध्ये तु मञ्जर्यः कार्याः पद्मदलोपमाः ।
 सर्वतः परिकर्म स्याद् रथिका कर्णसंश्रया ॥ १४६ ॥
 आमलिश्चन्द्रशालाभिः स्कन्धान्तं परिपूरयेत् (?) ।
 खुरापिण्डा च जङ्घा च कुम्भाग्रं शिखरादि च ॥ १४७ ॥
 यत्किञ्चित् तत् प्रमाणेन वर्धमानसमं भवेत् ।
 नन्द्यावर्तः ॥

ब्रूमौ वलभ्यं स भवेद् गृहराजस्य सन्निभः ॥ १४८ ॥

इह श्रीवत्सः पद्मनाभः वैराजः वृत्तकः नन्द्यावर्तः वलभ्यः सुपर्णः इत्येतेषां प्रासादानां क्रमेण लक्षणेषु वक्तव्येषु तानि आदर्शग्रन्थे तथा संकूलतया लिखितानि, यथा मिथो विवेक्तुं न शक्येरन् । अतो यथास्थित एवादर्शपाठो मुद्रणीय आपतितः । किन्तु पद्मनाभ-वैराज-वृत्तकानां लक्षणं परं क्रमिकं दृश्यते ।

आ(वःय)तश्चतुरश्रो वा प्रमाणेनैकतः समः ।
चतुरश्रस्तु विस्तारादुद(योःये) द्विगुणो भवेत् ॥ १४९ ॥
(आध्यतन्त्रस्य पुनः सार्धः स्कन्धोच्छ्रायो विधीयते?) ।
(विस्तारं दशधा समक्ष + तुरश्र समन्तः?) ॥ १५० ॥
वि(भजेःभागे) स्यात् ततो मानं पूर्वप्रासादसन्निभम् ।
स्वरूपं तस्य वक्ष्यामः श्रीवत्समिव तं भ(वेःजे)त् ॥ १५१ ॥
यद्वा विमानरुचकवर्धमानादिसन्नना ।
छन्देनैकस्य कस्यापि प्रासादस्य विभाजयेत् ॥ १५२ ॥
भूस्तम्भपरिकर्माणि विस्तारोत्सेधमेखलाः ।
सिंहकर्णरथा घण्टा तथा कुम्भाग्रषण्डकम् ॥ १५३ ॥
यत्किञ्चित् तत् प्रमाणेन यथैवाद्यं तथा भवेत् ।
वलयः ॥
सुपर्णस्य (स्व)रूपं च प्रमाणं चाभिधीयते ॥ १५४ ॥
विभक्तं सिंहरूपेण सर्वभद्रं निवेशयेत् ।
भागैश्चतुर्भिर्निष्क्रान्तं भद्रं (गैभयितः?)समम् ॥ १५५ ॥
द्रौ भागौ मूलकर्णौ तु षड्भागा भद्रविस्तृतिः ।
पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला तस्य भागिका ॥ १५६ ॥
मूलजङ्घात्रिभागेन गुरवेदिसमुच्छ्रितिः ।
(सच?)मध्ये तु शृङ्गे द्वे कर्तव्ये वामदक्षिणे ॥ १५७ ॥
उच्छ्रायाद् द्विपदे स्यातां विभक्ते सर्वतोदिशम् ।
मूलकर्णेषु शृङ्गाणां त्रिपदा स्यात् समुच्छ्रितिः ॥ १५८ ॥
+++++ सेवापि चतुरङ्गुलमेव वा ।
कुर्याज्जाला(धः)विस्तारं श्रीवत्से नन्दने यथा ॥ १५९ ॥
विस्ताराद् द्विगुणोत्सेधः स्कन्धः षड्भागविस्तृतः ।
उत्सेधस्य त्रिभागेन जङ्घोत्सेधो विधीयते ॥ १६० ॥

तृतीयांशेन जङ्घायाः कुर्वीत खुरपिण्डिकाम् ।

मेखलान्तरपत्रं च विदध्यात् सार्धभागिकम् ॥ १६१ ॥

विभाज्या दशभिर्भागैः पूर्ववत् स्कन्धविस्तृतिः ।

सार्धद्विगुणविस्तृत्या पूर्वा कर्कटना भवेत् ॥ १६२ ॥

चतुर्गुणेन सूत्रेण मध्या कर्कटना भवेत् ।

(श्री?ग्री)वार्धभागमुत्सेधात् कुमुदं कुम्भकं पुनः ॥ १६३ ॥

अस्मिन्नामलसारं च यथा चाद्ये तथा भवेत् ।

श्रीवत्सः ॥

पद्मनाभमथ ब्रूमः पद्मशालाभिरन्वितम् ॥ १६४ ॥

द्वितीयः पद्मको ह्येष पद्ममालाधरः शुभः ।

सर्वमन्यत् प्रमाणं तु पद्मस्वस्तिकयोर्यथा ॥ १६५ ॥

पद्मनाभः ॥

वैराजमथ वक्ष्यामि स विज्ञेयो विमानवत् ।

(रूपशिख+मुत्सेधस्तम्भग्रीव+रूपकम्?) ॥ १६६ ॥

सभातोरणनिर्युहसिंहक(र्णा?र्णे)श्च तादृशैः ।

साधारं चतुरश्रं च तं कुर्यात् पञ्चभूमिकम् ॥ १६७ ॥

विमानसदृशाकारो वैराजोऽयमुदाहृतः ।

वैराजः ॥

ब्रूमोऽथ वृत्तकं मूले चतुरश्रः प्रकीर्तितः ॥ १६८ ॥

जङ्घामूले ततोऽष्टा(भिस्त्रि?श्रि)वृत्तो भागतृतीयके ।

मूलमध्याग्रतः पूर्णं तं कुर्यात् सर्वतोदिशम् ॥ १६९ ॥

भद्राकारं च भद्रेषु विभागे चतुरश्रके ।

(अष्टाश्रिवज्रकाकारा?) वृत्ते स्वस्तिकसन्निभम् ॥ १७० ॥

यथा मूलविभागेन लतिनः स्वस्तिकोदयः ।

तथा वृद्धिप्रमाणाभ्यामयमप्याद्यवद् भवेत् ॥ १७१ ॥

वृत्तकः ॥

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमो दशधा तं विभाजयेत् ।
 (पादोमध्यंशविस्तारो?) कर्णौ कुर्वीत पार्श्वयोः ॥ १७२ ॥
 चतुर्भागप्रविस्तारं भद्रमस्य प्रकल्पयेत् ।
 सपादपदिकं कुर्याच्छालाकर्णान्तरे रथम् ॥ १७३ ॥
 जलाधाररथं कर्ण(तः?)शालान्तेषु यथेष्टतः ।
 ष+सु शिखरायामास्तन्मध्ये वलभी भवेत् ॥ १७४ ॥
 जलमार्गं च कुर्वीत शालाकर्णान्तमूलयोः ।
 प्रमाणमन्यथा किञ्चिद् (भूसिंहस्येव?) कारयेत् ॥ १७५ ॥
 सुपर्णः ॥

प्रमाणमथ सिंहस्य लक्षणं चाभिधीयते ।
 दशधा क्षेत्रविस्तारं विभजेत् सर्वतः समम् ॥ १७६ ॥
 द्विभागौ मूलकर्णौ तु कर्तव्यौ वामदक्षिणौ ।
 मूलभद्रस्य विस्तारः षड्भिर्भागैर्विधीयते ॥ १७७ ॥
 विस्तारो द्विगुणः कार्यः स्कन्धोत्सेधप्रमाणतः ।
 पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा मेखला सार्धभागिकी ॥ १७८ ॥
 खुरकं वेदिबन्धं च तत्रिभागेन कल्पयेत् ।
 भागत्रयोच्छ्रितानि स्युः शृङ्गाणि च चतुर्दिशम् ॥ १७९ ॥
 सिंह(स्य) कर्णवन्मध्ये वलभ्या भूषयेद् बुधः ।
 सर्वमन्यत् प्रमाणं च सर्वतोभद्रवद् भवेत् ॥ १८० ॥
 सिंहः ॥

विचित्रकूटं वक्ष्यामो दशधा तं विभाजयेत् ।
 (द्विभागिको मूलभद्रस्य?) हस्ततुल्याङ्गुलो भवेत् ॥ १८१ ॥
 शालामध्यप्रदेशे तु वलभीं सन्निवेशयेत् ।
 कूटे द्वे सर्वतो न्यस्येच्छ्लिष्टे+मूलक+योः ॥ १८२ ॥
 एष भेदः समुद्दिष्टः शाला स्यात् कूटवर्जिता ।
 प्रमाणमन्यत् सर्वं तु विज्ञेयं चित्रकूटवत् ॥ १८३ ॥
 चित्रकूटः ॥

योगपीठमथ ब्रूमस्त्रिविष्टपमिवोत्तमम् ।

विभजेद् भागविंशत्या चतुरश्रं समन्ततः ॥ १८४ ॥

(कोष्ठान्यद्भागविस्तारा?) कुर्याद् दिक्षु विदिक्षु च ।

भागिकौ जलमार्गौ च विदध्याद् वामदक्षिणौ ॥ १८५ ॥

विस्तारात् तेषु गर्भः स्याद् भागत्रितयसंमितः ।

पञ्चभागोच्छ्रिता जङ्घा कपोतान्तरवर्जिता ॥ १८६ ॥

खुरकं वेदिबन्धं च कुर्याद् भागत्रयोच्छ्रितम् ।

विस्तारात् (कुर्याद् दिक्षु?) द्विगुणोच्छ्रायः कार्योऽयं पञ्चभूमिकः ॥

सिंहकर्णै रथैर्घण्टाभ्रमिकास्तम्भतोरणैः ।

रचनास्य विधातव्या कथिता पुष्पके तथा ॥ १८८ ॥

सान्धारः केवलं कार्यः प्रासादोऽयं विचक्षणैः ।

योगपीठः ॥

घण्टानादमथ ब्रूमः स भवेत् पञ्चभूमिकः ॥ १८९ ॥

अष्टाश्रिकोणः कर्तव्यः संस्थानात् पुष्पकोऽपरः ।

भैरवो भद्रकाली च (स्थाप्य चात्र पाठको?) ॥ १९० ॥

घण्टानादः ॥

पताकिनमथ ब्रूमो वातोद्भूतमिवार+ ।

लतिनं लतिनाकारं(?) विभक्तं सर्वतोदिशम् ॥ १९१ ॥

तं चण्डिकायाः कुर्वीत रुचकं वर्धमानकम् ।

(वृक्षपताकिनं वक्ष्यामि+भृतं शाखिनं यथा?) ॥ १९२ ॥

पताकिनः ॥

गुहाधरमथ ब्रूमः श्रीपुष्टिसुखदायिनम् ।

विभक्ते दशधा क्षेत्रे भद्रं स्याद् गर्भमानतः ॥ १९३ ॥

अर्धेन मूलगर्भस्य कार्यो भद्रस्य निर्गमः ।

सार्धभागप्रविष्टारौ कर्णौ द्वौ द्वौ च पार्श्वयोः ॥ १९४ ॥

(जलाधा?) मूलकर्णान्ते कर्तव्यः पार्श्वयोर्द्वयोः ।

तद्वद्वारमध्यदेशे त विन्यस्येत स्तम्भतोरणम् ॥ १९५ ॥

विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । ११३

विस्तारद्विगुणोत्सेधश्चतुःशृङ्गश्चतुर्मुखः ? ।

भूग्रीवामेखलाजङ्घाः कुम्भकामलसारके ॥ १९६ ॥

सिंहस्येव प्रकुर्वीत गुहाधारस्ततो भवेत् ।

द्वारभेदेन नामास्य प्रासादस्य विनिर्मितम् ॥ १९७ ॥

गुहाघरः ॥

कथयामोऽथ शालाकं दशधा तं विभाजयेत् ।

द्विभागिकौ मूलकर्णौ षड्भागा भद्रविस्तृतिः ॥ १९८ ॥

द्वाराणि भद्रमध्ये स्युर्मूलद्वारसमानि तु ।

चतुर्बाहुश्चतुर्द्वारो द्वितीयो रुचको ह्यसौ ॥ १९९ ॥

द्वारमानेन नामास्य शालाक इति कीर्तितम् ।

प्रमाणमन्यद् यत्किञ्चिद् भद्रकस्येव तद् भवेत् ॥ २०० ॥

शालाकः ॥

इहानीं वेणुकं ब्रूमश्चतुरश्रं समं शुभम् ।

न कुर्याद् भद्रनिष्काममात्रच्छत्रात्मनः(?) शुभम् ॥ २०१ ॥

विस्तारद्विगुणोच्छ्रायः कुम्भाग्रं (यचेदिष्यत्?) ।

शिखाद्विगुणमानस्य जङ्घा त्र्यंशेन कल्पते ॥ २०२ ॥

जङ्घात्रिभागमुत्सेधात् कार्या खुरवरण्डिका ।

कपोतान्तरपत्रं च कर्तव्यं सार्धभागिकम् ॥ २०३ ॥

चतुर्भा(गो?गे)न सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ।

सर्वतः शोभनं कुर्यात् तं कपोतविनिर्गमे ॥ २०४ ॥

मुखेऽस्य सिंहकर्णाः स्युश्चन्द्रशालाविवर्जिताः ।

प्रमाणमस्य यत्किञ्चिद् वेणुकं च विधीयते? ॥ २०५ ॥

वेणुकम् ॥

इनानीं कुञ्जरं ब्रूमो गजलक्षणलक्षितम् ।

अर्धसूत्रेण तत्(सा?सी)न्नः पृष्ठतो वृत्तमालिखेत् ॥ २०६ ॥

चतुर्भागा भवेज्जङ्घा मेखला सार्धभागिका ।

वृत्ताकारं पृष्ठदेशे तं कुर्वीत विचक्षणः ॥ २०७ ॥

शालासु सिंहकर्णाः स्युः पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः ।

कर्णाश्च तस्य कर्तव्याः शृङ्गैः स(र्वैर?र्वै)ऽपि पूरिताः ॥ २०८ ॥

मध्यप्रदेशे वलभी कर्तव्या चातिशोभना ।

यत्किञ्चित् तत्प्रमाणं तु यथैवाद्ये तथा भवेत् ॥ २०९ ॥

कुञ्जरः ॥

अथ हर्षं प्रवक्ष्यामश्चतुरश्रं मनोरमम् ।

विस्तारात् सार्धं उत्सेधः (स्याद्द्व्यटा?)मस्तकावधेः ॥ २१० ॥

छाद्यरूपं च कुर्वीत चतुरश्रं चतुर्दिशम् ।

शुकनासं सुखातेन शोभितं परिकर्मणा ॥ २११ ॥

जङ्घामेखलयोश्च+खुरापिण्डस्य चोच्छ्रितः ।

घण्टाग्रं चन्द्रशाला च च्छाद्यकं च यदृच्छया ॥ २१२ ॥

कुर्यात् प्रमाणमन्यच्च यथैव मनसः प्रियम् ।

हर्षणः ॥

इदानीं विजयं ब्रूमः प्रासादं (सार्ध?)शोभनम् ॥ २१३ ॥

लतिनो वर्धमानेन + + + + विभाजयेत् ।

शुकनासोदयं न्यस्येदंशोनशिखरोदयम् ॥ २१४ ॥

अग्रप्राग्ग्रीवकौ कार्यौ रथकौ वामदक्षिणौ ।

(कर्तव्योर्ध्वलतश्चापं पूर्णः?) सर्वतोदिशम् ॥ २१५ ॥

विजयो वर्धमानश्च प्रमाणेन समावुभौ ।

अलिन्दभेदान्नामास्य कृतं विजय इत्यदः ॥ २१६ ॥

महापद्मः ॥

ब्रूमोऽथ हर्म्यं प्रासादं तं कुर्यादेकभूमिकम् ।

दारुजं चतुरश्रं च (पट्टतुलाभित्तिभिः?) ॥ २१७ ॥

दण्डच्छाद्यं च कुर्वीत समन्ताच्च चतुष्पिकाम् ।

ऊर्ध्वतस्तुम्बिकाक्रान्तं पद्मखण्डविभूषितम् ॥ २१८ ॥

१. इह 'विजयः' इति लेख्यं भाति । महापद्म इति लेखनेन च विजयानन्तर-
रक्रमलक्षणीयानामुदकुम्भभेदकमहापद्मानां लक्षणश्लोका गलिता इत्यनुमीयते ।

विमानादिचतुष्पष्टिप्रासादलक्षणं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः । १३५

मु(खैः?खे) पत्रैर्गवाक्षैश्च वेदिकास्तम्भतोरणैः ।

वलभीशालभञ्जीभिः सिंहकर्णैश्च भूषयेत् ॥ २१९ ॥

विस्तारमस्य हर्म्यस्य कुर्यादुच्छ्रयसंमितम् ।

हर्म्यः ॥

इदानीमुज्जयन्तस्य लक्षणं सम्प्रचक्ष्महे ॥ २२० ॥

कुर्याद् भूहर्म्यमानेऽत्र द्वारि मण्डपभूषितम् ।

चतुर्द्वारं च कुर्वीत सर्वतो मण्डपान्वितम् ॥ २२१ ॥

प्रमाणमन्यदप्यस्य हर्म्यस्येवाखिलं भवेत् ।

उज्जयन्तः ॥

इदानीमभिधास्यामो गन्धमादनलक्षणम् ॥ २२२ ॥

हर्म्यमानेन कर्तव्यः प्रासादो गन्धमादनः ।

अग्रतः पृष्ठदेशे च मण्डपं तस्य कारयेत् ॥ २२३ ॥

चतुष्कीजालपक्ष्माद्या वामदक्षिणभागयोः ।

प्रमाणमस्य कर्तव्यं यथा हर्म्यस्य कीर्तितम् ॥ २२४ ॥

गन्धमादनः ।

ब्रूमोऽथ शतशृङ्गं स त्रिविष्टपसमो भवेत् ।

विभजेद् भागविंशत्या पञ्चभौमं च कारयेत् ॥ २२५ ॥

+द्विभागानि कूटानि सैकमण्डशतं भवेत् ।

भूमौ भूमौ च शृङ्गाणि भूविस्तारदशांशतः ॥ २२६ ॥

प्रमाणमस्य यत्किञ्चित् तत् त्रिविष्टपवद् भवेत् ।

निरवयः ॥ *

विभ्रान्तमथ वक्ष्यामः सर्वतोभद्रसन्निभम् ॥ २२७ ॥

सान्धारं तं प्रकुर्वीत सर्वतो मण्डपैर्युतम् ।

गवाक्षा वेदिजालाद्याः(?) कुर्याद् दिक्षु चतुष्पिकाः ॥ २२८ ॥

विभ्रान्तः ॥

मनोहरमथ ब्रूमः स भवेन्मण्डपो यथा ।

साञ्छाद्यतोरणैर्दिक्षु चतुर्द्वारः समण्डपः ॥ २२९ ॥

वेदिषण्डाम्बुमार्गाद्यैः प्रतोलीद्वारजालिकैः ।

सिंहपीठतलन्यासैः कलशैः परिपूरितः ॥ २३० ॥

वृत्तस्तम्भस्तुलाच्छन्नो बहिश्छायेन भूषितः ।

सिंहव्यालगजैः पत्रैर्मुखे सस्तम्भतोरणैः ॥ २३१ ॥

पुनः कार्यं प्रमाणं तु यथाशोभं विधीयते ।

मनोहरः ॥

वृत्तवृत्तायतौ ब्रूमस्तयोः कम्बुसमाकृतिः ॥ २३२ ॥

वृत्तस्तत्र तलन्यासचतुरस्रोऽशपञ्चकम् (?) ।

वृत्ताद्यमूर्ध्वतो वृत्तं यथाशोभं समुत्थितम् ॥ २३३ ॥

कुर्यान्मुखायतं चान्यं सिंहकर्णान्वितं मुखे ।

वृत्तवृत्तायतौ ॥

चैत्यस्य लक्षणं ब्रूमः स स्याच्छा(द्य)त्रयान्वितः ॥ २३४ ॥

अस्याकारः प्रमाणं च यथा वृत्ते तथा भवेत् ।

चैत्यः ॥

किङ्किणीकमथ ब्रूमः पञ्चाण्डं नवभूमिकम् ॥ २३५ ॥

वृत्तकूटाः शुभाः कार्याः सर्वेऽमी शुभलक्षणाः ।

किङ्किणीकः ॥

इदानीं लयनं ब्रूमः स शैलखननाद् भवेत् ॥ २३६ ॥

निःश्रेण्यारोहसोपाननिर्यूहकगवाक्षकान् ।

वेदीभ्रमविटङ्कांश्च प्रतोलीद्वारसंयुतान् ॥ २३७ ॥

(उत्कीर्णानाचरे तरप्राग्रीवन्मानं च?) ॥

लयनम् ॥

इदानीं पट्टिसं ब्रूमः प्रासादं बस्त्रसम्भवम्(?) ॥ २३८ ॥

(बोहातो?) जालपादैश्च वेदीषण्डैश्च मण्डितम् ।

कूर्मपृष्ठं प्रदातव्यमिच्छता शुभलक्षणम् ॥ २३९ ॥

पट्टिसः ॥

विभवः कथ्यते स स्यात् (सुर्यामन्यसमाश्रयः?) ।

दारवे दारवो योज्यः शैलजे शैलसम्भवः ॥ २४० ॥

मृन्मये मृन्मयः कार्यश्चयने चयनोद्भवः ।

प्रत्यन्तग्रामखेटेषु दारुस्तम्भैर्विधीयते ॥ २४१ ॥

विभवस्यानुसारेण स कार्यो धार्मिकैस्त्रिभिः ।

विभवः ॥

तारागणमथ ब्रूमः स भवेन्मण्डपाकृतिः ॥ २४२

वस्त्रचीरतुलाशाण्डो(?) डोलाक्रीडाभ्रमैर्गृहैः ।

वस्त्रजैश्चित्ररूपाद्यैर्घण्टादर्पणतोरणैः ॥ २४३ ॥

ध्वजच्छत्रविमानाद्यैः किङ्किणीभिर्विराजितम् ।

यत्किञ्चित् सुन्दरं सर्वं तदत्र विनिवेशयेत् ॥ २४४ ॥

तारागणः ॥

अष्टाष्टकैर्द्वे च विशेषयोगात्

प्रासादषष्टिश्चतुरन्वितैषा ।

विमानमुख्याः कथिता य एतान्

(जातायस्यैस?) शिल्पिगणाग्रणीः स्यात् ॥ २४५ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारपरनाम्नि वास्तुशास्त्रे

विमानादिचतुःषष्टिर्नामैकोनषष्ठितमोऽध्यायः ॥

—:०:—

अथ श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥

—:०:—

ष(ड्विंशद्त्रिंशतमथ ब्रूमः प्रासादान् नागरक्रियान् ।

साधारान् प्रथमस्तेषु श्रीकूटः श्रीमुखस्ततः ॥ १ ॥

श्रीधरो वैदरश्चैव तथा(भ्यः?न्यः) प्रियदर्शनः ।

कुलनन्दोऽन्तरिक्षश्च पुष्पभासो विशालकः ॥ २ ॥

सङ्कीर्णोऽथ महानन्दो नन्द्यावर्तस्तथापरः ।

सौभाग्यश्च विभङ्गश्च विभवस्तदनन्तरम् ॥ ३ ॥

बीभत्सकोऽथ श्रीतुङ्गो मानतुङ्गस्तथापरः ।

(भवतो रुद्र?)संज्ञश्च (भवद्वाह्योदरस्ततः?) ॥ ४ ॥

निर्युहोदर(संज्ञोऽन्य)स्ततो ज्ञेयः समोदरः ।

नन्दिभद्रो भद्रकोशश्चित्रकूटस्ततः परम् ॥ ५ ॥

विमलो हर्षणो भद्रसङ्कीर्णस्तदनन्तरम् ।

ततो भद्रविशालाख्यो भद्रविष्कम्भ एव च ॥ ६ ॥

उज्जयन्ताभिधानश्च सु(खे?मे)रुरथ मन्दरः ।

कैलासः कुम्भका(क्ष?ख्य)श्च गृहराजश्च नामतः ॥ ७ ॥

एते(षां?षट्) त्रिंशदुद्दिष्टा लक्षणं कथ्यतेऽधुना ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ॥ ८ ॥

प्रासादं विभजेत् प्राज्ञः श्रीकू(टं) नाम शोभ(ने?नम्) ।

ज्येष्ठः स्याद् विंशतिर्हस्ता मध्यमो दश पञ्च च ॥ ९ ॥

कनीयान् दश विज्ञेयः प्रमाणं हस्तसङ्ख्यया ।

भद्रं षड्भागिकाया(सं?मं) कर्णाः कार्या द्विभागिकाः ॥ १० ॥

तिलकं भागिकं कार्यं भागेनैकेन निर्गतम् ।

तस्माद् भागेन निष्क्रान्तं भद्रमस्य विधीयते ॥ ११ ॥

भागिकी बाह्यभित्तिः स्याद् द्विपदा चान्धकारिका ।

भागिकी गर्भभित्तिश्च गर्भः कार्यश्चतुष्पदः ॥ १२ ॥

अधश्छन्दः समुद्दिष्ट ऊर्ध्वच्छन्दोऽभिधीयते ।

विस्तारार्धेन जङ्घा स्यान्मेखला चैकभागिका ॥ १३ ॥

भागत्रयोच्छ्रितं शृङ्गं द्वितीयमपि तादृशम् ।

पूर्वशृङ्गस्य मध्ये तद् विधातव्यं विचक्षणैः ॥ १४ ॥

सार्धभागोदयः कार्यस्तिलकोऽन्यश्च तादृशः ।

द्वितीयतिलकस्योर्ध्वं सुश्लि(ष्ट?ष्टा) रूपसंयुता ॥ १५ ॥

१. 'सर्वतोभद्र' इति स्यात् । २. 'भवेद् बाह्योदरस्ततः' इति पाठः स्यात् ।

स्यादुरोमञ्जरी सप्तभागोत्सेधा षडायता ।

स्याद् भागिकम(स्त्रा?धस्त्रा)घं मञ्जर्या या तु विस्तृतिः ॥ १६ ॥

दशधा प्रविभाज्यासौ शेषं श्रीवत्सवद् भवेत् ।

स्कन्धः षड्भागविस्तारो ग्रीवा भागार्धमुच्छ्रिता ॥ १७ ॥

अण्डकं भागिकं कार्यं कुमुदं चार्धभागिकम् ।

सार्धभागेन कलशो बीजपूरकसंयुतः ॥ १८ ॥

द्वितीयकर्णशृङ्गस्य स्यादूर्ध्वं मूलमञ्जरी ।

+++++ अष्टभागसमुच्छ्रिता ॥ १९ ॥

श्रीवत्सवद् विभागोऽस्याः स्कन्धग्रीवादिके भवेत् ।

एवं श्रीकूटसं(क्षेपं?ज्ञोऽयं) प्रासादः परिकीर्तितः ॥ २० ॥

यं कृत्वा त्रिसहस्राणि दिव्यानि दिवि मोदते ।

श्रीकूटः ॥

अथ लक्ष्म +++++ स्याभिधीयते ॥ २१ ॥

तुल्यं प्रासादमानेन विदध्यादिह मण्डपम् ।

मुखायामेन तिर्यक् तु चतुरश्रं +++++ ॥ २२ ॥

+++ भद्रविस्तारः कर्णाश्च तिलकास्तथा ।

मध्ये चतुष्किका कार्या भद्रविस्तारसम्मिता ॥ २३ ॥

नि+++++ विधातव्यस्तु मण्डपे ।

जङ्घाप्रासादजङ्घायाः समोत्सेधा(?)विधीयते ॥ २४ ॥

मेखलं भागिक +++++ च पूर्ववत् ।

स्तम्भं त्र्यंशोच्छ्रितं भागं वेदी घण्टा त्रिभागिका ॥ २५ ॥

क्रमाश्रयो यवाः पञ्च सिंहक +++++ ।

शोभिताः सिंहकर्णैश्च नृच्छाद्याङ्गातिभूषिताः(?) ॥ २६ ॥

मण्डपं कारयेदेवं श्रीकूटस्य विचक्षणः ।

श्रीकूटस्य मण्डपः समाप्तः ।

अलिन्दे तु यदास्येव क्रियते भद्रवेदिका (यदा?) ॥ २७ ॥

प्रासादः श्रीमुख ++ तदानीं स्यात् सुखावहः ।

श्रीमुखः ॥

यदा कूर्परमस्यैव चतुरश्रमधो भवेत् ॥ २८ ॥

तदा स्याच्छ्रीधरो नाम प्रासादो देवताश्रयः ।

श्रीधरः ॥

अस्यैव तु यदालिन्दः क्रियते भद्रवर्जितः ॥ २९ ॥

(रुचेः?) भवेत् तदानीं वरदः प्रासादः शुभदायकः ।

वरदः ॥

विधीयते यदास्यैव भद्रमेकं विनिर्गतम् ॥ ३० ॥

निर्युहश्च तदा स स्यात् प्रासादः प्रियदर्शनः ।

प्रियदर्शनः ॥

विधीयते यदास्यैव नन्द्यावर्तो विनिर्गमः ॥ ३१ ॥

कुलनन्दस्तदा ज्ञेयः प्रासादः सुखकारकः ।

कुलनन्दनः ॥

इति श्रीकूटादिषट्कम् ।

अन्तरिक्षमथ ब्रूमस्तस्य द्वादशभागिकाः(?) ॥ ३२ ॥

षड्विंशत्या करैर्ज्येष्ठमानायां दशभिर्भवेत्(?) ।

मध्य(मे?मो) मध्यमानेन हस्तसंख्येयमीरिता ॥ ३३ ॥

पञ्चभागायतं भद्रं कर्णाः कार्या द्विभागिकाः ।

विस्तारस्तिलकानां स्यादन्तरं भद्रकर्णयोः ॥ ३४ ॥

निर्गमः सार्धभागः स्याद् भद्रस्य तिलकस्य च ।

गर्भः षोडशभागः स्याद् भागिकी भित्तिविस्तृतिः ॥ ३५ ॥

प्रदक्षिणा तु भागौ द्वौ बाह्यभित्तिः पदं भवेत् ।

कथितोऽयमधश्छन्दो ब्रूमश्छन्दमथोर्ध्वतः ॥ ३६ ॥

जङ्घा षड्भागिकोत्सेधा भागोत्सेधा च मेखला ।

++ भागत्रयोत्सेधे शिखरं प्रथमं तथा ॥ ३७ ॥

द्वितीयं तत्समं चोर्ध्वं तिलकस्योपरि स्थितम् ।

अधस्ता + + + + + छाद्यं तु भागिकम् ॥ ३८ ॥

शिखरं गर्भविस्तारं कर्तव्यं षट्पदोच्छ्रितम् ।

अर्धेन गर्भविस्तारा + + + + + स्तथा ॥ ३९ ॥

द्वितीयशिखरस्योर्ध्वं (प्रागुलभ्यान्?) मूलमञ्जरी ।

इत्येष कथितः सम्यगन्तरिक्ष + + + + ॥ ४० ॥

अन्तरिक्षप्रिया देवाः सर्वे वैमानिका यतः ।

अन्तरिक्षः ॥

भागैरष्टभिरत्रैव क्रियतेऽलिन्द + + + ॥ ४१ ॥

पुष्पाभासस्तदा ज्ञेयः प्रासादश्चारुदर्शनः ।

पुष्पाभासः ॥

अथास्य क्रियते भद्रमलिन्दा + + + + + ॥ ४२ ॥

* + विशालको नानाप्रासादाज्जायते शुभः(?) ।

विशालकः ॥

अथास्य क्रियते भद्रयुक्तस्य + + वर्जितः ॥ ४३ ॥

तदा संकीर्णको नाम प्रासादः परिकीर्तितः ।

संकीर्णकः ॥

यदा संकीर्णकस्यैव नन्दिका स(म)भागिकी ॥ ४४ ॥

क्रियते निर्गमेणैव महानन्दस्तदा भवेत् ।

महानन्दः ॥

विस्तारेण समश्च स्यान्नन्दिकानिर्गमो यदा ॥ ४५ ॥

नन्द्यावर्त इति ज्ञेयः प्रासादः स तदा बुधैः ।

नन्द्यावर्तः ॥

अन्तरिक्षषट्कम् ।

सौभाग्यमथ वक्ष्यामः स स्याद् द्वादशभिः पदैः ॥ ४६ ॥

उत्तमो विंशतिर्हस्ता मध्यमो दश पञ्च च ।

कनीया(त्रिसन् दश) मानेन सौभाग्यो मानतस्त्रिधा ॥ ४७ ॥

* 'विशालको नाम तदा प्रासादो जायते शुभः' इति स्यात् ।

गर्भश्चतुर्भिर्भागैः स्याद् भद्रं तद्विस्तृतेः समम् ।
 भद्रस्यार्धेन तिलकाः कर्णाः कार्या द्विभागिकाः ॥ ४८ ॥
 द्वे द्वे पदे विधातव्यस्तथैकैकस्य निर्गमः ।
 भद्राणां निर्गमं यद्वा विदध्यादेकभागिकम् ॥ ४९ ॥
 भागिका गर्भभित्तिस्तु द्विपदा च प्रदक्षिणा ।
 भागिकी बाह्यभित्तिः स्याज्जङ्घोच्छ्रायः पदानि षट् ॥ ५० ॥
 भागिका मेखला प्रोक्ता (शृङ्ग?) तन्मध्ये शिखरं भवेत् ।
 मल्लच्छाद्यं च मध्ये स्याच्छृङ्गस्य शिखरस्य च ॥ ५१ ॥
 एकभागोच्छ्रितं तच्च मञ्जर्यास्त्वह विस्तृतिः ।
 गर्भभित्तिसमा कार्या सप्तभागा समुच्छ्रितः ॥ ५२ ॥
 ऊर्ध्वं द्वितीयशृङ्गस्य पूर्ववन्मूलमञ्जरी ।
 अण्डकाद्यं यथोक्तं स्यात् सौभाग्योऽयं प्रकीर्तितः ॥ ५३ ॥
 सौभाग्यः ॥
 विधीयते यदास्यैव विना भद्रमलिन्दकः ।
 तदा विभङ्गको नाम प्रासादः स्यात् सुशोभनः ॥ ५४ ॥
 विभङ्गकः ॥
 यदि भद्रस्य निष्कासः क्रियतेऽस्य तदा पुनः ।
 प्रासादो विभवो नाम जायते परमोत्तमः ॥ ५५ ॥
 विभवः ॥
 भागद्वयविनिष्क्रान्ता नन्दिका क्रियते यदि ।
 तदा वदन्ति बीभत्ससंज्ञं प्रासादमुत्तमम् ॥ ५६ ॥
 बीभत्सः ॥
 यदा निर्गमविस्तारसमा भवति नन्दिका ।
 श्रीतुङ्ग इति विज्ञेयस्तदा प्रासादसत्तमः ॥ ५७ ॥
 श्रीतुङ्गः ॥
 यदा त्वलिन्दकोऽस्यैव क्रियते न विनिर्गतः ।
 प्रासादो मानतुङ्गाख्यस्तदानीमुपजायते ॥ ५८ ॥
 मानतुङ्गः ॥

ब्रूमोऽथ सर्वतोभद्रं दशधा तं विभाजयेत् ।

षड्(विधान्त्याःविंशत्या) भवेज्ज्येष्ठः कनीयान् दशभिः करैः ॥

हस्तैस्तथाष्टादशभिर्मध्यमः परिकीर्तितः ।

कर्णा द्विभागिकाः कार्या अलिन्दाः षट्पदोन्मिताः ॥ ६० ॥

चतुर्भागानि भद्राणि (विःद्वि)भागस्तद्विनिर्गमः ।

गर्भभित्तिर्बहिर्भिन्नित्तिरन्धारी च पदं पदम् ॥ ६१ ॥

गर्भस्तु षोडशपद इत्येवं छन्द ईरितः ।

विस्तारार्धेन जड्घा स्यान्मेखला चैकभागिका ॥ ६२ ॥

प्रथमं कल्पयेच्छृङ्गं विस्तारात् सार्धमुच्छ्रितम् ।

द्वितीयशृङ्गं तत्रालपं पूर्वशृङ्गस्य मध्यगम् ॥ ६३ ॥

प्राच्छिन्ता पटायाम्या सुरःशिखमिष्यते (?) ।

कर्तव्यं मूलशिखरं तद्वचोपरिशृङ्गयोः ॥ ६४ ॥

मञ्जर्या विभजेद् भागं विस्तारं दशधा बुधः ।

स्कन्धः षड्भागविस्तारो धनुर्ग्रीवाण्डकादिकम् ॥ ६५ ॥

श्रीवत्सस्येव तत् कार्यं मञ्जरी भागमानतः ।

क्रमार्धं वा पञ्चसिंह + + रूपैर्विभूषिता ॥ ६६ ॥

इत्युक्तः सर्वतोभद्रः + + कल्याणकारकः ।

सर्वतोभद्रः ॥

अलिन्दशोभितं भद्रं यदास्यैव विधीयते ॥ ६७ ॥

तदा बाह्योदरो नाम प्रासादप्रवरो भवेत् ।

बाह्योदरः ॥

यद्यलिन्दो न भवति भद्रमेकं तु निर्गतम् ॥ ६८ ॥

स्यान्निर्यूहोदरो नाम प्रासादप्रवरस्तदा ।

निर्यूहोदरः ॥

यदा न तत्र भद्रं स्यान्नन्दिकानिर्गमो भवेत् ॥ ६९ ॥

भद्रकोशं तदा विद्यात् षष्ठं प्रासादमुत्तमम् ।

*भद्रकोशः ॥

सर्वतोभद्रषट्कम् ।

चित्रकूटमथ ब्रूमस्तं भजेदष्टभिः पदैः ॥ ७० ॥

कुर्यात् करेभ्योऽष्टाभ्यस्तं यावत् स्याद्धस्तविंशतिः ।

कर्णभागिकविस्ताराः शेषालिन्दतिविस्तृतिः (?) ॥ ७१ ॥

भद्रं चतुष्पदं विद्याद् भागेनैकेन निर्गतम् ।

भागेन निर्गतोऽलिन्दो भिच्यन्धार्यः पदं पदम् ॥ ७२ ॥

द्विपदोऽस्य भवेद् गर्भः (स्तलच्छत्ति समशिख?) मिष्यते ।

अण्डकं भागिकं कार्यं क्रमाच्च क्रमसंवृता ॥ ७३ ॥

ऊर्ध्वं द्वितीयशृङ्गस्य कर्तव्या मूलमञ्जरी ।

सप्तभागोदया प्राग्बद् भागषट्कं तथायता ॥ ७४ ॥

प्रासादमीदृशं कुर्याच्चित्रकूटं प्रमाणतः ।

चित्रकूटः ॥

(भद्रागवविनिष्क्रा?) तस्यैव यदा भवेत् ॥ ७५ ॥

प्रासादो विमलो नाम तदानीमुपजायते ।

विमलः ॥

अलिन्दस्तु यदास्यैव भद्रहीनो विधीयते ॥ ७६ ॥

तदानीं हर्षणो नाम प्रासादः स विजायते ।

हर्षणः ॥

क्रियते तु यदास्यैव कूर्परं भागनिर्गमम् ॥ ७७ ॥

तदानीं भद्रसंकीर्णः प्रासादो जायते शुभः ।

भद्रसंकीर्णः ॥

अस्यैव तु यदा भद्रं भागेनैकेन निर्गतम् ॥ ७८ ॥

भवेत् तदानीं प्रासादो नाम्ना भद्रविशालकः ।

भद्रविशालकः ॥

+++ भद्रैश्च विना यदा त्वेष विधीयते ॥ ७९ ॥

तदानीं भद्रविष्कम्भः प्रासादः स्यात् सुखप्रदः ।

भद्रविष्कम्भः ॥

चित्रकूटादिपट्टकम् ।

चतुरश्रे समे क्षेत्रे विभक्तेऽष्टभिरष्टकैः ॥ ८० ॥

प्रासादं (चयेद्वा?) उज्जयन्तं सुशोभनम् ।

पदमेकं भवेत् कर्णस्तिलकन्तावदेव च ॥ ८१ ॥

सभित्तिगर्भमानेन भद्रं कुर्याद् विवक्षणः ।

बाह्यभित्तिर्भवेद् भागं भागमेकं प्रदक्षिणा ॥ ८२ ॥

भागिका गर्भभित्तिश्च गर्भमध्ये चतुष्पदम् ।

पञ्चभागोन्मिता जङ्घा भागं तत्रैव मेखला ॥ ८३ ॥

कर्तव्यं भागिकं शृङ्गमण्डकं चार्धभागिकम् ।

द्वितीयं साण्डकं शृङ्गं तत्समं पदमध्यगम् ॥ ८४ ॥

मलच्छाद्यं विधातव्यमुत्सेधेनार्धभागिकम् ।

पदोत्सेधं च शिखरं गर्भभित्तिसमं भवेत् ॥ ८५ ॥

भागिकः कलशः कार्यो ध्वजशं + स्य तत्समः ।

एतस्य मूलशिखरं कुर्यात् पङ्कभागविस्तृतम् ॥ ८६ ॥

भागाधिकसमुत्सेधं कार्यं कल्याणमिच्छता ।

ऊर्ध्वं तिलकशृङ्गस्य शिखरं स्यात् पदोच्छ्रितम् ॥ ८७ ॥

पञ्चाशद्विस्तृतं(?) शेषं श्रीवत्सस्येव कारयेत् ।

इत्येष कथितः सम्यगुज्जयन्तोऽभिधानतः ॥ ८८ ॥

कार्योऽयं सर्वदेवस्य प्रासादः शुभलक्षणः ।

उज्जयन्तः ॥

चित्रकूटा(द्) यथोत्पन्नाः प्रासादा विमलादयः ॥ ८९ ॥

उज्जयन्तात् तथा पञ्च मेरुप्रभृतयो मताः ।

मेरुश्च मन्दरश्चैव कैलासः कुम्भ एव च ॥ ९० ॥

गृहराज इति प्रोक्ताः प्रासादास्ते सुलक्षणाः ।

अष्टोत्तरमिहोद्दिष्टं प्रासादानां शतं बुधैः ॥ ९१ ॥

ज्येष्ठमध्यकनिष्ठानां साधाराणां तथैव च ।

तेष्वलिन्दैर्युताः केचिद् भद्रैः केचिच्च वेष्टिताः ॥ ९२ ॥

केचिद् वर्णसमाः कार्याः प्रासादाः सर्वशोभनाः ।

सर्वेऽप्येते विधातव्या (रिज?) भागप्रतिष्ठिताः ॥ ९३ ॥

कोणा न विषमाः कार्या वर्गभेदश्च नेष्यते ।

एकहस्ता द्विहस्ता + + + + ये प्रकीर्तिताः ॥ ९४ ॥

यक्षनारागृहादीनां(?) रक्षसां च भवन्ति ते ।

भागेन (धूमः स्रतु?) त्रेधा विनिर्दिशेत् ॥ ९५ ॥

ज्येष्ठं मध्यं कनीयश्च ज्ञेयं तच्चांशमानतः ।

ज्येष्ठं सार्धत्रिहस्तं स्यात् त्रिहस्तं मध्यमं विदुः ॥ ९६ ॥

सार्धहस्तद्वयमितं कनीयस्तद् विधीयते ।

त्रिहस्तं ज्येष्ठमपरं मध्यं हस्तसमन्वितम् ॥ ९७ ॥

अर्धहस्तं कनीयश्च मानं भागस्य कीर्तितम् ।

ज्येष्ठो भागो द्विहस्तः स्यात् पादोनं मध्यमः करम् ॥ ९८ ॥

कनीयान् मध्यमार्धेन भागमानमिदं करैः ।

षडन्वितास्त्रिंशदमी विचित्राः

श्रीकूटका(द्यातिथिता ग्रवात्?) ।

प्रासादमुख्या इह षट्प्रभेदा

भिन्ना + + + सह मण्डपैश्च ॥ ९९ $\frac{१}{२}$ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षणं नाम

षष्ठितमोऽध्यायः ॥

—:०:—

अथ पीठपञ्चकलक्षणं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ।

—:०:—

इदानीं द्वाविडान् ब्रूमः प्रासादाब् शुभलक्षणान् ।
 एकभूम्यादयस्ते स्युर्यावद्द्वादशभूमिकाः ॥ १ ॥
 पीठान्यपिच कथ्यन्ते तेषां पञ्चैव लक्षणैः ।
 तलच्छन्दाश्च पञ्चैव तेषां ये शुभलक्षणाः ॥ २ ॥
 पीठमाद्यं भवेत् तेषु पादबन्धनमुत्तमम् ।
 (स्त्री?श्री)बन्धाख्यं द्वितीयं च तृतीयं वेदिबन्धनम् ॥ ३ ॥
 प्रतिक्रममिति प्रोक्तं चतुर्थं पीठमुत्तमम् ।
 पञ्चमं पीठमुद्दिष्टं नाम्ना धुरकबन्धनम् ॥ ४ ॥
 एतानि पञ्च पीठानि प्रोक्तानीह समासतः ।
 उत्सेधं भागविंशत्या विभजेत् पादबन्धने ॥ ५ ॥
 खुरकः पञ्चभागः स्याद्(द्वौ)भागौ पद्मपट्टिका ।
 भागिकी कणिका कार्या त्रिभागं कुमुदं भवेत् ॥ ६ ॥
 कण्ठस्तु भागेनैकेन कण + च द्विभागिकः ।
 पट्टिका भागमेकं स्याद् भागिकी पद्मपट्टिका ॥ ७ ॥
 त्रिभागिकं कपोतं च कुर्यान्नासिकया सह ।
 भागमेकं भवेच्छेद(ः)पादबन्धाख्यपीठके ॥ ८ ॥
 पद्मपट्ट्याः प्रवेशः स्यात् खुरकादङ्गुलद्वयम् ।
 ग्रासः षडङ्गुलस्तस्याः कुमुदं सप्तनिर्गमम् ॥ ९ ॥
 प्रवेशमानं तावत् स्याद् याव(द्वि?द्वि)च्छेदपट्टिकां ।
 षडङ्गुलप्रवेशं च च्छेदपट्टस्य कारयेत् ॥ १० ॥
 समस्तत्रं(?) विधातव्यं छेदस्य कणिकस्य च ।
 निर्गमेण पुनस्तस्माद् द्व्यङ्गुला कण्ठपट्टिका ॥ ११ ॥
 अङ्गुलत्रितयं तस्याः पद्मपट्टीविनिर्गमः ।
 (कापोत्तस्य + + + + तस्या?)स्यादङ्गुलत्रयम् ॥ १२ ॥

पट्टिकानां (समसूत्रच्छेदानां च संस्थितः?) ।

पादबन्धोऽयमाख्यातः श्रीबन्धः कथ्यतेऽधुना ॥ १३ ॥

पीठच्छेदस्य मानं तु सप्तविंशतिधा भजेत् ।

(तीडवर्तिचतुर्भागा?) द्विभागा पञ्चपत्रिका ॥ १४ ॥

कणिकां भागिकां कुर्यात् त्रिभागं कुमुदं ततः ।

छेदमेकं पदं विद्याद् भागं (मेडथराथं?) तथा ॥ १५ ॥

मकरं भागमेकं च भागं मकरपट्टिकाम् ।

छेदमेकं पदं विद्यात् कण्ठमेकं पदं तथा ॥ १६ ॥

पट्टिकां भागमेकं च वेदी भागं ततः परा ।

छेदमेकपदं कुर्यात् ततः कण्ठं द्विभागिकम् ॥ १७ ॥

पट्टिका भागमेकं च +++ पञ्चपत्रिका ।

कपोतं नालिकायुक्तं विदधीत पदत्रयम् ॥ १८ ॥

छेदं च भागिकं कुर्यात् पीठे श्रीबन्धनामनि ।

श्रीबन्धोऽयं समाख्यातो वेदीबन्धोऽथ कथ्यते ॥ १९ ॥

भागैरेकान्नविंशत्या ('पीठस्याच्छेति?') भजेत् ।

नीडवर्तिश्चतुर्भागा द्विभागा पञ्चपत्रिका ॥ २० ॥

कणिकां पदिकां विद्यात् कुमुदं त्रिपदं तथा ।

कुर्वीत पदिकं छेदं तद्वन्मेण्डस्तरं(?) बुधः ॥ २१ ॥

भागैरेकैकं मकरं तथा मकरपट्टिकाम् ।

छेदं पदं ++ कण्ठं भागिका पञ्चपत्रिका ॥ २२ ॥

(कर्तव्या?) भागिकां कुर्यात् कुमुदं च त्रिभागिकम् ।

छेदमेकपदं विद्यात् ततः कण्ठं द्विभागिकम् ॥ २३ ॥

पट्टिकां भागिकां कुर्याद् भागिकां ++ पट्टिकाम् ।

द्विभागो रसनापट्टाश्छादस्तु पट्टिको भवेत् (?) ॥ २४ ॥

इति प्रतिक्रमं पीठं क्षुरबन्धोऽधुनोच्यते ।
 वि(भजेद्) भागविंशत्या पीठोच्छ्रायं विचक्षणः ॥ २५ ॥
 नीरवर्तिश्चतुर्भागा + + + पञ्चपत्रिका ।
 कणिका भागमेकं स्याद् द्विभागं कुमुदं ततः ॥ २६ ॥
 (भागं मेडथाक्षेपो?) मकरो भागिकस्तथा ।
 भागमेकं विधातव्या ततो मकरपट्टिका ॥ २७ ॥
 (छेदा मकरपदं?) कुर्यात् कण्ठमेकं पदं ततः ।
 पट्टिकां भागिकां विद्याद् भागिकी पञ्चपत्रिका ॥ २८ ॥
 कपोतं त्रिपदं कुर्यात् ततो नासिकया सह ।
 छेदश्च भागिकः कार्यः क्षुरबन्धोऽयमीरितः ॥ २९ ॥
 पीठपञ्चकमित्युक्तं सूत्रितं पूर्वमेव यत् ।
 पीठादूर्ध्वं तु विज्ञेया प्राज्ञैः खुरवरण्डिका ॥ ३० ॥
 सन्ति चान्यानि पीठानि लक्ष्मभेदादनेकथा ।
 तेषां मध्ये प्रकृष्टत्वादेतत् पञ्चकमीरितम् ॥ ३१ ॥
 प्रासादानथ वक्ष्यामस्तलच्छन्दादनन्तरम् ।
 तत्र पञ्चो महापञ्चो वर्धमानस्तथापरः ॥ ३२ ॥
 स्वस्तिकः सर्वतोभद्रः प्रासादाः पञ्च कीर्तिताः ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे कर्णमूत्रं प्रसारयेत् ॥ ३३ ॥
 कर्णस्यार्धं ततः कृत्वा (गर्भादृक्?) बहिर्नयेत् ।
 तदग्रयोः सूत्रपातात् स्यादन्यचतुरश्रकम् ॥ ३४ ॥
 कूटं कुर्याद् द्विभागेन (संमस्तत्राद्?) विचक्षणः ।
 सूकराननसंस्थानं कुर्वीत सलिलान्तरम् ॥ ३५ ॥
 एवं सर्वेषु कूटेषु सलिलान्तरमिष्यते ।
 यदायतं भवेत् सूत्रचतुर्भागविभाजिते ॥ ३६ ॥
 गर्भो द्विभागिकस्तेन भागिका भित्तिरुच्यते ।
 गर्भकर्णार्धमादाय कोणा(स्तं?न्तं)लाञ्छयेत् पुनः ॥ ३७ ॥

अष्टसृ + + मध्ये स्यादेवं + + + + बहिः ।
 एवं पञ्चतलच्छन्दो विधातव्यो विचक्षणैः ॥ ३८ ॥
 महापञ्चतलच्छन्दमधुना सम्प्रचक्ष्महे ।
 पूर्वं यः कीर्तितश्छन्दः (सम्पाता सूत्रयेकृताः?) ॥ ३९ ॥
 तेषु संपादयेद् + + + + दिग्विदिगन्तरे ।
 कर्णार्थं दापयेत् तत्र बाह्यभागविनि(र्मिता?र्गतम्) ॥ ४० ॥
 ('णङ्गीग्रेय्यो?)दिशोर्मध्ये लाञ्छनं यद् व्यवस्थितम् ।
 नैर्ऋतीयाम्ययोर्मध्ये तस्मात् तत्र प्रसारयेत् ॥ ४१ ॥
 नैर्ऋतीयाम्ययोर्मध्याद् वाय्वम्बुपदिगन्त(रौ?रे) ।
 वाय्वम्बुपदिशोर्मध्यादीशसोमदिगन्तरे ॥ ४२ ॥
 तृतीयां + + + + + कूटस्य जलान्तरम् ।
 कूटयोरुभयोर्मध्ये सूकराननसन्निभम् ॥ ४३ ॥
 महापञ्चतलच्छन्दः प्रोक्तोऽयं राजपूजितः ।
 इदानीं वर्धमानस्य तलच्छन्दोऽभिधीयते ॥ ४४ ॥
 चतुरश्रं भजेत् पञ्चदशधा क्षेत्रमादितः ।
 कूटं द्विभागिकं + + + + + सलिलान्तरम् ॥ ४५ ॥
 पञ्जरं सार्धं + + + भागिकं सलिलान्तरम् ।
 चतुर्भागा भवेच्छाला (द्विविद्ध्या व पञ्जरे मः?) ॥ ४६ ॥
 अर्धभागं प्रवेशस्तु शाला(सःस्व)त्र जला(ध?ध्व)नः ।
 अष्टाङ्गुलविनिष्क्रान्ते बाह्यतः शुभदर्शने ॥ ४७ ॥
 भागपादं प्रवेशः स्यात् पञ्जरान्त(ज?र्ज)लाध्वनः ।
 अर्धभागं प्रवेशस्तु + + + + + ॥ ४८ ॥
 जलान्तरं तृतीयं च कर्तव्यं भागसम्मितम् ।
 अनन्तरं प्रकुर्वीत पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४९ ॥
 भागमेकं तलच्छन्दो यथावदभिधीयते ।
 चतुरश्रं समं क्षेत्रमष्टाविंशतिधा भजेत् ॥ ५० ॥

१. 'ऐन्द्र्याग्नेय्यो' इति पाठः स्यात् । २. वर्धमानतलच्छन्दलक्षणापरिसमाप्ता-
 वेव छन्दान्तरस्य लक्षणोपक्रमादादर्शं ग्रन्थपातोऽनुमीयते ।

कुर्यात् कूटं चतुर्भागं + + + सलिलान्तरम् ।

त्रिभागं पञ्जरं तद्वद् द्विभागं सलिलान्तरम् ॥ ५१ ॥

शालां षड्भागिकीं कुर्याज्जलमार्गं द्विभागिकम् ।

त्रिभागं पञ्जरं भूयश्चन्द्रशालाविभूषितम् ॥ ५२ ॥

पुनर्द्विभागिकं कुर्याच्चतुर्थं सलिलान्तरम् ।

विदधीत चतुर्भागं रथकं च सुशोभनम् ॥ ५३ ॥

एवं दिक्षु समस्तासु समैर्भागैः प्रकल्पयेत् ।

चतुर्भागे ततः क्षेत्रे गर्भं कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ५४ ॥

स्वस्तिके वर्धमाने च भागिकयो भित्तयः स्मृताः ।

स्वस्तिकोऽयं तलच्छन्दः कथितोऽतिमनोहरः ॥ ५५ ॥

इदानीं सर्वतोभद्रतलच्छन्दोऽभिधीयते ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे गर्भं कुर्याद् द्विभागिकम् ॥ ५६ ॥

कुर्यात् त्रिभागिकं कूटं जलमार्गं द्विभागिकम् ।

त्रिभागिकं ततः कूटं तोयमार्गं द्विभागिकम् ॥ ५७ ॥

शालाष्टभागिकी कुर्याज्जलवर्त्मद्विभागिकम् ।

भूयस्त्रिभागिकं कूटं द्विभागं सलिलान्तरम् ॥ ५८ ॥

त्रिभागिकी च रथिका भवेद् दिक्षु (चतुर्दश?) ।

चतुरश्रीकृ(ते?तं)क्षेत्रे(त्रे?त्रम्) अष्टाविंशतिधा भजेत् ॥ ५९ ॥

कुर्यात् त्रिभागिकं कूटं चतुर्धा प्रविभाजिते ।

भागिकयो भित्तयः कार्यास्तथा गर्भो द्विभागिकः ॥ ६० ॥

इत्येष सर्वतोभद्रस्तलच्छन्दो विधीयते ।

एते प्रोक्ता निरन्धाराः सान्धारास्तु प्रचक्ष्महे ॥ ६१ ॥

चतुरश्रीकृतं क्षेत्रं भजेद् द्वादशभिः पदैः ।

चतुर्भागो भवेद् गर्भो भागिकयो भित्तयः स्मृताः ॥ ६२ ॥

भागिकान्धारिका तद्वद् द्विभागा बाह्यभित्तयः ।

प्रथमेते तलच्छन्दाः पद्माद्याः परिकीर्तिताः ॥ ६३ ॥

पीठान्युक्तान्येषमेतानि पञ्च
 प्रासादानां नामभिर्लक्षणैश्च ।
 पञ्च प्रोक्ता ये तलच्छन्दभेदा-
 स्तैर्विज्ञातैः पूज्यतामेति लोके ॥ ६४ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 पीठपञ्चकाध्यायो नामैकषष्टितमः ॥

—:०:—

अथ द्राविडप्रासादलक्षणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

—:०:—

ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो घण्टान्तपुरपादितः(?) ।
 प्रमाणं कर्णमानेन सर्वेषामेव धारयेत् ॥ १ ॥
 तत्रैकभूमि(कः) कार्यो हस्तपञ्चकविस्तृतः ।
 अङ्गुलद्वितयोपेतः(?) सप्तहस्तसमुच्छ्रितः ॥ २ ॥
 पादो द्विहस्त उत्सेधात् सर्वालङ्कारभूषितः ।
 सार्धहस्तसमुत्सेध(स्तावन्मानः स्तरावधि?) ॥ ३ ॥
 माला तु द्विस्तरा प्रोक्ता स्तरो लशुनकं भवेत् ।
 भरणं स्तरमेकं स्याद् भरणार्थं स्तरद्वयम् ॥ ४ ॥
 कलशाद्युतरं ज्ञेयो वारराद्यासमन्वितः(?) ।
 द्विस्तरं कुलकं कुर्यात् पद्मपत्रसमन्वितम् ॥ ५ ॥
 वीरगन्द्रां(?) पुनः कुर्यात् स्तरमेकं तदूर्ध्वतः ।
 द्विस्तरं हीरकं प्रोक्तं पट्टश्चैव तथाविधः ॥ ६ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तं द्विस्तरं विदुः ।
 वसन्तपट्टिका चोर्ध्वं स्तरमेकं विधीयते ॥ ७ ॥
 कपोतं नासिकायुक्तं विदधीत स्तरत्रयम् ।
 + दन्तरं प्रकुर्वीत मेढमेकस्तवंस्तत (?) ॥ ८ ॥

१. 'तदन्तरे प्रकुर्वीत मेढमेकं स्तरं ततः' इति स्यात् ।

स्तरप्रमाणं मकरं तद्वन्मकरपट्टिकाम् ।

पुनश्छेदं स्तरं कुर्याद् वेदीबन्धस्ततः स्तरम् ॥ ९ ॥

छेदः स्तरप्रमाणश्च कण्ठः स्याद् द्विस्तरं ततः ।

पट्टिका स्तरमेकं तु तद्वच्चाम्बुजपट्टिका ॥ १० ॥

मालादिपद्मपत्रान्तं द्विहस्तोत्सेधमीरितम् ।

सार्धहस्तः समुत्सेधः कूटस्य परिकीर्तितः ॥ ११ ॥

नासिकापद्मसंयुक्तं तदूर्ध्वं कलशो भवेत् ।

एकभूमेरिदं मानं प्रासादस्य प्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥

एकभूमिकः ॥

द्विभूमिकस्य लक्ष्माश्च प्रासादस्याभिधीयते ।

सप्तहस्तसविस्ता + + + + समुच्छ्रितः ॥ १३ ॥

कर्णमानाद् भवेदस्य विभागोऽथ निगद्यते ।

द्विहस्तं कल्पयेद् बीजं जङ्घा सार्धद्विहस्तकम् ॥ १४ ॥

कूटस्य सन्निवेशोऽयं विज्ञातव्यः सभागिकः ।

जङ्घा द्वितीया तु पुनः कर्तव्या तस्य भागिका ॥ १५ ॥

सन्निवेशो द्वितीयस्य स्यात् कूटस्यार्धभागिकः ।

(दिदिक्कव्यस्पृष्टं) कर्तव्या सह कण्ठेन भागिकः ॥ १६ ॥

तस्योपरिष्ठाद् घण्टा च सार्धभागसमुच्छ्रिता ।

नासिकापद्मसंयुक्ता विधातव्या विपश्चिता ॥ १७ ॥

पीठानां पूर्वमुक्तानां पादबन्धादिनामभिः ।

पञ्चानां कल्पयेदेवं + + भूम्यादितः क्रमात् ॥ १८ ॥

तेषां शोभावहं यत् स्यात् तत् कर्तव्यं विपश्चिता ।

तस्योपरि भवेज्जङ्घा मालाल + + संयुता ॥ १९ ॥

भरणं कलशस्तद्वद् (द्वा?वी)रगण्डसमन्वितम् ।

उच्छालं पूर्वमानेन पद्मपत्रायुतं ततः(?) ॥ २० ॥

वीरगण्डः पुनः कार्यो हीरं पूर्वक्रमेण च ।

तस्योपरिष्ठात् पट्टश्च भवेत् पट्टिकया सह ॥ २१ ॥

(वसन्तवेदूर्ध्वं ततः?)स्तस्यैवोपरि पट्टिका ।
 ततः कपोतच्छेदश्च (मेढकर एव च?) ॥ २२ ॥
 पट्टिका (मैकरोण्या च भेद?)कण्ठोऽथ पट्टिका ।
 वेदीच्छेदश्च कण्ठश्च पट्टिका पद्मपट्टिका ॥ २३ ॥
 कूटं तदूर्ध्वं कुर्वीत विचित्रं नासिकान्वितम् ।
 छेदान्तं पूर्वमानेन सर्वमेतद् विधीयते ॥ २४ ॥
 तस्योपरि पुनर्जङ्घा सर्वाभरणभूषिता ।
 ततो मालाथ (ल)शुनं तोरणं कलशस्ततः ॥ २५ ॥
 वीरगण्डस्त(तो?)थोच्छालं पत्रकं वीरगण्डकः ।
 हीरकं पट्टिका तद्वद्वसन्तपट्टिका पुनः ॥ २६ ॥
 कपोतच्छेदमेढाश्च (मैकरोऽस्य?) च पट्टिका ।
 छेदः करपट्टिका च (?) वेदीच्छेदोऽथ कण्ठकः ॥ २७ ॥
 पट्टिका पद्मपूर्वा च कर्तव्या पट्टिका ++ ।
 ततश्छेदो विधातव्यः सर्वैराभरणैर्युतः ॥ २८ ॥
 ततश्छिन्वा तथा कार्यं यथा शोभा प्रजायते ।
 पुनः कण्ठ्यं(?) प्रदातव्यः पट्टिका पद्मपट्टिका ॥ २९ ॥
 ततः कण्ठं विधातव्यं चन्द्रमालाविभूषितम्(?) ।
 प्रकुर्वीत ततश्छेदमुपरिष्ठाद् विचक्षणः ॥ ३० ॥
 कण्ठपट्टिकया युक्तं तदूर्ध्वं कण्ठपट्टिकाम् ।
 सप्ताङ्गुलानि कर्तव्यस्ततो घण्टाविनिर्गमः ॥ ३१ ॥
 भागार्धं विस्तृतिस्तस्या विस्तारार्धं समुच्छ्रितिः ।
 एवं द्विभूमिकं प्राज्ञः प्रासादं परिकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
 द्विभूमिकः ॥
 त्रिभूमिकस्तृतीयोऽथ प्रासादोऽस्माभिरुच्यते ।
 तस्यैकादश विस्तारो हस्ताः पञ्चदशोच्छ्रयः ॥ ३३ ॥
 चतुर्दशाङ्गुलान्येषां भवेदस्याधिका(पि?)नि च ।
 +++ भूमिकस्यैतत् कर्णमानमसंशयम् ॥ ३४ ॥

पीठं द्विहस्तं कुर्वीत तत्रादौ पूर्वसूचितम् ।

जङ्घां त्रिभागिकोत्सेधां कूटोच्छ्रायं तु भागिकम् ॥ ३५ ॥

भवेज्जङ्घा तृतीया च सार्धभागद्वयं ततः ।

भागं च कूटप्रसरश्चन्द्रशालाविभूषितः ॥ ३६ ॥

पुनस्तृतीया जङ्घा (स्याद् भाग)द्वय(स)मुच्छ्रिता ।

ततश्च(शा?)कू(ट)प्रस्तारो भागिको भूषणान्वितः ॥ ३७ ॥

भागं स्याद् वेदिबन्धः + सगुणद्वारकण्ठकः ।

चतु(र्द?र्दि?)शमसौ कार्यो भूषायुक्तो यथोचितम् ॥ ३८ ॥

घण्टाच्छेदस्तु भागौ (द्वौ) द्व्यङ्गुलद्वयसंयुतौ ।

एकादशस्तरा (कुरु?)स्तस्योपरि विधीयते ॥ ३९ ॥

इदानीं प्रविभागोऽस्य पीठादूर्ध्वं विधीयते ।

हस्तमेकं भवेज्जङ्घा(द्यंयपिच?)तया समा ॥ ४० ॥

माला तु द्विस्तरा प्रोक्ता लघुनं भागिकं ततः ।

भरणं स्तरमेकं स्यात् कलशोऽपिच तत्समः ॥ ४१ ॥

वीरगण्डसमायुक्तमुच्छ्रालं द्विस्तरं ततः ।

ततस्तरं वीरगण्डो + + + + + ॥ ४२ ॥

हीरकं द्विस्तरं विद्यात् (स?स्त)रं वासन्तपट्टिका ।

कपोतं नासिकायुक्तं त्रिस्तरं कारयेत् ततः ॥ ४३ ॥

छेदं प्रस्तप्रमाणं च मेढं च तत्सम्मितम् (?) ।

स्तरं कुर्वीत मकरं तदर्धेनास्य पट्टिका ॥ ४४ ॥

छेदं तथैव कुर्वीत कण्ठमेकस्तरं ततः ।

पट्टिका वेदिका चैव स्तरमेकं विधीयते ॥ ४५ ॥

छेदमर्धस्तरं विद्यात् कण्ठं सार्धस्तरं ततः ।

पट्टिका स्यात् स्तरं पञ्च स्तरमेकं ततो भवेत् ॥ ४६ ॥

शेषे च सुन्दरं कण्ठं विधातव्यं(?) विचक्षणैः ।

अनन्तरं द्वितीया च जङ्घा कार्या नवस्तरा ॥ ४७ ॥

मध्ये च सा प्रकर्तव्या तदूर्ध्वं तां विभाजयेत् ।

ततस्तरं भवेच्छाला स्तरार्धं लशुनं ततः ॥ ४८ ॥

तथैव भरणं ज्ञेयं पूर्वनिर्दिष्टलक्षणम् ।

वीरगण्डेन सहितः कलशोऽपि तथा भवेत् ॥ ४९ ॥

पद्मपत्रिकया युक्तं स्तरमुच्छालकं विदुः ।

वीरगण्डं स्तरं विद्यादर्धभागं च हीरकम् ॥ ५० ॥

पट्टं तथैव कुर्वीत स्तरस्यार्धेन पट्टिका ।

वसन्तः स्तरमेकं स्याद् स्तरं वासन्तपट्टिका ॥ ५१ ॥

कपोतं त्रिस्तरं कुर्यान्नासिकासहितं बुधः ।

छेदमर्धस्तरं विद्यान्मेढं तत्तुल्यमेव च ॥ ५२ ॥

मकरं स्तरमेकं च भागार्धं पट्टिका ततः ।

भागमेकं भवेच्छेदः स्तरं कण्ठस्तदूर्ध्वतः ॥ ५३ ॥

पट्टिका वेदिका चैव स्तरमेकं विधीयते ।

छेदं भागार्धिकं कुर्यात् कण्ठक सार्धभागिकम् ॥ ५४ ॥

भागेन पट्टिकां कुर्यात् तथा कमलपत्रिकाम् ।

कूटं ततः परं कुर्यान्नासिका च (सु) विभूषितम् ॥ ५५ ॥

तृतीयजङ्घा (मद्वा?तद्वत्) स्याच्चतुर्भिः कल्पिता स्तरैः ।

स्तरमेकं भवेन्माला स्तरं च लशुनं विदुः ॥ ५६ ॥

भरणं स्तरमेकं च कुम्भमेकस्तरं तथा ।

वीरगण्डसमोपेतमुच्छालं स्यात् तदूर्ध्वतः ॥ ५७ ॥

स्तरमेकं प्रकुर्वीत वीरगण्डसमुच्छ्रितम् ।

ततश्च हीरकं कुर्याद् भागेनैकेन बुद्धिमान् ॥ ५८ ॥

सार्धभागेन पट्टिः स्यात् पट्टिकार्धं स्तरं तथा ।

स्तरमेकं वसन्तं स्यात् स्तरं वासन्तपट्टिका ॥ ५९ ॥

कपोतो द्विस्तरश्छेदोऽर्धस्तरं मेण्डः स्तरः ।

भागिको मकरः कार्यः पट्टिका चार्धभागिका ॥ ६० ॥

(भेदो?)ऽर्धभागिको भागमेकं कण्ठः प्रकीर्तितः ।
 पट्टिकावेदिका(भेदा?)स्त्रयोऽप्यर्धस्तरं पृथक् ॥ ६१ ॥
 कण्ठश्चार्धस्तरः कार्यः पीठिका चार्धभागिका ।
 अर्धभागेन कर्तव्या तदूर्ध्वं पद्मपत्रिका ॥ ६२ ॥
 विचित्रलक्षणोपेतं ततः कूटं विधीयते ।
 स्तरमेकं भवेच्छेदः स्यात् कण्ठोऽप्येवमेव (च?) हि ॥ ६३ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं स्यात् ततो वेदी स्तरद्वयम् ।
 छेदः स्तरं भवेद् भूयः कण्ठः स्याद् द्विस्तरं ततः ॥ ६४ ॥
 कर्तव्ये स्तरमेकैकं पट्टिका पद्मपत्रिका ।
 घण्टा ततः(क?)परं कार्या मानतो विंशतिस्तरा ॥ ६५ ॥
 एकादशस्तरः कुम्भः सर्वेषां सर्वतो भवेत् ।
 त्रिभूमिकोऽयमाख्यातश्चतुर्भूमिरथोच्यते ॥ ६६ ॥
 त्रिभूमिकः ॥
 हस्तान् पञ्चदश क्षेत्रं विस्तारा(त्तु)प्रकल्पयेत् ।
 उच्छ्रायेण तु हस्तानां स्यात् (पादकविंशतिः?) ॥ ६७ ॥
 द्विहस्तं कारयेत् पीठं जङ्घां हस्तत्रयोच्छ्रिताम् ।
 सार्धहस्तं भवेत् कूटं सर्वालङ्कारभूषितम् ॥ ६८ ॥
 द्वितीयजङ्घा कर्तव्या पादहीनं करत्रयम् ।
 सपादहस्तं कुर्वीत कूटमन्यत् तदूर्ध्वतः ॥ ६९ ॥
 तृतीयजङ्घा कर्तव्या सार्धं हस्तद्वयं ततः ।
 ततश्च कूटप्रस्तारो हस्तमेकं विधीयते ॥ ७० ॥
 जङ्घा चतुर्थी कर्तव्या सार्धहस्तद्वयं ततः ।
 ततश्च कूटप्रस्तारो हस्तमेकं विधीयते ॥ ७१ ॥
 जङ्घा चतुर्थी कर्तव्या सपादद्विकरोच्छ्रिता ।
 हस्तं च कूटप्रस्तारो वेदीबन्धस्तथाविधः ॥ ७२ ॥
 गर्भार्धविस्तृता घण्टा कार्या हस्तत्रयाच्छ्रिता ।
 चतुर्दशस्तरः कुम्भः सर्वेषामुपरि स्थितः ॥ ७३ ॥

सूचि(का?ता)हस्तसङ्घैषा विभागः कथ्यतेऽधुना ।
पीठं हस्तद्वयोत्सेधं जङ्घालङ्कृतिरुच्यते ॥ ७४ ॥

दशभागो भवेदेकमुच्छालं द्विस्तरं ततः ।
वीरगण्डं स्तरं विद्याद् द्विस्तरं हीरकं भवेत् ॥ ७५ ॥

पट्टस्तथैव विज्ञेयो(त्सेधकी?)पट्टिका ततः ।
वसन्तं द्विस्तरं + + + + वासन्तपट्टिका ॥ ७६ ॥

कपोतस्त्रिस्तरः कार्यो भागं छेदो विधीयते ।
मेढं स्तरं प्रकुर्वीत स्तरं कण्ठस्य पट्टिका ॥ ७७ ॥

कुर्वीत भागिकीं (देवा?वेदीं)तत(च्छे?छे)दे च भागिकम् ।
पुनः कण्ठं प्रकुर्वीत द्विस्तरं पट्टिकां ततः ॥ ७८ ॥

स्यात् पद्मपत्रिकाप्येवं घण्टा पञ्चस्तरा ततः ।
विचित्रं लक्षणोपेतं ततः कुम्भं निवेशयेत् ॥ ७९ ॥

जङ्घारतम्भं द्वितीया(यां) विदध्यादष्टभागिकम् ।
मालां + द्विस्तरं कुर्याद् भागिकं (त'ल)शुनं ततः ॥ ८० ॥

भर(णं) स्तरमेकं च कलशं तत्प्रमाणतः ।
वीरगण्डेन संयुक्तं (तावांश्चो?)च्छालकं भवेत् ॥ ८१ ॥

द्विस्तरं तच्च विज्ञेयं वीरगण्डः स्तरं भवेत् ।
हीरकं द्विस्तरं विद्यात् पद्मं चैव तथाविधम् ॥ ८२ ॥

पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तं द्विस्तरं ततः ।
वसन्तपट्टिकां भागं कपोतं त्रिस्तरोच्छ्रितम् ॥ ८३ ॥

कुर्वीत भागिकं (भेदं?) स्तरमेकं च मेढकम् ।
मकरं स्तरमेकं च तथा मकरपट्टिकाम् ॥ ८४ ॥

भेदः स्तरं भवेत् कण्ठः स्तरं भागं च पट्टिका ।
वेदिका स्तरमेकं च छेदमर्थेन कारयेत् ॥ ८५ ॥

कण्ठं सार्धस्तरं कुर्यात् स्तरमेकं च पट्टिकाम् ।
(आभा?अग्गो)अपत्रिकां भागं कुर्याद् घण्टां चतुःस्तराम् ॥ ८६ ॥

प्राग्ग्रीवभूषिता सा स्यात् कुम्भं कुर्यात् तदूर्ध्वतः ।
 जङ्घास्तम्भस्तृतीयायां सप्तांशश्चतुरःकः ॥ ८७ ॥
 ततो मालाथ लशुनं भरणं कुम्भकाण्डको ।
 उच्छालं गण्डको हीरं प्रत्येकं स्युः स्तरं स्तरम् ॥ ८८ ॥
 पञ्चं सार्धस्तरं विद्याद् भागेऽर्धे पट्टिकां तथा ।
 भागमेकं वसन्तः स्याद् भागं वासन्तपट्टिका ॥ ८९ ॥
 कपोतं त्रिस्तरं कुर्याच्छेदमेकस्तरं ततः ।
 ततश्च मेढ्रं मरुं विदधीत स्तरं स्तरम् ॥ ९० ॥
 तत्पट्टिका तु भागार्धं (भेदं) भागार्धमेव च ।
 कण्ठो वेदी पट्टिका (च) त्रीण्येतानि स्तरं स्तरम् ॥ ९१ ॥
 स्तरस्यार्धं भवेच्छेदः कण्ठः सार्धस्तरं ततः ।
 भागार्धं पट्टिका कार्या तावती पञ्चपत्रिका ॥ ९२ ॥
 चतुर्भागा भवेद् घण्टा गुणद्वारसमन्विता ।
 द्विस्तरं कारयेत् कुम्भं घण्टायाः स्थितमूर्ध्वतः ॥ ९३ ॥
 एवं भूमिस्तृतीयैषा चतुर्थी कथ्यतेऽधुना ।
 कर्तव्या (पट्टरा?) जङ्घा महास्तम्भसमन्विता ॥ ९४ ॥
 मालाथ लशुनं तद्वद् भरणं कुम्भ एव च ।
 उच्छालं गण्डकं हीरमिति प्रा + पृथक् पृथक् ॥ ९५ ॥
 सार्धभागं भवेत् (पादः? पट्टः) पट्टिकार्धस्तरं ततः ।
 वसन्तं (स्त)रमेकं स्यात् तत्संज्ञः (?) पट्टिका स्तरम् ॥ ९६ ॥
 कपोतं द्विस्तरं विद्याच्छेदं चार्धस्तरं ततः ।
 मेढ्रं तथैव कुर्वीत मकरं च स्तरं बुधः ॥ ९७ ॥
 पट्टिकां मकराख्यां च च्छेदमेकस्तरं विदुः ।
 स्तरमेकं भवेत् कण्ठः स्तरस्यार्धं च पट्टिका ॥ ९८ ॥
 तथैव वेदिकां कुर्याच्छेदमर्धस्तरं पुनः ।
 सार्धभागं प्रकुर्वीत कण्ठदेशं विचक्षणः ॥ ९९ ॥

पट्टिका (मैद्य?)संज्ञा तु स्तरमेकं विधीयते ।

घण्टा स्तरद्वयं कार्या गुणद्वारविभूषिता ॥ १०० ॥

कुम्भं विदध्यादुपरि द्विस्तरं पङ्कजाननम् ।

भागमेकं भवेच्छेदस्ततः कण्ठः स्तरद्वयम् ॥ १०१ ॥

पट्टिका स्तरमेकं तु वेदिका तु स्तराबुभौ ।

पुनश्छेदो भवेद् भागं ++ कण्ठो विधीयते ॥ १०२ ॥

पट्टिका स्तरमेकं तु तद्वदम्भोजपत्रिका ।

स्तराणां विंशतिर्घण्टा भवेद् गर्भार्धविस्तृता ॥ १०३ ॥

चन्द्रशालाश्च कर्तव्या दर्शनीयाश्चतुर्दिशम् ।

एवं पद्मे महापद्मे स्वस्तिके वर्धमानके ॥ १०४ ॥

तथैव सर्वतोभद्रे कुर्याद् घण्टामिमां बुधः ।

कुम्भं तु पञ्चदशभिः स्तरैः (कार्याः कुर्यात्) समुन्नतम् ॥ १०५ ॥

स्याच्चतुर्भूमिको ह्येवं तलच्छन्दस्तु कामतः ।

चतुर्भूमिकः ॥

पञ्चभौममथ ब्रूमः प्रासादं राजपूजितम् ॥ १०६ ॥

विस्तारेण विधातव्यः स ह(स्त्र?स्ता)नेकविंशतिम् ।

विभाजयेत् तथोत्सेधं पादोनत्रिशतं करान् ॥ १०७ ॥

पीठं भागद्वयं सार्धं जङ्घा (साराङ्गा?)त्रिभागिकी ।

कुर्वीत कूटप्रस्तारं सार्धहस्तं च बुद्धिमान् ॥ १०८ ॥

जङ्घा द्वितीया कर्तव्या हस्तत्रितयमुच्छ्रिता ।

भूयोऽपि कूटप्रस्तारं सार्धहस्तं प्रकल्पयेत् ॥ १०९ ॥

जङ्घा तृतीया कर्तव्या पादहीनं करत्रयम् ।

सार्धहस्तसमुत्सेधः कूटप्रस्तार इष्यते ॥ ११० ॥

चतुर्थभूमिजङ्घा च सार्धहस्तद्वयोच्छ्रिता ।

कूटप्रस्तारकं कुर्यात् पूर्वमानेन बुद्धिमान् ॥ १११ ॥

पञ्चम्यां भुवि कुर्वीत (जङ्घा सा?) हि करद्वयम् ।
 कुर्वीत कूटप्रस्तारं तथा प्रा(गा?गु)दितो यथा ॥ ११२ ॥
 कुर्याद्दस्तद्वयोत्सेधं कपोतमपि बुद्धिमान् ।
 चतुर्भागसमुत्सेधा महाघण्टा विधीयते ॥ ११३ ॥
 उपरिष्ठाद् भवेत् तत्र प्रासादे पञ्चभूमिके ।
 कुम्भं तदूर्ध्वं कुर्वीत स्तरानेकोनविंशतिम् ॥ ११४ ॥
 संस्थानमेतत् कर्तव्यं सर्वतोभद्रसंज्ञ(कौ?के) ।
 विभाजयेद् विशेषेण ततः स्तरविभाजनात् ॥ ११५ ॥
 श्रीबन्धपीठं कर्तव्यं सार्धहस्तद्वयोच्छ्रितम् ।
 चतुर्दशस्तरं जङ्घा कर्तव्या स्तम्भसंयुता * ॥ ११६ ॥
 कर्तव्या द्विस्तरा माला लशुनं स्तरसम्मितम् ।
 विदधीत स्तरं पद्मकुम्भगण्डसमन्वितम् (?) ॥ ११७ ॥
 उच्छालं द्विस्तरं कुर्या(दिडो?) भागं विधीयते ।
 द्विस्तरं हीरकं कार्यं पट्टाश्चैव तथाविधाः ॥ ११८ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं च वसन्तं द्विस्तरं ततः ।
 वसन्तपट्टिका भागं कपोतं त्रिस्तरं ततः ॥ ११९ ॥
 छेदमेकस्तरं कुर्यात् स्तरमात्रं च मेढकम् ।
 मकरं भागमेकं च भागं (चराल?)पट्टिका(म्) ॥ १२० ॥
 कुर्वीत भागिकं छेदं ततः कण्ठं च भागिकम् ।
 कण्ठं छेदं ततः कण्ठं च + + + + भागिकम् ॥ १२१ ॥
 (वाख्यापट्टिकां?) भागं वेदीं विचक्षणः ।
 कुर्वीत भागिकं छेदं ततः कण्ठं स्तरद्वयम् ॥ १२२ ॥
 स्तरं स्तरं प्रकुर्वीत पट्टिका पद्मपट्टिका ।
 कूटप्रस्तारके कुर्यान्मकराननपञ्चकम् ॥ १२३ ॥
 विचित्ररूपं सर्वासु दिक्षु सर्वगुणान्वितम् ।
 ऊर्ध्वतः पट्टिकायास्तु घण्टा पञ्चस्तरा भवेत् ॥ १२४ ॥

नासिकाभिर्विचित्राभिरत्युदाराभिरन्विता ।

भद्राणि यस्य दृश्यन्ते कूटे कूटे समन्ततः ॥ १२५ ॥

स सर्वतोभद्र इति प्रासादः शिल्पिनां मतः ।

अवलम्बेन तदनु स्तम्भच्छेदं प्रकल्पयेत् ॥ १२६ ॥

स्तम्भत + + + त्रेण समानं भुवि सूत्रयेत् ।

मेढस्य निर्गमे दद्यादङ्गुलद्वितयं बुधः ॥ १२७ ॥

पञ्चाङ्गुलानि कर्तव्यस्ततो मकरनिर्गमः ।

सूत्रयेत् समसूत्रेण ततो मेढक(स्य?)पट्टिका ॥ १२८ ॥

षडङ्गुलप्रवेशस्तु कार्यश्छेदस्य धीमता ।

यथा प्रवेश + + + छेदस्यापि तथा भवेत् ॥ १२९ ॥

अङ्गुलद्वितयं कार्यः पट्टिकाया विनिर्गमः ।

विनिर्गमो वेदिकाया विधातव्यः षडङ्गुलः ॥ १३० ॥

अङ्गुलद्वयनिष्क्रान्ता विधेया कण्ठपट्टिका ।

पद्माख्यानिर्गमं कुर्यादङ्गुलत्रितयं ततः ॥ १३१ ॥

अङ्गुलानि ततः पञ्च योनि + निर्गमो भवेत् ।

घण्टा त्विह विधातव्या सर्वालङ्कारभूषिता ॥ १३२ ॥

(भेद?)स्ततः स्याद् भवति भूमिका तस्य चोपरि ।

द्विती(या?)भूमिकाजङ्घा (सद्यः?) स्यादष्टभिः स्तरैः ॥ १३३ ॥

मालाचैर्लशुनं चैकं भरणं कलशस्तथा ।

यथा माला तथोच्छालं वीरगण्डं स्तरं भवेत् ॥ १३४ ॥

उच्छालहीरके पट्टसमे कुर्याद् विचक्षणः ।

पट्टिका भागिकोत्सेधा वासन्तं + + का तथा ॥ १३५ ॥

कपोतं त्रिस्तरोत्सेधं (छेदो?) सत्र्यंशवर्जितम् ।

छेदस्यार्धे भवेन्मेढो मकरः पट्टिका तथा ॥ १३६ ॥

ततश्छेदं (त्र) कण्ठं च + + + पट्टिकां तथा ।

मालार्धेन प्रकुर्वीत छेदमेव ततो बुधः ॥ १३७ ॥

पुनः कण्ठं प्रकुर्वीत हीरके(गो^७ण) समन्वितम् ।
 पट्टिका पञ्चपूर्वा च त्रिभा(गो^७गे)न कपोतके ॥ १३८ ॥
 कुर्याच्चतुःस्तरां घण्टां द्वाभ्यां कुम्भं तथोपरि ।
 पुनश्छेदो भवेद् भागं जङ्घां कुर्वीत सप्तभिः ॥ १३९ ॥
 (सीतमाठा?) विधातव्या मालो(च्यु^७च्यो) द्विस्तरो भवेत् ।
 लशुनं भरणं कुम्भो गण्डश्चेति स्तरं स्तरम् ॥ १४० ॥
 गण्डद्विगुणमुच्छालं हीरपट्टस्तथैव च ।
 पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तपट्टिकास्य च ॥ १४१ ॥
 पीठं द(श)गुणं कुर्याच्छेदमेण्डौ स्तरं स्तरम् ।
 स्तरं कुर्वीत (रंकर^७) (तथा) मकरपट्टिकाम् ॥ १४२ ॥
 स्तरं छेदं च कण्ठं च पट्टिकां वेदिकां तथा ।
 छेदं कुर्यात् पुनर्भागं कण्ठं तद्द्विगुणं ततः ॥ १४३ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं स्याद् वसन्तपट्टिका स्तरम् ।
 चतुःस्तरा भवेद् घण्टा (प्राग्ग्राचकभूषिता?) ॥ १४४ ॥
 तस्योपरि पुनः कुम्भं घण्टार्धेनैव कारयेत् ।
 छेदं भागं विजानीयाज्जङ्घा सप्तांशिका स्मृता ॥ १४५ ॥
 माला द्विभागिका कार्या भागिकं लशुनं भवेत् ।
 भरणं कुम्भकं गण्डं कुर्याल्लशुनवद् बुधः ॥ १४६ ॥
 उच्छालं गण्डकं चैव हीरकान्तं च भागिकम् ।
 सार्धं भागं भवेत् ++ पट्टिकार्धं स्तरं भवेत् ॥ १४७ ॥
 ++ तं भागमेकं स्याद् वसन्ताख्या च पट्टिका ।
 कपोतं त्रिस्तरं कुर्यान्नासायुक्तं विचक्षणः ॥ १४८ ॥
 छेदमंशेन कुर्वीत (मैण्डमंशेन?) कारयेत् ।
 मकरे पट्टिकां छेदं विदधीत स्तरं स्तरम् ॥ १४९ ॥
 कुर्वीत भागिकं (कण्ठं) पट्टिकां वेदिकामपि ।
 भागं कुर्यात् पुनश्छेदं ततः कण्ठं द्विभागिकम् ॥ १५० ॥

१. 'मकरम्' इति स्यात् । २. 'प्राग्ग्राचकभूषिता' इति स्यात् । ३. 'मैण्डमंशेन' इति स्यात् ।

पट्टिका पद्मपूर्वा च विधातव्या स्तरं स्तरम् ।

कुर्वीत घण्टामुपरि चतुर्भागां विचक्षणः ॥ १५१ ॥

तदर्धमूर्ध्वतः कुम्भं छेदमर्धेन तस्य च ।

जङ्घा षड्भागिका कार्या (मात्ता गेन सुन कारयेन?) ॥ १५२ ॥

लशुनं भरणं कुम्भं गण्डमुच्छाल(वाड?)के ।

हीरकं चेति कुर्वीत भागिकानि पृथक् पृथक् ॥ १५३ ॥

सार्धभागं भवेत् पट्टः पट्टिकार्धस्तरोच्छ्रिता ।

वसन्तं भागमेकं स्याद् वसन्ताख्या च पट्टिका ॥ १५४ ॥

कपोतं त्रिस्तरं कुर्याच्छेदं (त्र्यंशोनशंसकाम्?) ।

मण्डको मकरश्चैव पट्टिका छेदकण्ठकौ ॥ १५५ ॥

कण्ठं पट्टी च वेदी च च्छेदश्च स्यात् स्तरं स्तरम् ।

द्वितीयो द्विस्तरः कण्ठो भागिकी पट्टिका भवेत् ॥ १५६ ॥

तथैव पद्मसंज्ञा च स्यादुच्छायेण पट्टिका ।

घण्टां कुर्याच्चतुर्भागां कुम्भमर्धेन तस्य च ॥ १५७ ॥

छेदमेकेन भागेन जङ्घाम+र्धभागिकीम् ।

माला(मे)केन भागेन लशुनं सार्धभागिकम् ॥ १५८ ॥

तथैव भरणं कुर्यात् कुम्भोच्छाले स्तरं स्तरम् ।

हीरकं भागिकं कुर्यात् पट्टं सार्धस्तरं ततः ॥ १५९ ॥

पट्टिकार्धस्तरं कार्या वसन्तं च स्तरं ततः ।

कपोतं द्विस्तरं कुर्याद् वेदीमर्धस्तरं तथा ॥ १६० ॥

यथा छेदस्तथा मण्डो मकरश्च विधीयते ।

पट्टिकार्धस्तरं कार्या छेदोऽप्यर्धस्तरं भवेत् ॥ १६१ ॥

भागं कण्ठः पट्टिका च वेदी कार्या द्विभागिकी ।

छेदो भागेन कर्तव्यः कण्ठश्चान्यस्त्रिभागिकः ॥ १६२ ॥

पट्टिकां पद्मपत्रीं च विदधीत स्तरं स्तरम् ।

तुङ्गस्य चलनं कार्यं द्विभागिकमनन्तरम् ॥ १६३ ॥

घण्टा कार्या समुत्सेधा(त्) त्रयस्त्रिंशद्विभागिकी ।
सर्वतोभद्रसंयुक्ता चन्द्रशालाविभूषिता ॥ १६४ ॥

कुर्वीत त्रिस्तरं पद्मं चित्रपत्रसमन्वितम् ।
तस्योपरि (भवेत्) कुम्भश्चतुर्दशविभागिकः ॥ १६५ ॥

ग्रीवा द्विभागिका कार्या कर्णश्चैव तथाविधः ।
बीजपूरं ततः कार्यं (सांशो)भासंयुक्तमर्धतः ॥ १६६ ॥

पद्मचक्रं त्रिशूलं वा विधातव्यं यथोचितम् ।
सोत्तुङ्गप्राससंयुक्तं ++ मकरमेढकैः ॥ १६७ ॥

सोत्तुङ्गकूटके कुर्यादेवं दिक्षु विदिक्षु च ।
भूमौ भूमौ विधातव्या शाला साध्यलतोरणम् (?) ॥ १६८ ॥

कोणे कोणे च (१ + कग) भद्रे करि(क्य?क)रानपि ।
++ कूटस्त्रिभिर्युक्तं चतुर्भिश्च जलान्तरैः ॥ १६९ ॥

कुर्वीत सर्वतोभद्रमेवंलक्षणलक्षितम् ।
एवं पद्मो महापद्मः स्वस्तिको वधमानकः ॥ १७० ॥

सर्वतोभद्र इत्येते समारभ्यैकभूमिकान् ।
पञ्चभूमिकपर्यन्तं कार्याः साधारणक्रियाः ॥ १७१ ॥

एतैर्विंशतिभागैश्च प्रासादाः पूर्वमूचिताः ।
पीठादारभ्य घण्टान्तं पञ्चते लक्षणान्विताः ॥ १७२ ॥

षड्भूमिकादि(को?कं) ब्रूमो यावद् द्वादशभूमिकम् ।
पञ्चभूमिकः ॥

अथ षड्भूमिकान्तं त्रिंशद्धस्तं प्रचक्ष्महे ॥ १७३ ॥

चत्वारिंशत्कराः सैकास्तस्योच्छ्रायो विधीयते ।
पीठं प्रकल्पयेत् तस्य सार्धहस्तद्वयोच्छ्रितम् ॥ १७४ ॥

जङ्घा समुच्छ्रये कार्या सार्धहस्तचतुष्टयम् ।
कूटप्रस्तारमस्याहुः (सो/सा)र्धहस्तोच्छ्रितं बुधाः ॥ १७५ ॥

जङ्घा द्वितीया तु भवेत् तस्य हस्तचतुष्टयम् ।
 द्वितीयकूटस्योत्सेधं सार्धहस्तं प्रकल्पयेत् ॥ १७६ ॥
 घण्टा तृतीया चतुरो हस्तास्तार्धाद्विवर्जिता(?) ।
 तृतीयकूटप्रस्तारं कुर्याद् भूयोऽपि पूर्ववत् ॥ १७७ ॥
 जङ्घा भवेच्चतुर्थी+(स सार्धा त्रे?) करत्रयम् ।
 पूर्वमानेन कुर्वीत कूटप्रस्तारमूर्ध्वतः ॥ १७८ ॥
 हस्तत्रयं विधातव्या जङ्घोच्छ्रायेण पञ्चमी ।
 कूटप्रस्तारकं कुर्यात् सार्धहस्तोच्छ्रितं ततः ॥ १७९ ॥
 ष(ष्ट)िष्टी) हस्तत्रयं जङ्घा पादहीनं विधीयते ।
 प्राग्वत् प्रस्तारकूटं तु कपोतं त्रिकरोच्छ्रितम् ॥ १८० ॥
 तस्योपरि भवेद् घण्टा हस्तपञ्चकमुच्छ्रिता ।
 कर्तव्यं पद्ममुपरि सुविचित्रं षडङ्गुलम् ॥ १८१ ॥
 कुर्याद् भागैकविंशत्या कुम्भमा(द्भरणैतम्?भरणैर्युतम्) ।
 षड्भूमिकोऽयमाख्यातः कथ्यते सप्तभूमिकः ॥ १८२ ॥

षड्भूमिकः ॥

पञ्चत्रिंशत्करः प्रोक्तो विस्तारात् स(म?प्त)भूमिकः ।
 सार्धात्तेकान्नपञ्चाशत्कर्णं नित्योच्छ्रिता करात्(?) ॥ १८३ ॥
 त्रिहस्तं पीठमुत्सेधाज्जङ्घा पञ्चकरोच्छ्रिता ।
 सार्धहस्तोच्छ्रितः कूटप्रस्तारो(ऽस्य) विधीयते ॥ १८४ ॥
 द्विहस्तो वेदिकाबन्धो जङ्घोच्छ्रायश्चतुष्करः ।
 सार्धहस्तसमुत्सेधः कूट(वि?प्र)स्तार इष्यते ॥ १८५ ॥
 सार्धहस्तोच्छ्रिता वेदी जङ्घा सार्धकरत्रयम् ।
 सार्धहस्तोच्छ्रितः कूट(ः?)प्रस्तारः परिकीर्तितः ॥ १८६ ॥
 सपादहस्ता वेदी स्याज्जङ्घा (ख्यंशं?ज्यंशं) करत्रयम् ।
 सार्धहस्तस्तु कूटस्य प्रस्तारः स्यात् समुच्छ्रयात् ॥ १८७ ॥
 हस्तं स्याद् वेदिकाबन्धो जङ्घांशो हि करद्वयम् ।
 सपादहस्तः कूटस्य प्रस्तारो वेदिका करम् ॥ १८८ ॥

पादोनद्विकरा जङ्घा कूटं पादयुतः करः ।
 हस्तमात्रोच्छ्रिता वेदी जङ्घा सार्धकरोच्छ्रिता ॥ १८९ ॥
 कूटप्रस्तारको हस्तं कपोतः स्यात् करत्रयम् ।
 सप्तबशीर्षघण्टा तु सार्धं स्याद्वस्तपञ्चकम् ॥ १९० ॥
 एवमेष समुद्दिष्टः प्रासादः सप्तभूमिकः ।

सप्तभूमिकः ॥

अथाष्टभूमिकं ब्रूमः प्रासादं शुभलक्षणम् ॥ १९१ ॥
 चत्वारिंशत्करांस्तस्य विस्तारं परिकल्पयेत् ।
 उच्छ्रायः सप्तपञ्चाशत् कराः स्युः(स्त्रिंस्त्र्यं)शवर्जिताः ॥ १९२ ॥
 नवहस्तान् प्रकुर्वीत सार्धान् प्रथमभूमिकाम् ।
 द्वितीयाष्टौ (सपादोर्धाः)स्तृतीयाष्टौ करान् भवेत् ॥ १९३ ॥
 चतुर्थी सप्तहस्ता तु षट्करा पञ्चमी भवेत् ।
 पञ्चहस्ता ततः षष्ठी चतुर्हस्ता तु सप्तमी ॥ १९४ ॥
 ततोऽष्टमी त्रिहस्ता स्याद् वेदीबन्धः करद्वयम् ।
 घण्टां चतुष्करां कुर्यादेवं स्यादष्टभूमिकः ॥ १९५ ॥

अष्टभूमिकः ॥

अथोच्यते हस्तमानात् प्रासादो नवभूमिकः ।
 विस्तारादेकपञ्चाशदुच्छ्रित्या स्याद् द्विसप्ततिः ॥ १९६ ॥
 कर्णप्रमाणं (तस्योक्ता विस्तारोऽस्य चनुच्छ्रितिः) ।
 पञ्चहस्ता भवेद् घण्टा वेदिबन्धस्तदर्धतः ॥ १९७ ॥
 कुर्याद्वस्तत्रयं सार्धं नवमीमस्य भूमिकाम् ।
 अष्टमीं चतुरः सार्धान् सपादान् पञ्च सप्तमीम् ॥ १९८ ॥
 षष्ठीं षट् पादहीनांश्च (सपादोनामः) पञ्चमीम् ।
 अष्टौ चतुर्थी पादोनान् हस्ता(त्रैचः) तृतीयकाम् ॥ १९९ ॥

विलोमेनै(कःप) कथितः प्रासादो नवभूमिकः ।

नवभूमिकः ॥

इदानीमभिधास्यामः प्रासादं दशभूमिकम् ॥ २०० ॥

एकोनाशीतिरुत्सेधः सपादा विस्तृतिः पुनः ।

षट्पञ्चाशत्कराः कर्णमानाद् ब्रूमोऽथ भागशः ॥ २०१ ॥

एकादशकरोत्सेधा कार्या प्रथमभूमिका ।

सार्धान् दश द्वितीया स्यात् तृतीया तु करान् दश ॥ २०२ ॥

सार्धानष्टौ चतुर्थी तु सप्त(सार्धस्वर्धस्तु) पञ्चमी ।

षष्ठी सप्तकरा प्रोक्ता सप्तमी षट्करा भवेत् ॥ २०३ ॥

पञ्चहस्ताष्टमी ज्ञेया नवमी तु चतुष्करा ।

त्रिहस्ता दशमी कार्या वेदी सांशं करद्वयम् ॥ २०४ ॥

++++ प्रमाणेन सार्धं करचतुष्टयम् ।

एवमेष समुद्दिष्टो विन्यासो दशभूमिके ॥ २०५ ॥

दशभूमिकः प्रासादः ॥

ब्रूमः (समासादभीथैः)कादशभूमिकम् ।

पञ्चषष्टिकरः कार्यो द्विनवत्युच्छ्रित(श्च) सः ॥ २०६ ॥

कर्णमानेन विज्ञेयः प्रासादः शास्त्रवेदिभिः ।

प्रथमा भूमिका तस्य चतुर्दशकरा भवेत् ॥ २०७ ॥

द्वितीया द्वादशार्धं च तृतीयैकादशोच्छ्रिता ।

नव सार्धाश्चतुर्थी स्यात् सपादानष्ट पञ्चमी ॥ २०८ ॥

सप्तहस्ता भवेत् षष्ठी षड्हस्ता सप्तमी ततः ।

पञ्चहस्ताष्टमी सार्धाश्चतुरो नवमी करान् ॥ २०९ ॥

चतुर्हस्ता तु दशमी सार्धमेकादशी त्रयम् ।

सपादद्विकरा वेदी घण्टा सार्धचतुष्क(सांशे) ॥ २१० ॥

प्रासादः कथितः सम्यगित्येकादशभूमिकः ।

एकादशभूमिकः ॥

ब्रूमो द्वादशभौमं स सप्तषष्टिकरायतः ॥ २११ ॥

उच्छ्रायात् पञ्चनवतिहस्तः स्यात् कर्णमानतः ।
 आद्या चतुर्दशकरा भूमिकास्य विधीयते ॥ २१२ ॥
 द्वितीयैकादशकरा(न) तृतीयार्धयुता(न्) दश ।
 दश हस्तांश्चतुर्थी स्यादष्टौ सार्धास्तु पञ्चमी ॥ २१३ ॥
 सार्धसप्तकरा षष्ठी सप्तहस्ता च सप्तमी ।
 अष्टमी षट्करा पञ्चहस्ता तु नवमी भवेत् ॥ २१४ ॥
 दशमी स्याच्चतुर्हस्ता त्रिहस्तैकादशी क्षितिः ।
 द्वादशी द्वौ करौ सार्धौ वेदीबन्धः करद्वयम् ॥ २१५ ॥
 चतुर्हस्ता भवेद् घण्टा सर्वालङ्कारभूषिता ।
 स्तम्भकर्णस्य मानेन कुम्भं कुर्याद् विचक्षणः ॥ २१६ ॥
 उच्छालं द्विगुणं स्तम्भात् (हीरसार्धसङ्गुणाम्?) ।
 इत्येते द्राविडाः सम्यक् प्रासादा द्वादशोदिताः ॥ २१७ ॥
 एषां पञ्चमहापद्मस्वस्तिका वर्धमानकः ।
 सर्वतोभद्र (लता?)स्तलबन्धान् निवेशयेत् ॥ २१८ ॥
 (आरभ्यन्तामरेकस्या च?) द्वादशभूमिका(त्) ।
 ऊर्ध्वमानं च कर्तव्यं सामान्यं तेषु पञ्चसु ॥ २१९ ॥
 द्वादशभूमिकः ॥

(पीठमूल?)च्छन्दकभूमिकाभि-

र्विनिर्मिता द्राविडनामधेयाः ।

प्रासादमुख्याः कथिता(यथा यथा-

वेत्यं स्वल्पिभिर्ब्रूयतेऽसौ ?) ॥ २२० ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

द्राविडप्रासादाध्यायो नाम द्विषष्टितमः ॥

—:०:—

१. 'हीरं सार्धगुणान्वितम्' इति स्यात् । २. 'इत्येतां' इति पाठः स्यात् ।
 ३. 'आरभ्य भूमेरकस्या आ च' इति स्यात् । ४. 'पीठैस्तल' इति स्यात् ।

अथ मेर्वादिविंशिकानां प्रासादलक्षणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

-----:०:-----

अधुना नागरान् ब्रूमः प्रासादान् नामलक्षणैः ।

मेरुमन्दरकैलासाः कुम्भोऽथ मृगराट् गजः ॥ १ ॥

विमानच्छन्दसंज्ञश्च चतुरश्रस्तथापरः ।

अष्टाश्रिः षोडशाश्रिश्च वज्रुलः सर्व(तोद्?भद्र)कः ॥ २ ॥

सिंहास्यो नन्दनो नन्दिवर्ध(मा?)नो हंसको वृषः ।

(गुरुत्सा?गुरुडः) पद्मकाव्यश्च समुद्र इति विंशतिः ॥ ३ ॥

नागराणामिति प्रोक्ता प्रासादानां समासतः ।

शत(मुद्र?)श्चतुर्द्वारः षोडशक्षितिरूर्ध्व(तः) ॥ ४ ॥

विचित्रशिखराकीर्णो मेरुः प्रासाद उच्यते ।

मन्दरो द्वादशतलः कैलासो नवभूमिकः ॥ ५ ॥

अनेकशिखरश्चित्रश्चतुर्द्वारो महोच्छ्रितिः ।

विमानच्छन्दकस्त्वष्टभूमिकः परिकीर्तितः ॥ ६ ॥

विंशत्यण्डकसंयुक्तः सप्तभूर्नन्दिवर्धनः ।

षड्भूमिर्नन्दनः कार्यः प्रासादः षोडशाण्डकः ॥ ७ ॥

पञ्चभूः सर्वतोभद्रो भद्रशालाविभूषितः ।

अनेकशिखराकीर्णः कर्तव्यः प्रचुराण्डकः ॥ ८ ॥

वलभिच्छन्दकः कार्यो देवतानां (ए?)वृषः सदा ।

वृषस्तु स्वोच्छ्रितेस्तुल्यः सर्वतः स्वस्ति वर्तितः ॥ ९ ॥

मण्डलं (?) स तु विज्ञेय एकाण्डकविभूषितः ।

सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेयो गजो गजसमाकृतिः ॥ १० ॥

कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद् भूमिकानवकोच्छ्रितः ।

अञ्जलीपुटसंस्थानः पञ्चाण्डकविभूषितः ॥ ११ ॥

षोडशाश्रिः समन्ताच्च विज्ञेयः स समुद्रकः ।
 पार्श्वयोश्चन्द्रशाला च उच्छ्रायात् स द्विभूमिकः ॥ १२ ॥
 तथाष्टाश्रिः पद्मनिभो भूमिकात्रयमुच्छ्रितः ।
 षोडशाश्रिः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः ॥ १३ ॥
 मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालाविभूषितः ।
 प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिका(स यदु?सु य उ)च्छ्रितः ॥ १४ ॥
 अनेकचन्द्रशालस्तु गजः प्रासाद उच्यते ।
 पर्यस्तो मृगराजस्तु गरुडो नाम नामतः ॥ १५ ॥
 सप्तभूम्युच्छ्रितस्तद्वचन्द्रशालात्रयान्वितः ।
 अश्रिभिः(१)विहरं तस्य(२) पट्भिर्युक्तः समन्ततः ॥ १६ ॥
 स्यादन्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्राये दशभूमिकः ।
 पद्मकः षोडशाश्रिः स्याद् भूमिकाद्वितयाधिकः ॥ १७ ॥
 पद्मतुल्यप्राणन(?)वायुक्षश्चतुरश्रकः ।
 पञ्चाण्ड(मे?ए)कभूमिस्तु ग र्भ(र्भो) हस्तचतुष्टयम् ॥ १८ ॥
 वृषो भवति ना(त्रायं?)प्रासादः सर्वकामिकः ।
 सप्तकापश्चकाभूमिप्रासादो(?)य इहोदिताः ॥ १९ ॥
 (३)दिंस्य(?)ते समा ज्ञेया ये चान्ये तत्प्रमाणकाः ।
 विचित्रशिखराः कार्याश्चन्द्रशालाविभूषिताः ॥ २० ॥
 सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुक्ताः कर्तव्यास्तोरणान्विताः ।
 ऐष्टिका दारवा यद्वा शैलजा वाजनाकुलाः ॥ २१ ॥
 स्यात् पञ्चाशत्करान्मेरुमूत्रलिङ्गं नवोदयान् (?) ।
 गर्भास्तु द्विगुणा लिङ्गाद् भित्तयः स्युश्चतुष्कराः ॥ २२ ॥
 अन्धारिका हस्तपदकं विधातव्या समन्ततः ।
 अन्धारिकां च कुर्वीत बाहाभित्तिं विचक्षणः ॥ २३ ॥
 अयं साधारकः प्रोक्तो मेरुः सप्तगुणान्वितः ।
 प्रासादानां तथान्येषां गर्भो (लिङ्गदिशंगुणः?) ॥ २४ ॥

प्रासादगर्भमुत्सृष्टं यच्छेषं तेन कल्पयेत् ।
 सहान्धारिकया स(र्वा?र्व) समभागेन पूर्ववत् ॥ २५ ॥
 मे(वा?र्वा)द्या ये विमानान्ताः (सं+?)पूर्वं प्रकीर्तिताः ।
 शस्तास्ते (मृज्य?)लिङ्गानामन्येषां तु भयाव(हम्हाः) ॥ २६ ॥
 वावृक्षमुख्या ये तूक्ता नन्दिवर्धनपश्चिमाः ।
 (तष्टो?तेऽष्टौ) शुभा मध्यमानामन्येषां दुःखदाः स्मृताः ॥ २७ ॥
 हंसादयः समुद्रान्ताः पञ्च ये समुदाहृताः ।
 प्रशस्तास्ते समुद्दिष्टा लिङ्गानां (विधीयसा?) ॥ २८ ॥
 मन्दरस्तु करात् कार्यश्चत्वारिंशत्तु + + + ।
 + + + + + लासो विमानोपरोष्टिताः (?) ॥ २९ ॥
 हस्तद्वात्रिंशता कार्यः प्रासादो नन्दिवर्धनः ।
 हस्तांस्तु नन्दनस्त्रिंशत् सर्वतोभद्र एव च ॥ ३० ॥
 अष्टाविंशतिमष्टा(भिः?श्रिः) षोडशा(श्रि)स्त्रिभिर्विना ।
 वर्तुलः पञ्चकः श्वेतो विमानच्छन्द एव च ॥ ३१ ॥
 एते द्वादशहस्ताः + कार्या विंशतिहस्तकां (?) ।
 गजः सिंहश्च कुम्भश्च बलभीच्छन्द(क)स्तथा ॥ ३२ ॥
 चत्वार एते तुल्याः स्युर्हस्तोन्मेडसमानतः (?) ।
 वावृक्षो मृगराजश्च विमानच्छन्द एव च ॥ ३३ ॥
 एते द्वादशहस्ताः(स्युः) प्रमाणेन पृथक् पृथक् ।
 दशहस्तो भवेद् वा स गरु(ते?डोऽ)ष्टकरः स्मृतः ॥ ३४ ॥
 एतैः प्रमाणैः प्रासादा(न्) कुर्यादित्यपरे स्थिताः ।
 एकहस्ता द्विहस्ताश्च (त्रि)हस्ता ये च कीर्तिताः ॥ ३५ ॥
 यक्षनागग्रहादीनां विधेया रक्षसां च ते ।
 विधिरेष समुद्दिष्टः प्रासादानां समासतः ॥ ३६ ॥
 विशेषेण पुनर्ब्रूमो विमानं शुद्धपुष्पकम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पञ्चत्रिंशद्विभाजिते ॥ ३७ ॥

मेर्वादिविंशिकानागरप्रासादलक्षणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः । १७१

रथिका पञ्चभागा स्याद् द्विभागं सलिलान्तरम् ।
(कूट?)त्रिभागं पञ्जरं कुर्यात् प्राग्ग्रीवकविभूषितम् ॥ ३८ ॥

जलान्तरं द्वितीयं तु तदपि स्याद् द्विभागिकम् ।
शल्लिकादशभागा तु पूर्ववत् सलिलान्तरम् ॥ ३९ ॥

त्रिभागं पञ्जरं कुर्याद् द्विभागं सलिलान्तरम् ।
कूटं पञ्चकरं प्रान्ते दिक्षु तर्वास्वयं विधिः ॥ ४० ॥

नागरोऽयं तलच्छन्दः प्रासादे शुद्धपुष्पके ।
जङ्घा सपीठा क्षेत्रार्धविस्तारसदृशोदया ॥ ४१ ॥

सार्धेद्वितीया दशभिस्तृतीया नवभिः करैः ।
अष्टहस्ता चतुर्थी स्यात् सप्तहस्ता तु पञ्चमी ॥ ४२ ॥

पष्ठी तु भूमिका कार्या प्रमाणेनास्य पटकरा ।
सप्तमी पञ्चहस्ता तु (चतु)र्हस्ता ततोऽष्टमी ॥ ४३ ॥

त्रिहस्तं वेदिकावन्धं विचित्रं कारयेद् बुधः ।
विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रायः स्कन्धोऽयं (वेदिकावन्ध?) ॥ ४४ ॥

स्कन्धादध्वं भवेद् घण्टा यदि वामलसारकम् ।
तद् वर्तुलं शुभं कार्यं घण्टा स्कन्धार्धमुच्छ्रिता ॥ ४५ ॥

घण्टाविस्तार(तः) कुम्भं चतुर्थांशेन कारयेत् ।
प्रमाणं समुदायेन भूमिकानामुदाह(ता?तम्) ॥ ४६ ॥

एकैक(स्या?स्य)विशेषेण प्रविविच्याधुनोच्यते ।
प्रमाणेन विधातव्या (स्वकारा?)भूमिरङ्गिका ॥ ४७ ॥

(यं हस्तं तु?) खुरकं द्विभागा पद्मपत्रिका ।
भागिका (कणकयास्वयंशं?) कुमुदं छेद एव च ॥ ४८ ॥

व्यंशस्तद्विगुणः कण्ठः किङ्किणीपल्लवान्वितः ।
तस्यार्धं पट्टिका कार्या तत्समा गिरिपत्रिका ॥ ४९ ॥

(भात्र्यंशावरण्डीतमध्ये पच्छीतलार्धभागिकी?) ।
पूर्वप्रोक्तेन कण्ठेन समसूत्रा च सा भवेत् ॥ ५० ॥

छेदं तद्धूर्ध्वं कुर्वीत स्तरमेकं विचक्षणः ।
 पुनः कण्ठः प्रदातव्यो भागद्वितयवम्मितः ॥ ५१ ॥
 पट्टिका स्तरमेकं तु तत्समा गिरिपत्रिका ।
 चतुर्गुणाथ त्रिगुणा कार्या विधिति लङ्कनासिका ॥ ५२ ॥
 स्तम्भद्वितयमध्ये तु पञ्चाल्यं कर्म कारयेत् ।
 शोभनं तत्तु कर्तव्यं युक्तं तिलकना म'स)या ॥ ५३ ॥
 पुनश्छेदः प्रदातव्यः पूर्वमानेन धीमता ।
 जङ्घा सप्तस्तरा मेढा वरण्डी त्रिस्तरोर्ध्वतः ॥ ५४ ॥
 भवेदधस्ताज्जङ्घायास्त्रिस्तर(स्तरल')कुम्भकः ।
 घण्टा(प'म)ण्टपसंयुक्ता माला स्यात् (पंथरान्?) ततः ॥ ५५ ॥
 अर्धेन तस्या लशुनं स्तरेण भरणं भवेत् ।
 कुर्वीत द्विस्तरं कुम्भं गण्डमेकस्तमं ततः ॥ ५६ ॥
 उच्छालं द्विस्तरं कुर्याद् वीरगण्डं ततः स्तरम् ।
 द्विस्तरः स्यात् ततः (पट्टः) पट्टस्थार्धेन पट्टिका ॥ ५७ ॥
 तत्समा गिरिपत्री च वरण्डी त्रिस्तरा ततः ।
 स्तम्भस्योर्ध्वं विधातव्या मनोज्ञा (अयं?)धर्पादिका ॥ ५८ ॥
 स्तरमेकं ततश्छेदस्ततः कण्ठः स्तरत्रयम् ।
 पट्टिका स्तरमेकं स्यात् तत्समा गिरिपत्रिका ॥ ५९ ॥
 वरण्डीं त्रिस्तरां कुर्यादधर्प(स?स्त)रसंयुतम् ।
 पुनश्छेदः स्तरं कार्यः कण्ठस्तेन समस्ततः ॥ ६० ॥
 तत्समा गिरिपत्री च अंशमामलभाक्कम् ।
 ततश्छेदं च कण्ठं च गिरिपत्रीं वरण्डिकाम् ॥ ६१ ॥
 पूर्वमानेन कुर्वीत छेदकम्पे तथा पुनः ।
 गिरिपत्रीं स्तरं कुर्यात् (अंशक्तखरं कनतः?) ॥ ६२ ॥
 छेदं कण्ठं पत्रिकां च (प्रास्तरमेकं ततश्छेदकं कुर्यात् पुनर्बुधः?) ।
 वरण्डीं त्रिस्तरां कुर्यादधर्पस्तरसंयुतम् । ६३ ॥

छेदं कण्ठं च पीठं च (प्राग्भवामलसारकण्ठं कुर्यात् तथापरम्?) ।

पूर्ववद् गिरिपत्रीं च द्विस्तरं वदिकां ततः ॥ ६४ ॥

छेदं कुर्यात् तदर्धं च ततः कण्ठं स्तरद्वयम् ।

गिरिपत्रीं ततः कुर्यात् स्तरमेकं सुशोभनाम् ॥ ६५ ॥

चतुरश्रप्रमाणं च कुर्यादामलसारकम् ।

पद्मपत्रं तु तस्यार्धमुपरिष्ठात् प्रकल्पयेत् ॥ ६६ ॥

चतुःस्तरो भवेत् कुम्भः स्तरं कण्ठस्ततो भवेत् ।

स्तरमेकं ततः कर्णौ द्विस्तरं बीजपूरकम् ॥ ६७ ॥

चतुर्भिः कूटविस्तारं ततो (भागे विराजयेत्?) ।

द्विभागं मञ्जरी कार्या (स्त?शू)रसेनैरलङ्कृता ॥ ६८ ॥

वरण्डिकाख्यो बन्धश्च भागं भागं (भागं?) भवेत् ततः ।

विस्तारं(रं?राद्) मूलमञ्जर्याः शुकनासां प्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥

अथ निर्णयिते द्वयर्थपादाख्यं तत्र विस्तृतिः ।

उच्छ्रायाद् द्विगुणा कायो पञ्चभागक्रमोऽथवा ॥ ७० ॥

शूरसेनोऽथवा कार्यः शुकनासास्त्रि(वे?धे)त्यसौ ।

कृत्वा त्रिभागमुच्छ्रायं (च?म)करं चोर्ध्वभागिकम् ॥ ७१ ॥

स्तम्भयुक्तं गुणद्वारं (स्योतस्थोधिः संप्रताम्?) ।

अर्धप्र(श?)स्तरसंयुक्तं कुर्यात् + पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ७२ ॥

कर्तव्यं गर्भकूटं वा शुभं तत्र विपश्चिता ।

द्वितीयभूमिकायां तु पीठं सा(स्त?र्ध)दशस्तरम् ॥ ७३ ॥

(मेलान्ततोवती?) जङ्घा माला कार्या चतुःस्तरा ।

लशुनं द्विस्तरं प्रोक्तं स्तरं भरणमिष्यते ॥ ७४ ॥

कुम्भं(?) तद्वत् प्रकर्तव्यमुच्छालं द्विगुणान्वितः(त?तम्) ।

गण्डकः स्तरमेकं स्यात् ततः षट् स्तरद्वयम् ॥ ७५ ॥

अर्धेन षट्टिका कार्या तथैव गिरिपत्रिका ।

(सू?स्त)रत्रयं वरण्डी स्याच्छूरसेनैरलङ्कृता ॥ ७६ ॥

स्तरमेकं भवेच्छेदस्ततः कण्ठः स्तरद्वयम् ।
 पट्टिका भागमेकं च तत्समं गिरिपत्रिका ॥ ७७ ॥
 त्रिभागं शिखरं कुर्याच्छेदं मे(रुः)तु भागिकम् ।
 एकं कण्ठं प्रकुर्वीत (पथिकां गिस्तरं?) विदुः ॥ ७८ ॥
 स्तरमेकं भवेत् कण्ठः पट्टिकापि च तत्समा ।
 गिरिपत्रीं च कुर्वीत भागार्धेन विचक्षणः ॥ ७९ ॥
 (द्वाः)र्धपादिकया युक्ता त्रिस्तरा स्याद् वरण्डिका ।
 छेदं कण्ठं च कुर्वीत पूर्वमानेन बुद्धिमान् ॥ ८० ॥
 पट्टिका गिरिपत्री च भागं भागं विधीयते ।
 द्विस्तरं शिखरं कुर्यात् (तथा) छेदं तु भागिकम् ॥ ८१ ॥
 एवं कण्ठं प्रकुर्वीत + + + + पट्टिकाम् ।
 वरण्डिका (द्विभास्योदकारेण?) समन्विता ॥ ८२ ॥
 छेदं कण्ठं च पत्री च गिरिवर्ती त्रिभागिका(?) ।
 प्राग्वद् (विरिहिर?) कुर्याद् यथाशोभं प्र + + + ॥ ८३ ॥
 चतुर्थी भूमिका चोर्ध्वं कर्तव्या लक्षणान्विता ।
 त्रयोदशस्तरं पीठं मध्यजङ्घा च तत्समा ॥ ८४ ॥
 चतुःस्तरा भवेन्माला तदर्धं लशुनं ततः ।
 कुम्भं तेन समं (कार्यमु?) कुर्यादुच्छालं द्विस्तरं भवेत् ॥ ८५ ॥
 तस्यार्धे गण्डकं कुर्यात् पट्टं तद्द्विगुणं ततः ।
 पट्टिका गिरिपत्री च विधातव्ये स्तरं स्तरम् ॥ ८६ ॥
 वरण्डी त्रिस्तरा कार्या छेदमेकस्तरं विदुः ।
 कुर्वीत द्विस्तरं कण्ठं तदर्धेन तु पट्टिकाम् ॥ ८७ ॥
 तत्समां गिरिपत्रीं द्वौ स्तरौ (खिरिहिरं?) ततः ।
 छेदः कण्ठः पट्टिका च गिरिपत्रीति भागिकाः ॥ ८८ ॥
 वरण्डी द्विस्तरा कार्या ततश्छेदः स्तरं भवेत् ।
 कण्ठश्च पत्रिका चेति गिरिपत्रीति भागिकाः ॥ ८९ ॥

१. 'रथिकां त्रिस्तरां' इति स्यात् । २. 'छेदः कण्ठश्च पत्री च गिरिपत्रीति भागिकाः' इति स्यात् ।

(प्राग्वकाशिखिरिहिरं) कुर्याच्छेदं पूर्वक्रमेण च ।
 द्विस्तरा तिलनासा (तु) विधातव्या विपश्चिता ॥ ९० ॥
 कुर्वीत भागिकं छेदं ततः क(ण्ठा?ण्ठं) द्विभागि(की?कम्) ।
 पट्टिकां भागमेकं च तत्समां गिरिपत्रिकाम् ॥ ९१ ॥
 घण्टा सप्तस्तरा प्रोक्ता पञ्च द्विस्तरमुच्यते ।
 द्विगुणः कलशस्तस्यां छेदं पूर्ववदाचरेत् ॥ ९२ ॥
 ऊर्ध्वं स्यात् पञ्चमी भूमिः पीठमेकादशस्त(तः?र)म् ।
 तद्व(न्मेढ्रा?) भवेज्जङ्घा माला च त्रिस्तरा ततः ॥ ९३ ॥
 सार्धस्तरं स्याल्लशुनं स्तरेण भरणं भवेत् ।
 कुम्भं गण्डकसंयुक्तं कुर्यात् सार्धस्तरं बुधः ॥ ९४ ॥
 उच्छालं द्विस्तरं प्रोक्तं स्तरं गण्डो विधीयते ।
 द्विस्तरः स्यात् (तरः?) पट्टः पट्टस्यार्धेन पट्टिका ॥ ९५ ॥
 तत्समा गिरिपत्री च त्रिस्तरा तु वरण्डिका ।
 स्तरमेकं भवेच्छेदः कण्ठस्तद्विगुणस्ततः ॥ ९६ ॥
 तदर्थं पट्टिका कार्या तथैव गिरिपत्रिका ।
 स्तर(कं?)द्वयं विरिहिरं तदर्थं छेदमाचरेत् ॥ ९७ ॥
 एवं कण्ठः पट्टिका च स्यात् तथा गिरिपत्रिका ।
 द्वौ स्तरौ तिलनासा स्याच्छेदः सार्धक(रो?रा)यतः ॥ ९८ ॥
 कण्ठं तद्विगुणं कुर्याद् भागेनैकेन पट्टिकाम् ।
 तत्समा गिरिपत्री स्याद् घण्टा पञ्चस्तरा भवेत् ॥ ९९ ॥
 कुर्वीत द्विस्तरं पञ्च शेषं पूर्वक्रमात् ततः ।
 ततो भूमिर्भवेत् षष्ठी पीठं तत्राभिधीयते ॥ १०० ॥
 द्विस्तरा भूमिरङ्गा स्या(तुलः?)खुरकस्ततः ।
 छेदो भवेत् तदर्थेन ततः कण्ठः स्तरद्वयम् ॥ १०१ ॥
 पट्टिका भागमेकं स्याद् भागं च गिरिपत्रिका ।
 वरण्डीं द्विस्तरां कुर्यात् तदर्थं छेदमादिशेत् ॥ १०२ ॥

द्वादशां(श)मि(दं?तं) पीठं जङ्घा (माट्टा?) तदर्धतः ।
 माला तु द्विस्तरा प्रोक्ता लशुनं तत्समं भवेत् ॥ १०३ ॥
 भरणं स्तरमेकं तु द्विभागः कलशो भवेत् ॥ ।
 उच्छालकं च तत्तुल्यं गण्डो भागं विधीयते ॥ १०४ ॥
 कुर्वीत द्विस्तरं पट्टं भागेनैकेन पट्टिकाम् ।
 पूर्ववद् गिरिपत्रीं ++ स्तरां तु वरण्डिकाम् ॥ १०५ ॥
 स्तरमेकं भवेच्छेदः कण्ठस्तद्द्विगुणस्ततः ।
 पूर्ववत् पत्रिके द्वे तु द्व्यंशं खिरिहिरं भवेत् ॥ १०६ ॥
 छेदः कण्ठः पट्टिका च गिरिपत्रीति भागिकाः ।
 द्विस्तरा तिलनासा स्याच्छेदः कार्यस्तु भागिकः ॥ १०७ ॥
 द्विस्तरः स्यात् ततः कण्ठो भागिका कण्ठपट्टिका ।
 भागिकी गिरिपत्री च विधातव्या ततः परम् ॥ १०८ ॥
 पञ्चस्तरा(न्) त्रिभागोना(न्) कुर्यादामलसारकम् ।
 त्रिस्तरं स्यात् ततः ++ शेषं पूर्वक्रमाद् भवेत् ॥ १०९ ॥
 पञ्चम्यां भूमिकायां तु पीठं स्याद् द्वादशस्तरम् ।
 जङ्घा पञ्चस्तरा मेढा माला च स्याद् द्विभागिकी ॥ ११० ॥
 अर्धस्तरेण लशुनं स्तरेण भ(रं?रणं) भवेत् ।
 कुम्भं गण्डेन सहितं स्तरं कुर्याद् विचक्षणः ॥ १११ ॥
 उच्छालं द्विस्तरं कुर्याद् गण्डो भागं विधीयते ।
 पट्टः सार्धस्तरः कार्यः पट्टिका तु स्तरं भवेत् ॥ ११२ ॥
 तत्समा गिरिपत्री च त्रिस्तरा तु वरण्डिका ।
 छेदो भागत्रिभोगं कण्ठस्यार्धे गुणस्ततः(?) ॥ ११३ ॥
 पत्रिके द्वे तु भागिक्यौ + स्तरा तिलनासिका ।
 अर्धप्रस्तारयुक्तासौ कार्यार्थं प्रस्तारान्विता ॥ ११४ ॥
 छेदं भागेन कुर्वीत कण्ठं तद्द्विगुणं ततः ।
 (अर्धप्रस्तरं?) पूर्ववत् पत्रिके द्वे तु घण्टा स्तरचतुष्टयम् ॥ ११५ ॥

कुर्वीत द्विस्तरं पञ्च शेषं पूर्वक्रमेण तु ।

अष्टमी भूमिका या तु सा कार्या शुभलक्षणा ॥ ११६ ॥

मेवादयो विंशतिरेवमुक्ताः

प्रासादमुख्याः ^१ + + + + + ।

भूम्यष्टकान्तास्तदिमान् विदध्यात्

स्याच्छिल्पिनां संसदि पूजनीयः ॥ ११७ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

मेवादिविंशिकानागरप्रासादभूमिजा नामाध्यायस्त्रिषष्टितमः ॥

—:o:—

अथ दिग्भद्रादिप्रासादलक्षणं नाम चतुष्पष्टितमोऽध्यायः ।

—:o:—

प्रासादमथ (वारोयं?) वक्ष्यामो नामलक्षणैः ।

लक्षणै(?)स्तेषु दिग्भद्रः श्रीवत्सो वर्धमानकः ॥ १ ॥

नन्धावर्तश्चतुर्थः स्यात् पञ्चमो नन्दिवर्धनः ।

विमानश्च तथा षष्ठो महाभद्राख्य एव च ॥ २ ॥

श्रीवर्धमानकाख्यश्च महा(पञ्चतोऽपि वा?) ।

एकादशः पञ्चशालो द्वादशः पृथिवीजयः ॥ ३ ॥

तत्र प्रागेव (दिग्भद्रः श्रावणं?) प्रतिपाद्यते ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे नवभागविभाजिते ॥ ४ ॥

कोणो द्विभागविस्तारः प्रत्यङ्गौ भागिकौ स्मृतौ ।

शाला भागत्रया कार्या नासिकात्रयशोभिता ॥ ५ ॥

परस्परं विनिष्कासमर्धभागेन कारयेत् ।

कोणप्रत्यङ्गयोरन्तः शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ॥ ६ ॥

षोडशांशेन कुर्वीत + + + सलिलान्तरम् ।

सीमा(स्याद्?स्य) दशभिर्भागैः प्रविभज्य विधीयते ॥ ७ ॥

१. 'शुभलक्ष्मयुक्ताः' इति स्यात् । २. 'वावाटम्' इति स्यात् । ३. 'पञ्चा-
भिषोऽपिवा' इति स्यात् । ४. 'दिग्भद्रलक्षणम्' इति स्यात् ।

+ + का गर्भपादैः षड् भित्तयः स्युर्द्विभागिकाः ।
 (वर्धमानेनमथ ब्रूमो?) विस्ताराद् द्विगुणं हि तत् ॥ ८ ॥
 द्वौ भागौ वेदिकाबन्धो जङ्घा ज्ञेया चतुष्पदा ।
 (शान्तापत्रा?) कपोताली सार्धभागं समुच्छ्रिता ॥ ९ ॥
 सार्धभागसमुच्छ्राया कार्या प्रथमभूमिका ।
 द्वितीया भूमिका ज्ञेया सार्धभागत्रयोदया ॥ १० ॥
 तृतीया च विधेया स्यात् सार्धभागद्वयोच्छ्रिता ।
 उच्छालकं च जङ्घा च भूमिकार्धं विधीयते ॥ ११ ॥
 कूटं (तै?) चार्धतो देयं कर्मशोभासमन्वितम् ।
 घण्टा भागत्रयोत्सेधा बहुभिश्चाश्रिभिर्युता ॥ १२ ॥
 कलशं स्थापयेदूर्ध्वं भागद्वयसमुच्छ्रितम् ।
 बीजपूरकसंयुक्तं वर्तुलं पल्लवावृतम् ॥ १३ ॥
 शिखरार्धस्य कुर्वीत सपादमुदयं तथा ।
 इमं दिग्भद्रसंज्ञं यः प्रासादं कारयेत् पुमान् ॥ १४ ॥
 शतक्रतुफलं सोऽपि लभते नात्र संशयः ।
 लक्ष्म श्रीवत्ससंज्ञस्य प्रासादस्याभिधीयते ॥ १५ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते पञ्चदशांशकैः ।
 (अस्योच्छ्रायो सकास्त्र्यंशस्त्रं क्षोणस्यादंशकैस्त्रिभिः?) ॥ १६ ॥
 कर्णशालान्तरे कार्यौ द्वयंशौ प्रतिरथावुर्भा ।
 (तयोरुभयोः सार्धं सादं तु मार्गौ निवेशयेत्?) ॥ १७ ॥
 भागमेकं प्रविष्टौ च शाला भागत्रयात्मिका ।
 निर्गमः स्यात् पदार्धेन गर्भस्तु नवभागिकः ॥ १८ ॥
 त्रिपदा च भवेद् भित्तिरूर्ध्वमस्याथ कथ्यते(?) ।
 श्रीवत्सः कीर्तितः सम्प्रत्युच्यते वर्धमानकः ॥ १९ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे + + + भागकल्पितम् ।
 छेदादि गिरिपत्र्यन्तं दद्यात् पूर्वक्रमेण(तु) ॥ २० ॥

द्विस्तरा त्रिस्तरा चापि कर्तव्या वेदिका (नर्म)ता ।
 स्तरमेकं भवेच्छेदः कण्ठस्तद्विगुणो भवेत् ॥ २१ ॥
 पट्टिकां गिरिपत्रीं च तस्यैवार्धेन कारयेत् ।
 दशस्तरा ततो घण्टा यदिवामलसारकम् ॥ २२ ॥
 द्विस्तरं स्यात् ततः पञ्च द्विगुणः कलशस्ततः ।
 तदूर्ध्वं भूमिका कार्या सपीठा लक्षणान्विता ॥ २३ ॥
 स्तरैः स्यात् पञ्चदशभिः पीठं जङ्घापि तावता ।
 चतुःस्तरा भवेन्माला लशुनं तु स्तरद्वयम् ॥ २४ ॥
 तस्या(प्य)र्धेन भरणं कुम्भं कुर्वीत तत्समम् ।
 तस्य द्विगुणमुच्छालं गण्डमेकस्तरं भवेत् ॥ २५ ॥
 पट्टं द्विगुणमेतस्मात् कुर्यादर्धेन पट्टिकाम् ।
 पट्टिकायाः प्रमाणेन कर्तव्या गिरिपत्रिका ॥ २६ ॥
 वरण्डी त्रिस्तरा कार्या शूरसेनैरलङ्कृता ।
 एकस्तरस्ततश्छेदः कण्ठस्तु द्विगुणस्ततः ॥ २७ ॥
 पट्टिका गिरिपत्री च विधातव्ये स्तरं स्तरम् ।
 उभौ (स्तरौ)गिरिहिरं भवेच्छेदः स्तरं ततः ॥ २८ ॥
 तथैव कण्ठस्तद्वच्च पट्टिकागिरिपत्रिके ।
 वरण्डिका द्विस्तरा स्याच्छेषं पूर्ववदाचरेत् ॥ २९ ॥
 उभौ स्तरौ गिरिहिरं छेदं कुर्वीत भागिकम् ।
 कण्ठश्च पत्रिका चैव गिरिपत्री च पूर्ववत् ॥ ३० ॥
 द्विस्तरा वेदिका कार्या (द्यवपादिकया^१) युता ।
 छेदमेकं स्तरं कुर्यात् कण्ठं (तद्)द्विगुणं ततः ॥ ३१ ॥
 पत्रिकां गिरिपत्रीं च तस्यैवार्धेन कारयेत् ।
 स्तराष्टकेन घण्टा स्याद् यदिवामलसारकम् ॥ ३२ ॥
 भवेत्यमं(?) + + + + कलशो द्विगुणस्ततः ।
 स्तरमेकं भवेद् ग्रीवा कर्णं कुर्वीत तत्समम् ॥ ३३ ॥

द्विगुणं बीजपूरं तु पूर्वत्राप्येवमाचरेत् ।

(तृष्टा सप्तदशांशकैर्भागैस्त्रिभिर्भवेत्?) ॥ ३४ ॥

द्विभागिकः प्रतिरथः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।

शालाप्रत्यङ्गयोरन्तर्भागार्धेनोदकान्तरम् ॥ ३५ ॥

परस्परं विनिष्कासः पादहीनं पदं भवेत् ।

गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयात् ॥ ३६ ॥

चतुर्भिर्वेदिकाबन्धो जङ्घा स्यादष्टभिः पदैः ।

सार्धैः पञ्चभिराद्या भूः कपोतालीसमन्विता ॥ ३७ ॥

(तृ?द्वि)तीया भूमिका चास्थ कर्तव्या पञ्चभिः पदैः ।

सार्धैर्भवेत् तृतीयापि चतुर्भिर्भूमिका पदैः ॥ ३८ ॥

चतुर्थी भूमिका भागैश्चतुर्भिः कीर्तिता पदैः ।

घण्टा च त्रिपदा कार्या कूटभक्त्यादि पूर्ववत् ॥ ३९ ॥

शुकनासादि कुम्भादि पूर्ववत् समुदाहृतम् ।

उक्तोऽयं वर्धमानारुख्यः प्रासादः शुभलक्षणः ॥ ४० ॥

नन्द्यावर्तमथ ब्रूमः क्षेत्रे सप्तदशांशके ।

कोणांश्चतुष्पदान् कुर्यात् पञ्जरं सार्धभागिकम् ॥ ४१ ॥

षट्(भि)र्भागैर्भवेच्छाला गर्भस्तु दशभागिकः ।

सार्धत्रिभागिका भित्तिरूर्ध्वमान(द्विभागुणम्?) ॥ ४२ ॥

वेदी चतुष्पदोत्सेधा जङ्घा भागाष्टकोच्छ्रिता ।

षट्पदा भूमिका + + + पञ्चपदायता ॥ ४३ ॥

स्यात् सम्पदे चतुर्भागा तृतीयान्या पदोच्छ्रिता ।

(सांद्भिर्वासेवघटा?) स्यात् पूर्ववत् कलशादिकाः ॥ ४४ ॥

नन्द्यावर्तोऽयमाख्यातः प्रासादः सर्वकामदः ।

अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं नन्दिवर्धनम् ॥ ४५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे पदाष्टादशकाङ्किते ।

कोणस्त्रिपदविस्तारः प्रत्यङ्गं स्यात् पदद्वयम् ॥ ४६ ॥

शाला चतुष्पदा प्रोक्ता चित्रकर्मोपशोभिता ।
 पादोनभागमानेन निर्गमः स्यात् परस्परम् ॥ ४७ ॥
 कोणप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ।
 भागेन विस्तृतं कार्यं सर्वत्र सलिलान्तरम् ॥ ४८ ॥
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिर्भागचतुष्टयात् ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमो द्विगुणं तत् प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥
 वेदीबन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा स्यादष्टभागिका ।
 प्रथमा भूमिका कार्या कपोतालीसमन्विता ॥ ५० ॥
 सपादैः पञ्चभिर्भागैर्द्वितीया तद्वदेव हि ।
 तृतीया तु भवत्यस्य भूमिका पञ्चभागिका ॥ ५१ ॥
 चतुर्थी भूमिका ज्ञेया सार्धभागचतुष्टया ।
 घण्टा तस्योर्ध्वतः कार्या पदत्रयसमुच्छ्रिता ॥ ५२ ॥
 शुकाघ्रा (द्युशू)रसेनश्च स्तम्भिकाकूटभक्तयः ।
 कलशस्योदयस्तस्य विधेयाश्चास्य पूर्ववत् ॥ ५३ ॥
 अमुं यः कारयेदन्यः प्रासादं नन्दिर्वर्धनम् ।
 स नन्दिगणसामान्यो जायते नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
 अतः परमथ ब्रूमो विमानं शुभलक्षणम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ ५५ ॥
 को(णाः) पञ्चपदाः कार्या मध्ये च सलिलान्तरम् ।
 कर्णिका सार्धभागेन भागार्धमुदकान्तरम् ॥ ५६ ॥
 (सालोपद्यद?)विस्तीर्णा सार्धभागेन निर्गता ।
 कोणस्य चार्धभागेन कर्णिकानिर्गमः स्मृतः ॥ ५७ ॥
 गर्भश्चास्य विघ्रातव्यो द्वादशांशकविस्तृतः ।
 भित्तिश्चतुष्पदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ५८ ॥
 ऊर्ध्वमानमथैतस्य ब्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
 वेदीबन्धोऽशकाः पञ्च जङ्घा नवपदोच्छ्रिता ॥ ५९ ॥

प्रथमा भूमिका कार्या भागैः षड्भिः समुच्छ्रिता ।
 शतपत्रां कपोतालीं मध्ये चास्याः प्रकल्पयेत् ॥ ६० ॥
 द्वितीया भूमिका चास्य विधेया पञ्चभिः पदैः ।
 अर्धेऽस्याः स्तम्भकोच्छालं कूटं चार्धव्यवस्थितम् ॥ ६१ ॥
 (परस्परपार्धेन हमाः)स्तिस्त्रोऽन्यभूमिकाः ।
 स्तम्भिकाकूटभरणशूरसेनाः सघण्टकाः ॥ ६२ ॥
 कलशस्योदयश्चात्र प्राग्वत् कार्या विपश्चिता ।
 य इमं कारयेद् भक्त्या विमानारुखं नृपुङ्गवः ॥ ६३ ॥
 इह भोगान् स लभते तथा (सत्कायदंविधेः) ।
 अथ पद्माप्रियप्रीतिजननः पद्म उच्यते ॥ ६४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते षोडशभिः पदैः ।
 कोणाश्चतुष्पदाः कार्याः सलिलान्तरभूषिताः ॥ ६५ ॥
 द्विपदः पञ्जरो ज्ञेयो गर्भे कोणाश्चतुष्पदाः ।
 (भागःस्यात्) षोडशांशेन तदन्ते सलिलान्तरम् ॥ ६६ ॥
 गर्भः स्यान्नवभिर्भागैर्भित्तिः सार्धपदत्रयम् ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमस्त(था?द)स्य द्विगुणं भवेत् ॥ ६७ ॥
 द्वितीया भूमिका ज्ञेया भागैः पञ्चभिरुच्छ्रिता ।
 अन्योन्यं तु पदार्धेन हीनं स्याद् भूमिकाद्वयम् ॥ ६८ ॥
 स्तम्भिकाकूटभरणशुका(ग्र?घ्रा)शूरसेनकाः ।
 घण्टा(कैरस?)विस्तारा भवन्त्येतस्य पूर्ववत् ॥ ६९ ॥
 पद्मप्रासादमेनं यः कारयेद् भक्तिसंयुतः ।
 स श्रीपतिरिव श्रीशो भवत्यवनिमण्डनः ॥ ७० ॥
 महाभद्रमथ ब्रूमः प्रासादमतिमुन्दरम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या सैकयाङ्किते ॥ ७१ ॥
 कोणाश्चतुष्पदाः सार्धद्वयंशाः प्रत्यङ्गकाः स्मृताः ।
 शाला पञ्चपदा कार्या दिक्षु सर्वास्ववस्थिता ॥ ७२ ॥

१. 'परस्परं पदार्धेन हीना' इति स्यात् । २. 'भागस्य' इति स्यात् । ३. 'कलश'

पादोनभागविस्तारं कर्तव्यं सलिलान्तरम् ।
 गर्भस्त्रयोदशपदो भित्तयश्च चतुष्पदाः ॥ ७३ ॥
 ऊर्ध्वमानमथैतस्य ब्रूमस्तद् द्विगुणं भवेत् ।
 वेदी चतुष्पदोत्सेधा जङ्घा स्यादष्टभागिका ॥ ७४ ॥
 सप्तभागसमुत्सेधा विधेया चादिभूमिका ।
 मध्ये सान्तरपत्रास्याः कपोताली पदत्रयम् ॥ ७५ ॥
 द्वितीयभूमिका चास्य सार्धः षड्भिः पदैः स्मृता ।
 भागभागविहीनास्तु तिस्रोऽन्या भूमिकास्ततः ॥ ७६ ॥
 घण्टा भागत्रयोत्सेधा पत्रपत्रिकया सह ।
 स्तम्भिकाकूटभरणशुकाघ्राशूरसेनकाः ॥ ७७ ॥
 कलशः (कुम्भं नघाः?) प्राग्वत् तस्य भवन्त्यमी ।
 महाभद्रमिमं योऽत्र कारयेद् भक्तिमान् नरः ॥ ७८ ॥
 स स्वर्गे सुरनारीभिः सेव्यते मृदनाङ्गया ।
 अथ श्रीवर्धमानस्य लक्ष्म साम्प्रतमुच्यते ॥ ७९ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
 कोणाः षड्भागिकाः कार्याः शालाः स्युर्नवभागिकाः ॥ ८० ॥
 सार्धं पदद्वयं कार्यः शालानामत्र निर्गमः ।
 कुर्याज्जलान्तरं तत्र मध्यतः कोणशालयोः ॥ ८१ ॥
 विस्तृतं सार्धभागेन प्रविष्टमपि भागतः ।
 (कोणे मध्यं?) विधातव्यं भागेनैवोदकान्तरम् ॥ ८२ ॥
 नवांश(कृत्ल)प्तशालायाः प्रत्यङ्गौ द्वावुदाहृतौ ।
 भागद्वितयविस्तारौ भागेनैकेन निर्गतौ ॥ ८३ ॥
 चतुर्दशपदो गर्भो भित्तिः पञ्चपदा स्मृता ।
 ऊर्ध्वमानमथ ब्रूमस्तदस्य द्विगुणं भवेत् ॥ ८४ ॥
 वेदिका षट्पदोत्सेधा जङ्घैकादशभिः पदैः ।
 प्रथमा भूमिका चास्य कार्या सप्तांशकोच्छ्रिता ॥ ८५ ॥
 पादोनैः सप्तभिर्भागैर्द्वितीया भूमिकेष्यते ।
 तृतीया भूमिका षड्भिः सपादैर्जायते पदैः ॥ ८६ ॥

(पादेन षट्का?)भागेन चतुर्थी भूमिका स्मृता ।
 भागं भागं विधातव्यः प्रवेशः प्रतिभूमिकम् ॥ ८७ ॥
 सपादैः पञ्चभिर्भागैः कार्यो घण्टासमुच्छ्रयः ।
 भागत्रयसमुत्सेधस्तदूर्ध्वे कलशो भवेत् ॥ ८८ ॥
 + + + + + षटाः स्मृताः ।
 भागद्वितयविस्ताराः कर्तव्या बालपञ्जराः ॥
 शाला षड्भागविस्तीर्णा भागत्रि(तयमुच्छ्रिता) ।
 (को)णप्रत्यङ्गयोर्मध्ये शालाप्रत्यङ्गयोस्तथा ॥
 कक्षान्तरे विधातव्यं भागिकं सलिलान्तरम् ।
 गर्भः स्याद् दशभिर्भागैर्भित्तिः कार्यास्य षट्पदा ॥
 षट्पदा स्यात् तृतीयात्र + + भागोच्छ्रिताः पराः ।
 कर्ण + + + + स्तिस्रो घण्टा चाष्टपदोच्छ्रिता ॥
 कूटरलङ्कृता कार्या शुकाग्रादि च पूर्ववत् ।
 स + + + पि चैतेषां प्रासादार्धेन कारयेत् ॥
 घण्टां तु संहतां श्लक्ष्णां बन्धनैरुपशोभिताम् ।
 यादृशी कम + + ने कूटेष्वेषां विधीयते ॥
 भद्रेषु तादृशी कार्या कृत्स्नप्रासादसिद्धये ।
 य इमं कारयेद् राजा प्रासादं पृथिवीजयम् ॥
 भुनक्ति निखिलां पृथ्वीं स सप्ताम्भोधिमालिनीम् ।
 इतीरिता द्वादश (स्यगते?)

प्रासादमुख्याः शुभलक्ष्मयुक्ताः ।

वावाटसंज्ञास्तदमून् विदित्वा

(लभेत् पूज्यस्थयते नृ?)पेभ्यः ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारणाग्नि चाह्वशास्त्रे

(वटो?)प्रासादो नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥

:०:

१. 'पादोनषट्क' इति स्यात् । २. इत ऊर्ध्वे मातृकायां षष्ठमेकं (२३३तमं)
 छतम् । ३. 'लभेत् पूजां स्थपतिर्नृ' इति स्यात् ।

अथ भूमिजप्रासादलक्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

— :: —

भूमिजानां विमानानां ब्रूमो लक्ष्य क्रमागतम् ।

चतुरश्रीकृतानां च वृत्तानां (वृत्तं पूर्वशः ?) ॥ १ ॥

केषाञ्चिन्निर्गमस्तत्र जायते भागसंख्यया ।

केषाञ्चित् पुनरेष स्याद् वृत्तमध्यमधिष्ठितः ॥ २ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।

चतुर्भूमियुतस्याथ लक्ष्य (त्संज्ञस्य?च्छन्दस्य) कथ्यते ॥ ३ ॥

चत्वारश्चतुरश्राः स्युर्निषधो मलयाचलः ।

माल्यवान् नवमाली च निषधस्तेषु कथ्यते ॥ ४ ॥

(कोणा शंभोतरो द्वयंशं भार्दशंभोर्धभागिकः?) ।

विस्तारायामतः प्रोक्तो भद्रं पञ्चांशविस्तृतम् ॥ ५ ॥

कार्या(ः) पादोनभागेन भद्रस्यैतस्य निर्गमाः ।

कार्या पल्लु(म्बि?वि)का तस्य पादभागेन विस्तृता ॥ ६ ॥

भागेन कर्णिका कार्या विस्तृत्या निर्गमेण च ।

प्रतिभद्रं च भागार्धनिर्गतं तत्र कल्पयेत् ॥ ७ ॥

पादोनभागद्वितयं प्रतिभद्रस्य विस्तृतिः ।

षड्भिर्भागैर्भवेद् गर्भो भित्तिरस्य द्विभागिका ॥ ८ ॥

तलच्छन्दस्य लक्ष्मोक्तमूर्ध्वमानमथोच्यते ।

विस्तृतेर्द्विगुणं तच्च चतुर्भागाधिकं भवेत् ॥ ९ ॥

वेदीबन्धो भवेदस्य सार्धभागद्वयोच्छ्रितः ।

तत्तु भागद्वयं सार्धं विभजेदर्धषञ्चमैः ॥ १० ॥

भागद्वयेन कुम्भः स्यात् कलशो भागिकः स्मृतः ।

भागार्धेनान्तरं पत्रं कपोताली तु भागिकी ॥ ११ ॥

(उ)क्तोऽयं वेदिकाबन्धो भागैरित्यर्थपञ्चमैः ।

अर्धपञ्चमभागैः स्याज्जङ्घोच्छालकसंयुता ॥ १२ ॥

त्रिभि + + + + + भूत्सेधः सवरण्डिकः ।

द्वितीयास्य भवेद् भूमिरर्धपञ्चमभागिका ॥ १३ ॥

कुम्भः सोच्छालका + + + + + यापि तावता ।

तृतीया स्या(द्) भूर्विधेया(स्यासादा?) चतुरङ्गिका ॥ १४ ॥

चतुर्थी चतुरो (भागाच्चः समु + + + + + ?) ।

(कु)म्भः सोच्छालकः कूटस्योच्छ्रायोऽपिच पूर्ववत् ॥ १५ ॥

वेदी स्यात् सांशका सार्धपञ्चांशा स्कन्धविस्तृतिः ।

(+ + + + + खेत्सार्ध?) चतुर्गुणितविस्तरात् ॥ १६ ॥

तले या कथिता शाला भागपञ्चकविस्तृता ।

स्कन्धस्थानं + + + + भागद्वितयविस्तृता(ः) ॥ १७ ॥

रेखावशेन कर्तव्याः प्रवेशाश्च क्र(मात्तु?माद् भु)वाम् ।

मूलतः स्कन्धपर्यन्तं घण्टायाः पु + + + याः ॥ १८ ॥

भवेत् प्रासादविस्तारः (पञ्चमणैव?) सुन्दरः ।

(वेदकोऽर्धेतरं?) यत् स्याच्छालायास्तत्प्रमाणतः ॥ १९ ॥

+ + ये विस्तरः प्रोक्तस्तं + पङ्क्तिर्विभाजयेत् ।

भागेनैकेन कण्ठस्य प्रवेशः परितो भवेत् ॥ २० ॥

कण्ठवृत्तं चतुर्भागविस्तृतं परिकल्पयेत् ।

घण्टोत्सेधं त्रिभिर्भागैर्विभजेत् तत्र भागिका(त्) ॥ २१ ॥

घण्टोत्सेधादतः कार्यं प(ञ्चः)शीर्षं विपश्चिता ।

उत्सेधात् कलशो द्वयंशः सार्धभागेन विस्तृतः ॥ २२ ॥

शिखरात् त्र्यंशहीना स्यात् सर्वत्र (द्युताशिका ?) ।

इति त्र्यंशश्चतुर्भूमिः प्रासादो निषधो मतः ॥ २३ ॥

सर्वासामेव कर्तव्यो देवतानां विभू(षयेत्?तये) ।

निषधप्रासादः ॥

मलयाद्रेरिदानीं तु लक्षणं सम्प्रचक्ष्महे ॥ २४ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वादशांशविभाजिते ।
कर्णा द्विभागिकाः कार्याः समं सलिलवर्त्मभिः ॥ २५ ॥
शाला स्यात् पञ्चभिर्भागैः सार्धांशस्तु प्रतीरथः ।
स शालाकर्णयोर्मध्ये कर्तव्यः सोदकान्तरः ॥ २६ ॥
प्रतीरथस्य + + + श्वार्धभागं विनिर्गमः ।
भवेत् (पथविकान्यः स विभागोऽन्य+?) पूर्ववत् ॥ २७ ॥
ते च(?) द्वादशभागा ये दशभिस्तान् विभाजयेत् ।
गर्भभित्तिं तथोत्सेधं जङ्घायाः प्रथमक्षितेः ॥ २८ ॥
वेदीबन्धस्य चोत्सेधं पूर्वमानेन कारयेत् ।
मध्यं पल्लविकान्तं तु शालयोर्दशभिर्भजेत् ॥ २९ ॥
क्षितेरारभ्य पूर्वस्याः स्कन्धं यावत् समुच्छ्रिताः(?) ।
कार्या द्वादशभिर्भागैरनन्तरनिरूपितैः ॥ ३० ॥
सार्धयैकोनविंशत्या भाजयेद् भूय एव ताम् ।
द्वितीयभूमिकोत्सेधस्तैर्भवत्यथ भागिका(?) ॥ ३१ ॥
तिस्रोऽन्याः पदपादेन हीनाः कार्या यथाक्रमम् ।
भागेन वेदिकोत्सेधः शाला कार्या च नागरः (?) ॥ ३२ ॥
ऊर्ध्वमा(द्यं?)क्षितेः कार्या मालायाः शूरसेनकाः ।
कोणप्रतिरथा ये तु पञ्चभागसमुच्छ्रिताः ॥ ३३ ॥
स्तम्भोच्छ्रालकमध्येन तेषु कूटोच्छ्रिताः(?)स्तथा ।
अर्धेन प्रविधातव्या भूष्वन्यास्वप्ययं विधिः ॥ ३४ ॥
स्कन्धविस्ताररेखा भूप्रवे(शः?) घण्टया सह ।
कलशः शुकनासस्य चोच्छ्रितः पूर्ववत् भवेत् ॥ ३५ ॥
मलयाद्रिरयं प्रोक्तः प्रासादः शुभलक्षणः ।
य एनं कारयेत् तस्य तुष्यन्ति सकलाः सुराः ॥ ३६ ॥
वर्षकोटिसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।

मलयाद्रिप्रासादः ॥

अथ माल्यवतो लक्ष्म यथावदभिधीयते ॥ ३७ ॥

भजेदर्धयुतैः पञ्चदशभिश्चतुर + + ।

कर्णा द्विभागिकाः कार्यौ शाला पञ्चांशविस्तृता ॥ ३८ ॥

कर्णाभ्यर्णेऽञ्जयुगलं पादो(नाः!नं) स्युः प्रतीरथाः ।

शालायाः पार्श्वयोः कार्यौ प(ण्डा?ञ्ज)रौ सार्धभागिकौ ॥ ३९ ॥

पृथक्पञ्जरशालाया + + + + धर्भागिका ।

शालायाः पल्लवी या(च?स्या) निर्गमश्चार्धभागि(का?कः) ॥ ४० ॥

सार्धपञ्चदशोक्ता ये भागास्ता + + + + + ।

गर्भोऽथ भित्तिविस्तारस्तथा खुरवरण्डिका ॥ ४१ ॥

जङ्घाधः क्षितिराद्या च रेखोच्छ्रायश्च पूर्ववत् ।

+ + + + + भाज्यं पादहीनाष्टयुक्तया ॥ ४२ ॥

पञ्चभागसमुत्सेधा द्वितीया भूमिका भवेत् ।

पदपादविही(नाःस्युस्तिस्त्रोऽन्याभू)मयः (क्रमात्) ॥ ४३ ॥

सार्धांशो वेदिकोच्छ्रायः कर्तव्यो वास्तुवेदिभिः ।

स्कन्धस्य विस्तृती रेखा घण्टा च कलश(स्तथा) ॥ ४४ ॥

(' + + यांस्तरासमाश्च?) स्तम्भकूटादिकल्पना ।

शुकनासोच्छ्रति(श्चेति इति एतानि?) पूर्ववत् ॥ ४५ ॥

इत्येवं माल्य(वान् नाम) प्रासादः परिकीर्तितः ।

य एनं कारयेत् तस्य जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ ४६ ॥

शिवलोके निवासोऽस्य भवेत् कल्पायुरप्ययम् ।

माल्यवान् ॥

नवमालिकसंज्ञस्य लक्षणं कथ्यतेऽधुना ॥ ४७ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्तेऽष्टादशभिः पदैः ।

कर्णा द्विभागिकाः कार्यौ समं सलिलवर्त्मभिः ॥ ४८ ॥

शाला स्यात् पञ्चभिर्भागैः पार्श्वयोर्बालपञ्जरौ ।

सपादभागिकौ तौ च कार्यौ (स)सलिलान्तरौ ॥ ४९ ॥

कर्णाभ्यर्णे प्रतिरथौ (पादौ नालद्वयोन्मितौ ?) ।

तौ सोदकान्तरौ कार्यौ पञ्जरौ सार्धभागिकौ ॥ ५० ॥

(द्वौ?) बालपञ्जरकस्यैतौ मध्ये प्रतिरथस्य च ।

प्रतीरथः पञ्जरो वा (वा)लपञ्जरकस्तथा ॥ ५१ ॥

शालापल्लविकां यावदेतानि तु पृथक् पृथक् ।

भागार्धनिर्गमानि स्युर्भागा येऽष्टादशोदिताः ॥ ५२ ॥

विभाजयेत् तान् दशभिर्विभागैर्वास्तुतस्त्ववित् ।

गर्भो भित्तिः समुच्छ्रायो वेदिकाजङ्घयोरपि ॥ ५३ ॥

आद्यभूम्युच्छ्रितस्तद्वदुच्छ्रायः शिखरस्य च ।

प्रासादेऽस्मिन्निदं सर्वं पूर्व(वत्) कथितं बुधैः ॥ ५४ ॥

तत् पञ्चत्रिंशता भागैः पादोनैः शिखरं भवेत् ।

द्वितीया भूमिका कार्या ततः पञ्चपदोच्छ्रिता ॥ ५५ ॥

पदपादविहीनास्तु शेषाः स्युः (सप्त?) भूमयः ।

पादोनभागद्वितयं वेदिकायाः समुच्छ्रितः ॥ ५६ ॥

स्कन्धस्य विस्तृती रेखा घण्टाथ कलशस्तथा ।

शालायां शूरसेनाश्च स्तम्भकूटादिकल्पना ॥ ५७ ॥

शुकनासोच्छ्रतिर्भूमिप्रवेशश्चेह पूर्ववत् ।

य इमं कारयेद् भक्त्या प्रासादं नवमालिकम् ॥ ५८ ॥

तुष्यन्ति देवतास्तस्य भवन्ति च समृद्धयः ।

नवमालिकः ॥

इहानीमभिधीयन्ते प्रासादा वृक्षजातयः ॥ ५९ ॥

वल्लभाः सर्वदेवानां भूमिजाः पुरभूषणम् ।

आश्रयः श्रेयसामेको यशसामपि राशयः ॥ ६० ॥

श्रुक्तिमुक्तिप्रदातारः (समागते कृता?) नृणाम् ।

तत्राद्यः कुमुदो नाम कमलः कमलोद्भवः ॥ ६१ ॥

(कि)रणः शतशृङ्गश्च निरवद्यस्तथापरः ।

सर्वाङ्गसुन्दरश्चेति प्रासादा वृ(त्त?)क्षजातयः ॥ ६२ ॥

नविस्तरान्नसंक्षोपाल्लक्ष्मैषामथ कीर्त्यते ।

तत्राद्यः कुमुदो नाम सर्वानन्दकुदुच्यते ॥ ६३ ॥

घण्टोत्सेधार्धतः कुर्याद् घण्टार्धे पञ्चशीर्षकम् ।
 घण्टोत्सेधसमा कुम्भे बीजपूर(वितोःसमु)च्छ्रितः ॥ ७७ ॥
 (चतुरश्रांजितोच्छ्रायो विस्तारः कलशः स्मृताः?) ।
 य इमं कारयेत् प्रीत्या प्रासादं कुमुदाभिधम् ॥ ७८ ॥
 स मोदते जगद्धर्तुः शिवस्य भवने शुभे ।

कुमुदप्रासादः ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामः प्रासादं कमलाभिधम् ॥ ७९ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।
 ततः कर्णार्धसूत्रेण वृत्तं तत्र समालिखेत् ॥ ८० ॥
 विस्तीर्णं पञ्चभिर्भागैः कुर्याद् (भद्र)चतुष्टयम् ।
 ('सुरेन्द्रसमतायसः')कुबेराशास्वनुक्रमात् ॥ ८१ ॥
 भवेत् पल्लविका(या)स्तु विस्तारो भागपादिकः ।
 भागेन (का?) कार्या (भद्रा)णां निर्गमा वृत्तबाह्यतः ॥ ८२ ॥
 शालायाः प्रतिभद्रं स्यात् कर्णिकार्धेन निर्ग(ताःतम्) ।
 पादोनभागत्रितयात् कार्या (विःवृ)त्तस्य विस्तृतिः ॥ ८३ ॥
 द्विभागविस्तरायामौ (रेशुकं द्वयमतोध्यगौ ?) ।
 परिवर्तनया कार्यौ द्वौ कोणौ सोदकान्तरौ ॥ ८४ ॥
 पूर्वप्रासादवद् गर्भो विधेयो भित्तयोऽपिच ।
 वेदीबन्धादिकुम्भान्तं सर्वमेतस्य पूर्ववत् ॥ ८५ ॥
 द्वितीयभूमिपर्यन्तमूर्ध्वं प्रथमभूमितः ।
 शूरसेनं विधातव्यं शालासु (विःश्लि)ष्टमुत्तमम् ॥ ८६ ॥
 कूटस्तम्भादिकन्यासाः कोणप्रतिरथादिषु ।
 (शाला स्यान्नागरास्तले?) पञ्चांशा द्वयंशकोपरि ॥ ८७ ॥
 शिखरस्य त्रिभागोना शुकाग्रायाः समुच्छ्रितः ।
 य एनं कमलं नाम प्रासादं कारयेन्नुपः ॥ ८८ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते + + + + + ।
+ + पञ्चदशांशा ये तान् भजेद् दशभिः पुनः ॥ १०१ ॥

गर्भोऽत्र पूर्ववत् कार्यः पूर्ववद् भित्तयोऽपि च ।
प्राग्वत् खुरवरण्डी स्याज्जङ्घाकूटोच्छ्रितस्तथा ॥ १०२ ॥

पूर्ववच्छिखरोत्सेधस्तं भजेत् पादहीनया ।
चतुरुत्तरविंशत्या भागानां तत्र भूमिका ॥ १०३ ॥

द्वितीया पञ्चभिर्भागैश्चतस्रस्त्वपराः पुनः ।
पादोनपदहीनाः स्युः क्रमशश्चास्य भूमिकाः ॥ १०४ ॥

वेदिका चास्य कर्तव्या सपादांशसमुच्छ्रिता ।
शुकनासोच्छ्रितिः शालास्तम्भकूटविभक्तयः ॥ १०५ ॥

रेखा स्तम्भस्य विस्तारो घण्टाकुम्भादि पूर्ववत् ।
कूटा द्राविड(काः) कार्याः प्रतिभूम्यथ (भौमज?) ॥ १०६ ॥

हरो हिरण्यगर्भश्च हरिर्दिनकरस्तथा ।
एषामेव विधेयोऽसौ नान्येषां तु कदाचन ॥ १०७ ॥

अमुं यः कारयेद् राजा प्रासादं किरणाभिधम् ।
स दुःसहप्रतापः स्यात् सहस्रकरवद् भुवि ॥ १०८ ॥

किरणप्रासादः ॥

कथ्यते शतशृङ्गोऽथ प्रासादः (शुभलक्षणः) ।
बल्लभः सर्वदेवानां (शि)वस्य (तु) विशेषतः ॥ १०९ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्यैकोन(यान्तिभे?) ।
कर्णा(द्विर्ध?)सूत्रेण ततो वृत्तमत्र प्रकल्पयेत् ॥ ११० ॥

कर्णा द्विभागिकाः कार्याः शाला स्यात् पञ्चभागिका ।
शालापल्लविका चास्य (निर्गता) वृत्तमध्यतः ॥ १११ ॥

द्वौ द्वौ प्रतिरथौ कार्यौ द्विभागायामविस्तृतौ ।
परं वर्तनतो वृत्तमध्य(ताःतः) कोणशालयोः ॥ ११२ ॥

शालाकोणप्रतिरथान्तरेषु स्याज्जलान्तरम् ।

एकोनविंशतिं भागास्तान् भजेद् दशभिः पुनः ॥ ११३ ॥

गर्भः प्राग्वत् तथा भित्तिः प्राग्वत् खुरवरण्डिका ।

जङ्घोत्सेधोऽथ भूत्सेधः पूर्ववच्छिखरोच्छ्रितः ॥ ११४ ॥

(^१अथाभिस्ते?)मेरारभ्य पट्ट्यन्तं शिखरोच्छ्र(तिः?तिम्) ।

भागानामष्टविंशत्या(?) विभजेत् पादहीनया ॥ ११५ ॥

द्वितीयभूमिका तस्य कार्या पञ्चपदोच्छ्रिता ।

रेखास्तु पञ्च कर्तव्याः पदपादोच्छ्रिता भुवः ॥ ११६ ॥

सार्धभागोच्छ्रिता वेदी प्रविधेयास्य तद्विदा ।

(शालास्यस्तम्भक्तयदिविभक्तयदिविभक्तिः?)शुकनासिका॥ ११७॥

(रेखाद्यं चकंभस्य?) प्राग्वत् स्यात् सर्वमप्यदः ।

शतशृङ्गमिमं कुर्याद् यः प्रासादं मनोरमम् ॥ ११८ ॥

तस्यैकविंशतिकुला + + + + + ।

कर्ता कारयिता चेति द्वावेतौ जगतां प्रभोः ॥ ११९ ॥

त्रिपुरद्वेषिणः स्यातां नियतं गणनायकौ ।

शतशृङ्गप्रासादः ॥

^१+ + + + + यामो निरवद्यस्य लक्षणम् ॥ १२० ॥

स स्याज्ज्येष्ठोऽथ मध्यश्च कनीयानिति च त्रिधा ।

चत्वारिंशत्करो ज्येष्ठो (पि?मध्यः) त्रिंशत्करो भवेत् ॥ १२१ ॥

विंशत्या च करैरेष कनीयान् समुदाहृतः ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विंशत्या भाजिते पदैः ॥ १२२ ॥

ततः कर्णद्विसूत्रेण(?) वृत्तमत्र प्रकल्पयेत् ।

कार्या तैः पञ्चभिः शालापल्लवी वृत्त(म)ध्यतः ॥ १२३ ॥

शालाविभक्तिः प्राग्वत् स्याच्छालयोरेतयोः पुनः ।

कोणे कोणे च षट्कर्णा + भागायामविस्तृताः ॥ १२४ ॥

१. 'अथादिभू' इति स्यात् । २. शालास्य स्तम्भकूटादिभक्तयः' इति स्यात् ।
३. 'प्रासादस्याय वक्ष्यामो' इति स्यात् । ४. 'कर्णाविसूत्रेण' इति पाठ्यं भवति ।

परिवर्तनया कार्या वृत्तान्तः सोदकान्तराः ।
 (ता तागां त्रिभागैः) विभजेद् दशभिस्ततः ॥ १२५ ॥
 विमुच्य भूमिकाभागाच्छेषं गर्भगृहादि यत् ।
 तत् पूर्ववद् विधातव्यं तद्वच्च शिखरोच्छ्रितः ॥ १२६ ॥
 तामेकत्रिंशता भागैः सार्धैश्च विभजेत् पुनः ।
 द्वितीयभूमिका कार्या पदैः पञ्चभिरुच्छ्रिता ॥ १२७ ॥
 पदपादेन हीनाः स्युः शेषा (पदभासः) भूमिकाः ।
 वेदी (पैथ्यं) कार्या पादोनमिह शिल्पिना ॥ १२८ ॥
 स्तम्भकूटादि शालानां विन्यासः शूरसेनकाः ।
 शुकनासोच्छ्रतिर्घण्टा कलशादि च पूर्ववत् ॥ १२९ ॥
 य इमं निरवद्याख्यं प्रासादं कारयेत् सुधीः ।
 स प्राप्नोति परं स्थानं ब्रह्मादीनां सुदुर्लभम् ॥ १३० ॥
 निरवद्यप्रासादः ॥
 सर्वाङ्गसुन्दरं ब्रूमः प्रासादमथ सुन्दरम् ।
 भुक्तिमुक्तिप्रदातारं (वरवालयः) मण्डनम् ॥ १३१ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ।
 कर्णा द्विभागविस्ताराः शाला स्यात् पञ्चभागिका ॥ १३२ ॥
 वृत्तान्तः पल्लवी कार्या शेषाः शालासु पूर्ववत् ।
 त्रयस्त्रयः प्रतिरथा मध्ये स्युः कर्णशालयोः ॥ १३३ ॥
 परिवृत्त्यं च्या वृत्तमध्ये द्विभागायामविस्तृताः ।
 शालाकर्णप्रतिरथप्रान्तेषु स्याज्जलान्त(रेः रम्) ॥ १३४ ॥
 त्रिचतुर्विंशतिर्भागा विभाज्याः शिल्पिभिः पुनः ।
 विधेयं गर्भभित्त्यादि प्राग्बत् स्याच्च वरण्डिका ॥ १३५ ॥
 जङ्घादिभूमिकोच्छ्रायः प्राग्ब(द्विद्वा) शिखरोच्छ्रितः ।
 (तं) पञ्चत्रिंशता भागैर्विभजेच्छिखरोच्छ्रयम् ॥ १३६ ॥
 द्वितीया भूमिका चास्य कार्या पञ्चपदोच्छ्रिता ।
 पदपादविहीनाः स्युः शेषाः सप्तास्य भूमिकाः ॥ १३७ ॥

द्विभागो वेदिकोच्छ्रायो भूमिकानां प्रवेशनम् ।
 रेखावशेन कर्तव्यं शेषमेतस्य यत् पुनः ॥ १३८ ॥
 तत् पूर्ववद् विधातव्यं स्तम्भकूटादि तद्विदा ।
 सर्वाङ्गसुन्दरं योऽत्र प्रासादं कारयेदमुम् ॥ १३९ ॥
 स स्वर्गसुन्दरीभोगानाप्नोति विपुलान् दिवि ।

सर्वाङ्गसुन्दरः प्रासादः ॥

अथाष्टशालान् वक्ष्यामो + + + भूमिजातिषु ॥ १४० ॥
 तेष्वष्टः स्वस्तिकोऽन्यश्च वज्रस्वस्तिकसंज्ञितः ।
 तृतीयो हर्म्यतलकश्चतुर्थ उदयाचलः ॥ १४१ ॥
 गन्धमादनसंज्ञश्च पञ्चमः परिकीर्तितः ।
 अथाभिधीयते तेषु + + + स्वलक्षणः ॥ १४२ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विस्तारायामतः समे ।
 कर्णार्धसूत्रपातेन वृत्तमस्य समं लिखेत् ॥ १४३ ॥
 वर्तुलं भाजयेत् क्षेत्रं षड्गुणैरष्टभिः पदैः ।
 अष्टौ शाला विधातव्या विस्तारेण चतुष्पदाः ॥ १४४ ॥
 पल्लवी वृत्तसूत्रेण ^२ + + + + + + + + ।
 + + + कर्णिका ज्ञेया मानमूर्ध्वमथोच्यते ॥ १४५ ॥
 वेदिबन्धो विधातव्यो भागद्वितयमुच्छ्रितः ।
 तं भजेत् पञ्चभिर्भागैः + + + तत्र कुम्भकः ॥ १४६ ॥
 पादयुक्तेन भागेन कर्तव्यस्तु मसूरकः ।
 अर्धांशे(नोत्तः?नान्त)रं पत्रं कपोताली ततो भवेत् ॥ १४७ ॥
 सपादेनास्य भागेन ज(ङ्घां?ङ्घा) भागचतुष्टयात् ।
 तलकुम्भोच्छालकाभ्यां संयुक्ता शुभलक्षणा ॥ १४८ ॥
 भागद्वितयमाद्या भूः कर्तव्या सवरण्डिका ।
 व्यासं दशपदं कृत्वा तैर्द्वादशभिरुच्छ्रितः ॥ १४९ ॥

१. 'स्वस्तिकः शुभलक्षणः' इति स्यात् । २. 'बाह्यतो मद्रकर्णिके' इत्ययं पूर-
 णीर्वाहः प्रकरणान्तराङ्गुल्यन्ते ।

स्कन्धश्च षट्पदस्तत्र विधातव्यो विजानता ।
 षड्गुणेनैव सूत्रेण वेणुकोशं समालिखेत् ॥ १५० ॥
 द्वादशांशो य उत्सेधो भागानां सम + + + ।
 तं कृत्वा पञ्चभिर्भागैः(स्ते द्वि?स्तैर्द्वि?)तीया भवेन्मही ॥ १५१ ॥
 पदपादोच्छ्रिताः कार्यास्ततस्तिस्रोऽपरा भुवः ।
 (गर्भा गर्भ?) विधातव्यं भूमिकानां प्रवेशनम् ॥ १५२ ॥
 वेदिका च ततः कार्या सार्धभागसमुच्छ्रिता ।
 पादोनद्विपदा घण्टा विभजेत् तां त्रिभिः पदैः ॥ १५३ ॥
 पदं स्यात् कण्ठकोत्सेधो ग्रीवा भागसमुच्छ्रिता ।
 अण्डकं भागिकं तस्यां कर्तव्यं सुमनोरमम् ॥ १५४ ॥
 कर्परं सार्धभागेन कुर्यात् सामलसारकम् ।
 (सीस्तन चाभागायाः?) सार्धभागचतुष्टयात् ॥ १५५ ॥
 घण्टाया विस्तरः कार्यस्तं भजेत् षड्भिरंशकैः ।
 चतुर्भिः कन्दविस्तारात् + + + + + ॥ १५६ ॥
 सार्धभागः समुत्सेधः कलशस्य तदर्धतः ।
 शिखरस्य त्रिभागेन शुकनासा विधीयते ॥ १५७ ॥
 विस्तारा(द्) गर्भमानेन हीना वाष्टांशतो भवेत् ।
 (विस्ताराथ सपादेन?) शूरसेनस्तदूर्ध्वतः ॥ १५८ ॥
 द्वितीयभूमिकातुल्य आद्यभूमेः स ऊर्ध्वतः ।
 शालाविस्तारतुल्यास्तु शूरसेनास्त्रयो मताः ॥ १५९ ॥
 शाला नागरिकाश्चाष्टौ ग्राहग्रासविराजिताः ।
 य इमं कारयेद् धन्यः प्रासादं स्वस्तिकं शुभम् ॥ १६० ॥
 तस्यानुजन्म(शातानां?) स्वस्तिश्रीभाजनं भवेत् ।

स्वस्तिकप्रासादः ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामो वज्रस्वस्तिकसंज्ञितम् ॥ १६१ ॥

प्रासादं लक्षणोपेतं शक्रादिसुरवल्लभम् ।

पूर्वोक्तलक्षणोपेते स्वस्तिके(द्वयमध्यदे?) ॥ १६२ ॥

भद्रे शृङ्गं प्रदातव्यं तीक्ष्णाग्रं सुमनोरमम् ।

पुरस्तान्मण्डपं कुर्यात् सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ १६३ ॥

इत्येष कथितः सम्यग् वज्रस्वस्तिकसंज्ञितः ।

य इमं कारयेद् धन्यः प्रासादं सर्वकामदम् ॥ १६४ ॥

स स्याद् भोग्यः सुरस्त्रीणामैन्द्रं च पदमश्नुते ।

वज्रस्वस्तिकप्रासादः ॥

अथ हर्म्यतलं ब्रूमः प्रासादं मण्डनं भुवः ॥ १६५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे विस्तारायामतः समे ।

कर्णार्धसूत्रपातेन तस्मिन् वृत्तं समालिखेत् ॥ १६६ ॥

तद् वृत्तं विभजेत् क्षेत्रं चतुःषष्ट्या पदैस्ततः ।

कर्तव्या विस्तरेणास्मिन्नष्टौ शालाश्चतुष्पदाः ॥ १६७ ॥

प्लव्ही वृत्तसूत्रेण बाह्यतो भद्रकर्णिके ।

कर्णौ द्वौ द्वौ विधातव्यौ शालाद्वितयमध्यतः ॥ १६८ ॥

(विंद्भि)भागायामविस्तारौ सलिलान्तरभूषितौ ।

परिवर्तनतोऽन्योन्यं कोणान् कुर्वीत षोडश ॥ १६९ ॥

अष्टास्वपिच दिक्ष्वेवं(माना कर्मभिरन्विताः) ।

गर्भो भित्तिश्च वेदी च जङ्घाप्रथमभूमिकाः ॥ १७० ॥

कर्तव्याः पूर्वमानेन स्वस्तिकोक्तेन तद्विदा ।

द्वादशांशो य उत्सेधो विंशत्या तत्र भाजितः ॥ १७१ ॥

सोऽ(त्रा)ष्टाविंशतिविधः कर्तव्य(सूँस्त)त्र भूमिका ।

द्वितीया पञ्चभिर्भागैः पदपादोज्झिताः पृथक् ॥ १७२ ॥

अन्याः स्युर्भूमयः पञ्च वेदी (व्यंद्भिः?) द्विभागिकाः (पराः) ।

चतस्रो मञ्जरीः कुर्यान्नागरैः कर्मभिर्युताः ॥ १७३ ॥

चतस्रः पुनरन्याश्च युक्ता द्रविडकर्मभिः ।

घण्टा स्कन्धस्य विस्तारो वेदिकाकलशोच्छ्रयौ ॥ १७४ ॥

शूरसेनः शुकाघ्रा च स्तम्भिकाकूट(विं)भक्तयः ।

रेखा(श्च) पूर्ववत् कार्याः प्रासादस्यास्य जानता ॥ १७५ ॥

प्रासादस्यास्य कर्ता यस्तथा कारयिता च यः ।
 (प्राप्नुतामिव लोकं?) तौ नित्यानन्दसुखोदयम् ॥ १७६ ॥
 हर्म्यतलकप्रासादः ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादमुदयाचलम् ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भुजाकर्णसमे शुभे ॥ १७७ ॥
 ततः कर्णार्धसूत्रेण तस्मिन् वृत्तं समालिखेत् ।
 वर्तुलं कारयेत् क्षेत्रमशीतिपदभाजितम् ॥ १७८ ॥

शालाश्चाष्टौ विधातव्याः पूर्वदिक्षु चतुष्पदाः ।
 पल्लवी वृत्तसूत्रेण बाह्यतो भद्रकर्णिके ॥ १७९ ॥

कुर्याच्छालाद्वयस्यान्तः कोणानां च त्रयं त्रयम् ।
 द्विभागायामविस्तारसलिलान्तरभूषिताः ॥ १८० ॥

एवं कोणा विधातव्या विंशतिश्चतुररुत्तरा ।
 परिवर्तनमन्योन्यमेषां कुर्याद् यथाक्रमम् ॥ १८१ ॥

एत(त्सा?त्स)मप्रमाणेन गर्भं भित्तिं च वेदिकाम् ।
 जङ्घां च भूमिशिखरं पूर्ववत् परिकल्पयेत् ॥ १८२ ॥

अष्टौ च मञ्जरीः कुर्याद् युक्ता नागरकर्मणा ।
 रुद्रेश्वरसमायुक्ता नीरधारोपशोभिताः ॥ १८३ ॥

(घण्टाकूटाश्च रेखा च स्तम्भिकाः शूरसेनकः ।
 शुका(घ्रा)स्कन्धविस्तारकलशेन समन्वितः) ॥ १८४ ॥

स्वस्तिकोक्तविधानेन विदध्यादुदयाचलम् ।
 द्वादशांशो य उत्सेधो विंशत्या तत्र भाजितः ॥ १८५ ॥

स्यात् पञ्चत्रिंशता भाज्यो + + + तत्र भूमिका ।
 पञ्चभागोच्छ्रिता कार्या ततोऽन्याः सप्त भूमयः ॥ १८६ ॥

(पदषादोच्छ्रिता भागद्वयो यो तु वेदिका ।
 + + + + + सर्वलक्षणसंयुता?) ॥ १८७ ॥

प्रासादं यस्त्विमं सम्यग् भक्तिमान् कारयेन्नरः ।
शाश्वतं पदमामोति स दुष्प्रापं सुरैरपि ॥ १८८ ॥

उदयाचलप्रासादः ।

इदानीं प्रक्रमायातः कथ्यते गन्धमादनः ।
स्वलक्षणप्रमाणाढ्यक्षितिस्मिन्नुदयाचले (?) ॥ १८९ ॥

कुर्वीत मञ्जरीरष्टौ युक्ता द्राविडकर्मभिः ।
कूटाश्च मणिकाः कार्या नानाकर्मभिरन्विताः ॥ १९० ॥

स्थानेषु शूरसेना + पुरारेखात्रयं भवेत् ।
शुकनासां च घण्टां च स्कन्धं शिखरमेव च ॥ १९१ ॥

कूटा + स्तम्भिका कुम्भं पूर्ववत् परिकल्पयेत् ।
य इमं कारयेद् धन्यः प्रासादं मण्डनं भुवः ॥ १९२ ॥

विद्याधराधिपः श्रीमान् स भवेन्नात्र संशयः ।
भुङ्क्ते च विविधान् भोगान् सुरस्त्रीभिश्च सेव्यते ॥ १९३ ॥
गन्धमादनप्रासादः ॥

उदयस्य विभेदेन रेखा याः पञ्चविंशतिः ।
लतिनागरभौमानां ताः कथ्यन्ते यथागमम् ॥ १९४ ॥
लतिनां (स्याद्वारंगतो) नागराणां तु कूटकः ।
भूमिजानां विधातव्या (माथायाः?) पुरतो भुवः ॥ १९५ ॥

शिखरं व्यासकर्णाभ्यां तुल्यं स्यादधमोत्तमम् ।
भाजनीयचतुर्युक्तविंशस्यादनन्तरम् (?) ॥ १९६ ॥

+++++ भागरेखास्तावत्य ईरिताः ।
संख्या सा(?)शोभना भद्रा सुरूपा सुमनोरमा ॥ १९७ ॥

शुभा चैव तथा शान्ता कावेरी च सरस्वती ।
लोका च करवीरा च कुमुदा पद्मिनी तथा ॥ १९८ ॥

कनका विकटा देवरम्या च रमणी तथा ।
वसुन्धरा तथा हंसी विशाखा नन्दिनीति च ॥ १९९ ॥

जया च विजया चैव सुमुखा च प्रियानता ।

इत्येताः कीर्तिता रेखाः ++ या पञ्चविंशतिः ॥ २०० ॥

रेखा एताः (?) ॥

एताः शुभफलाः सर्वाः कर्तुः कारयितुस्तथा ।

चतुरश्रचतुष्कमेवमुक्तं वृत्ताः सप्त च भूमिजा इमे(?) ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

भूमिजप्रासादाध्यायो नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

-----:0:-----

अथ मण्डपलक्षणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

-----:0:-----

इदानीं मण्डपानष्टौ ब्रूमः प्रासादसंस्थितान् ।

प्रासादं कल्पयेत् पूर्वं भागशुद्धं सुलक्षणम् ॥ १ ॥

संवृतो वा भवेदेष व्यतिरिक्तोऽथवा कश्चित् ।

(चतुरश्रो विभागैश्च घटंतेः य समंवृतः?) ॥ २ ॥

(पशुभागैर्विघटते?) व्यतिरिक्तः स कीर्तितः ।

गर्भो गर्भसमः शस्तः (सोन्यघटोपमावहेत्?) ॥ ३ ॥

एवं निवेशयेदग्रे मण्डपान्येव सन्नतः (?) ।

भजेच्छतपदाख्येन ज्येष्ठमध्यकनीयसः ॥ ४ ॥

मण्डपांस्तेषु भद्रः स्यान्नन्दनाख्यस्तथापरः ।

महेन्द्रो वर्धमानश्च स्वस्तिकः सर्वभद्रकः ॥ ५ ॥

महापद्मोऽष्टमश्चैषां गृहराजः प्रकीर्तितः ।

एते यथार्थनामानो लक्ष्मैतेषां प्रचक्ष्महे ॥ ६ ॥

प्रासादद्विगुणायामः पादोनद्विगुणायतः (?) ।

कार्यो यस्तथा व्यर्थमग्रतः(?) सुरमन्दिरात् ॥ ७ ॥

प्रासादोच्छ्रायतुल्यं वा कार्या मण्डपविस्तृतिः ।

शुकनासान्विताः कार्यास्ते चालिन्दसमन्विताः ॥ ८ ॥

अलिन्दः सर्वतोभागनिर्गता लावविस्तृताः (?) ।
कदाचित् सार्धभागेन निष्क्रान्ता भागविस्तृता ॥ ९ ॥

+ + भिर्भाजयेद् भागैर्भद्रं प्राज्ञः समन्ततः ।
शृङ्गाणि स्युर्द्विभागानि सहितान्युदकान्तरैः ॥ १० ॥

भागं प्रमा + + + रादामूलतलमस्तकम् ।
शृङ्गेषु रथिका कार्या भागपादेन निर्गता ॥ ११ ॥

भागेनैकेन निष्क्रान्तं विस्तृतं (चतुश्वतान् ?) ।
मध्यभद्रं विधातव्यमाशासु चतसृष्वपि ॥ १२ ॥

पीठं प्रासादपीठस्य नात्र कुर्वीत मण्डपे ।
(तलपट्टे भवेच्छोकनाशोयाक्षितिरङ्गिका?) ॥ १३ ॥

तलपट्टमधस्तस्या मण्डपस्य निवेशयेत् ।
कर्तव्यमेवमग्रेऽग्रे निम्नं निम्नतरं ततः ॥ १४ ॥

अथवा तत्समं दद्यात् स्थपतिः शास्त्रवित्तमः ।
चतुभागायतद्वारं षड्(द्वारुक?दारुक)समन्वितम् ॥ १५ ॥

अग्रभद्रं विधातव्यं चतुस्तम्भविभूषितम् ।
पृष्ठतश्च भवेदेवं संसृतिश्चैत्रमण्डपे ॥ १६ ॥

संसृतेः शुकनासा स्याद् भूमिताः(?) पृष्ठभद्रकम् ।
शेषं तथैव कर्तव्यं विधानं मण्डपस्य तु ॥ १७ ॥

स भित्तिभिः परिक्षिप्तः कर्तव्यः पार्श्वयोर्द्वयोः ।
भागेन कल्पयेद् भित्तिं गवाक्षैरुपशोभिताम् ॥ १८ ॥

वातायनाश्च कर्तव्याः सह चन्द्रावलोकनैः ।
प्रासादद्वारवद् द्वारविस्तारो मण्डपे भवेत् ॥ १९ ॥

सपादः सत्रिभागो वा सार्धः (सौम्याथवा?) भवेत् ।
ऊर्ध्वद्वारवि(धे?धिः) कार्यो मूलद्वारानतिक्रमात् ॥ २० ॥

जालव्यालकपोतालीमत्तवारणकैर्घुताः ।
भ्रमनिर्मापितै स्तम्भैः कर्तव्याश्च गवाक्षकाः ॥ २१ ॥

वातायनं तदर्धेन पादोनं (द्वा?चा)वलोकनम् ।

क्षणमध्ये प्रकुर्वीत चतुष्कीं विधिवच्छुभाम् ॥ २२ ॥

क्षोभायां बाह्यतो रेखा क्षात्या द्रुमं च विवर्जयेत्(?) ।

दारुकर्मवि(धे?धि)र्मध्ये यथा स्यात् कथ्यते तथा ॥ २३ ॥

समैः क्षणैः समैः स्तम्भैः समैश्चालिन्दकैर्युतः ।

समैः कर्णैश्च + + + समद्रव्यविधानवान् ॥ २४ ॥

षड्दारुकैस्तिरश्चीनैः कार्याः कैश्चिन्मुखायतैः ।

तुला समतला यद्वा प्रोत्क्षिप्रा मध्यदेशगा ॥ २५ ॥

तुलाषड्दारुकाधी(नांस्त?ना त)दधीनानि तानि वा ।

केचिन्मन्थानसंस्थाना(लीगतिर्युताप?) ॥ २६ ॥

अथवा मध्यतः कार्या + स्तम्भालिन्दवेष्टिताः ।

महाधरयुता कार्या चतु(ष्क?ष्व्यु)भयतः समा ॥ २७ ॥

गजतालुलुमाकर्म द्रव्यैः स्यादुत्तरोत्तरैः ।

एते नानाविधाः कार्या द्रव्यैरविकलैस्तथा ॥ २८ ॥

या काचिद् रोचते प्राज्ञस्तामेकां कारयेत् क्रियाम् ।

(ल?)क्षणान्तराण्यलङ्कुर्यादिल्लीतोरणकैस्तथा ॥ २९ ॥

वज्रबन्धसमायुक्ता घण्टिकापल्लवैर्युताः ।

हारपद्मदलाकीर्णाः शालभञ्जीविराजिताः ॥ ३० ॥

स्तम्भकाश्च विधातव्याः पञ्चाभरणभूषिताः ।

कण्ठकैरतिचित्रैश्च रथकैस्तोरणैः सह ॥ ३१ ॥

विधानैर्विविधाकारैरूपकमोपशोभितैः ।

एवंविधा विधातव्या सीमातुल्या(तु?स्तु)लोदयाः ॥ ३२ ॥

प्राग्ग्रीवकेष्वलिन्देषु मध्ये भागे च पार्श्वयोः ।

न तलानि विधीयन्ते यथाकामं क्रिया भवेत् ॥ ३३ ॥

सीमाद्वारे यथा वायोः प्रवेशं नैव पीडयेत् ।

(तथार्द्धरिका?) कार्या षट्स्योपर्यवस्थिता ॥ ३४ ॥

वेदिव्यालकपोताली मत्तवारणतुलोदयः(?) ।

षड्दारुकं + + भद्रे तत्र कुर्वीत बुद्धिमान् ॥ ३५ ॥

बाह्यतो मण्डपेऽप्येवं मानतः कर्मतोऽपि च ।

कपोतालीवरण्डीभिस्तथाचान्तरपत्रकैः ॥ ३६ ॥

कर्णप्रासादकैश्चित्रैः कर्म स्याद् भद्रमण्डपे ।

उच्छ्रायस्य (विवेचीयादशस्त्वन्यतमो?) बुधैः ॥ ३७ ॥

शि(ख)रस्य त्रिभागेन पादोनैकेन वा भवेत् ।

उच्छ्रायो (मण्डपस्यामः शुकनाससमुच्छ्रिते?) ॥ ३८ ॥

हर्म्यं वा तत्र कुर्वीत चारुकर्णोपशोभितम् ।

भद्रमण्डपलक्षणम् ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे नन्दनं प्रविभाजयेत् ॥ ३९ ॥

भद्रं षड्भागमायामाश्रुतुर्भागं तथा (पव?) ।

भागभागं निष्क्रान्ते(?) स्तम्भैः प्राग्ग्रीवकल्पितैः ॥ ४० ॥

पञ्चभागायता ज्ञेया कर्णे भद्रान्तरस्थिता ।

भित्तिः स्याद् भागविस्तारा सलिलान्तरसंयुता ॥ ४१ ॥

एवं चतुर्दिशं कार्गो नन्दनो मण्डपः सदा ।

नन्दनः ॥

महेन्द्रस्य तलच्छन्दः कर्णौ लाङ्गलसंयुतौ ॥ ४२ ॥

चतुर्भागायतो दिक्षु दारुकर्मविभूषितः ।

द्विभागिकानि शृङ्गाणि क्षोभयेदुदुकान्तरैः ॥ ४३ ॥

चतुर्भागायतं भाग + + मेकं तु निस्सृतम् ।

एकतश्च मुखं दद्याद् दारुकर्म(परिच्युतम्?) ॥ ४४ ॥

महेन्द्रः ॥

नन्दनश्चेद् बहिर्भद्रैर्जलमार्गैर्विवर्जितः ।

भागद्वितयविस्तारो भागमेकं विनिर्गतौ(?) ॥ ४५ ॥

प्राग्ग्रीवपार्श्वयोर्दद्यादुच्छ्रायोर्ध्वपदस्थितौ(?) ।

(वोतयेनौ वा?) कुर्वीत वर्धमानस्तथा भवेत् ॥ ४६ ॥

वर्धमानः ॥

पक्षद्वये नन्दनस्य भद्रे भित्त्याभिवेष्टयेत् ।
गवाक्षकैरलङ्कुर्यान्न कुर्यादुदकान्तरम् ॥ ४७ ॥
स्वस्तिकोऽयं समाख्यातः सर्वलक्षणलक्षितः ।

स्वस्तिकः ॥

अथाभिधीयते सम्यक् सर्वतोभद्रलक्षणम् ॥ ४८ ॥

कर्णे कर्णे (लाङ्गले वेत्सार्ध?) भागद्वयायतम् ।
कार्या परस्परं तेषु दारुक(र्म)विकल्पना ॥ ४९ ॥

भागेनैकेन निर्यातं भागषट्केन चायतम् ।
षड्दारुकद्वयं भद्रं कारयेद् (बाह्यवस्थितम्?) ॥ ५० ॥

सर्वतोभद्रः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे + प्राग्भागैर्विभाजयेत् ।
त्यक्त्वा(तेस मध्ये?) कर्णेष्वदध्याल्लाङ्गलानि च ॥ ५१ ॥

चतुर्भागान्तरस्थानि षड्दारुकयुतानि च ।
कर्तव्यं भागानिष्क्रान्तं दिक्षु भद्रचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥

चतुष्पदस्तदायामात् सर्वतोऽलिन्दको बहिः ।
प्रतिभद्राणि कुर्वीत चतुर्भागायतानि च ॥ ५३ ॥

निर्गतानि(रभागेन?) दिक्षु स्तम्भान्वितानि च ।
इत्येतैर्लक्षणैर्युक्तो महापद्मः प्रकीर्तितः ॥ ५४ ॥

महापद्मः ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुष्कोणविभूषिते ।
अलिन्दावेष्टितं कुर्यात् प्राग्ग्रीवं मुखसंश्रितम् ॥ ५५ ॥

गवाक्षकाश्च कर्तव्यास्तथा चन्द्रावलोकनाः ।
वातायनास्तथोद्द्योताः समन्ताद् रूपशोभिताः ॥ ५६ ॥

गृहराजक्रिया ह्येवं सर्वशोभासमन्विता ।
एवं लक्षणसंयुक्त (मैतृगोमपि?) मन्दिरम् ॥ ५७ ॥

गृहराजः ॥

सपादद्विगुणाः सार्धद्विगुणाः सान्तरोद्भवाः ।

क्षुद्रप्रासादकेषु स्युर्मण्डपा बहवोऽपरे ॥ ४ ॥

क्षेत्रालामे पुनरिमान् सर्वान् सर्वेषु योजयेत् ।

दैर्घ्यादैर्घ्येण गृह्णीयाद् विस्तृती + + + तथा ॥ ५ ॥

प्रमाणं मण्डपे(कार्ये?) बलभ्यां गरुडेऽपि च ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशधा प्रविभाजिते ॥ ६ ॥

भागैश्चतुर्भिर्भद्रं स्याद् द्वौ भागौ प्रतिभद्रकम् ।

अग्रतः पृष्ठतो वापि निर्गमो भागिको भवेत् ॥ ७ ॥

भद्राणां निर्गमो भागं सार्धभागमथापि वा ।

प्रासादस्य त्रिभागेन चतुर्भागेन वा भवेत् ॥ ८ ॥

अर्धेनाथ षडंशेन पञ्चांशेनाथ निर्गतिः ।

प्रासादानां समा कार्या पादोना वा प्रमाणतः ॥ ९ ॥

कार्या त्रिभागहीना वा मण्डपास्तु समैः क्षणैः ।

स्वविस्तारसमं भद्रे मुखे चैषा प्रकीर्तिता ॥ १० ॥

कर्णा द्विभागिका ज्ञेयास्तेषां कोणचतुष्टये ।

वामदक्षिणभागाभ्यां सह भद्रं षडंशकम् ॥ ११ ॥

प्रतिभद्रे नचैतस्मिन् विदध्यादग्रपृष्ठयोः ।

चतुःषष्टिधरोऽयं स्यात् पुष्पको नाम मण्डपः ॥ १२ ॥

पुष्पकः ॥

दिक्त्रये प्रतिभद्राणि मुखे प्राग्ग्रीव एव हि ।

पुष्पभद्रो (तिस्तम्भश्चतुष्कः सुप्रभो?) भवेत् ॥ १३ ॥

इति स्तम्भद्वयत्यगाद् ब्रूमो मण्डपविंशतिम् ।

(यो पुष्पभद्रस्तु व्रतोऽमृतनन्दनः?) ॥ १४ ॥

कौसल्यो (युद्धि?) संकीर्णो गजभद्रो जयावहः ।

श्रीवत्सो विजयश्चैव वस्तुकीर्णश्चुतिर्जयः ॥ १५ ॥

यज्ञभद्रो विशालश्च सुश्लिष्टः शत्रुमर्दनः ।

(भार्यबो?) दम्पश्चैव मानवो मानभद्रकः ॥ १६ ॥

सुग्रीवो मण्डपः प्रोक्तो भद्रैर्युक्तश्चतुष्पदैः ।

चतुर्भिस्त्रिपदैः कर्णैर्निर्गमैः प्रागुदाहृतैः ॥ १७ ॥

धराणामेव विंशत्या चतुरुत्तरया युतः ।

(अस्मद्भासस्तम्भं षडन्ये द्विधरक्षयात्) ॥ १८ ॥

सुग्रीवो हर्षनामा च कर्णिकारः पदार्थिकः ।

सिंहश्च सा(ग?)भद्रश्च (सुस्तत्र?) श्रेति सप्तमः ॥ १९ ॥

सप्तविंशतिरित्युक्ता मण्डपानां समासतः ।

एषां विचित्ररूपाणां प्रासादाकृतिधारिणाम् ॥ २० ॥

मिश्रकाश्च परिज्ञेया हस्तैर्द्वित्र्येकमानतः ।

मूलप्रासादतुल्या वा त्र्यंशेनार्धेन चोर्जिताः ॥ २१ ॥

द्विस्तम्भशुकनासाग्रे विज्ञेयः पादमण्डपः ।

प्रासादभित्तिमानेन मण्डपे भित्तयः स्मृताः ॥ २२ ॥

(सपादसत्रिभागा वा वी स्यु + + + + + ?) ।

कचिद् भित्तिविहीनांश्च कुर्यादाकाशमण्डपान् ॥ २३ ॥

लतिष्वेष विधिः प्रोक्तः सान्धारेषु स्वमानतः ।

प्रासादो यादृशस्तादृक् मण्डपोऽपि तदग्रतः ॥ २४ ॥

यानि प्रासादनामानि तानि स्युर्मण्डपेष्वपि ।

वास्तुभेदेन भेदोऽयं मण्डपानां विधीयते ॥ २५ ॥

शतार्धमण्डपस्थानं (नीलार्धं भोजनाय च?) ।

यज्ञार्थो यतिमुख्यार्थो विहा(रा)र्थो नृपालदो(?) ॥ २६ ॥

कार्यो (दशभ्य?) विस्तारो + + + तु शतावधेः ।

हस्तानां संख्यया मानं हस्तेन स्याद् गृहेशितुः ॥ २७ ॥

उपयोगानुसारेण स्वधिया परिकल्पितः ।

आयतश्चतुरश्रो वा कर्तव्यो नाद्यमण्डपः ॥ २८ ॥

शतमष्टोत्तरं ज्येष्ठश्चतुःषष्टिकरोऽवरः ।

कनिष्ठो मण्डपः कार्यो द्वात्रिंशत्करसंमितः ॥ २९ ॥

अद्विविस्तारोऽस्य स्यान्नेपथ्यगृहकादि तु (?) ।

परिच्छेदानुसारेण स्वधिया परिकल्पयेत् ॥ ३० ॥

द्वारद्वयं च कर्तव्यं तत्प्रमाणानुसारतः ।

नेपथ्यगृहके चान्यत् तृतीयं रङ्गसम्मुखम् ॥ ३१ ॥

समैः क्षणैः समैः स्तम्भैरलिन्दैश्च समैर्युताः ।

समकर्णाः समा द्रव्यविधेया मण्डपाः शुभाः ॥ ३२ ॥

(भित्तिमां चतुस्रस्यात्?) कार्यः कामं सनिर्गमः ।

स्तम्भकोणाश्रितं मानं भित्तिः स्यान्मानबाह्यतः ॥ ३३ ॥

वेदिर्मण्डपभूषाद्यैः स्यान्मध्ये बाह्यतोऽपि वा ।

क्षेत्रलोभे तु कर्तव्या भित्तिमानस्य मध्यतः ॥ ३४ ॥

चतुःषष्टिपदं ज्येष्ठे भद्रं कुर्याच्चतुष्पदम् ।

एकाशीतिपदं मध्ये भद्रं स्यात् पञ्चभागिकम् ॥ ३५ ॥

(सततागा?) विभक्ते तु खण्डशः स्यात् कनीयसि ।

कर्णा द्विभागिकाः कार्या भित्तियुक्तश्च मण्डपः ॥ ३६ ॥

भद्रप्रासादसदृशौ कर्णभद्रं च भाजयेत् ।

क्षोभणं बाह्यतो रक्षेत् (पाडनं?) स्याद् विपर्यये ॥ ३७ ॥

क्षरकं कुम्भकलाशा(?) कपोतं जङ्घया सह ।

प्रासादस्यानुरूपेण + + + + + ॥ ३८ ॥

रुचकश्चतुरश्रः स्यादष्टाश्रिर्वज्र उच्यते ।

द्विवज्रः षोडशाश्रिश्च प्रतीतो द्विगुणस्ततः ॥ ३९ ॥

मध्यप्रदेशेऽयं स्तम्भो वृत्तो वृत्तः प्रकीर्तितः ।

अथान्येन प्रकारेण षोढा कुर्वीत मण्डपान् ॥ ४० ॥

त्रिपञ्चसप्तनवभिश्चतेक्षणैः उभयसमः (?) ।

(साद्रमध्यक्षणोऽन्येभ्यः?) सत्र्यंशः सार्ध एव वा ॥ ४१ ॥

एवमेव प्रकर्तव्यः षड्प्रकारेऽपि मण्डपे ।

प्रासादगर्भस्यान्तेन (स्युस्तद्भित्तिरथापिवा?) ॥ ४२ ॥

स्तम्भसूत्रस्य मार्गेण क्षणे मण्डपमध्यगे ।
 मूलप्रासादगर्भेण कार्या वा भद्रविस्तृतिः ॥ ४३ ॥
 शेषाः क्षणा विधातव्या (समसंख्याक्षतैर्धरैः?) ।
 प्रासादच्छादनासाङ्गिः(?) सत्र्यंशावापि मण्डपे ॥ ४४ ॥
 सदृशां स समश्चशब्द्वा + समतले भवेत् (?) ।
 उच्छ्रायं मण्डपे ब्रूमः प्रकारेणापरेण च ॥ ४५ ॥
 तलार्धं पदमध्येया + यस्य विहितः शुभः ।
 प्रासादे दशधा भक्ते चतुःपञ्चकरे समा ॥ ४६ ॥
 नव्यंश मण्डपस्यादुत्तरपट्टयोर्द्वयोः(?) ।
 षड्युत्सूहस्तेत्वष्टांशं सप्तभागे न वास्तके(?) ॥ ४७ ॥
 दशैकादशके षट् स्युः सार्धभागासु संख्यया ।
 त्रयोदशक + + + हस्तयोः सार्धपञ्चकम् ॥ ४८ ॥
 सपादाः पञ्चभागाः स्युश्चतुर्दश करे पुनः ।
 तदूर्ध्वं विंशतिं यावदुच्छ्रितिः पञ्चभागिकी ॥ ४९ ॥
 संसृता (व्यतिरिक्तव्या त यथा वापि?) प्रकल्पयेत् ।
 शुकनासस्य यः स्तम्भः स्तम्भो यो मण्डपस्य च ॥ ५० ॥
 मिथः श्लिष्टावपि व्यक्तौ यत्र तौ संश्रितौ हसः(?) ।
 (प्रासादकोणस्तम्भो य ग्रस्तास्ते ग्रस्तमण्डपा?) ॥ ५१ ॥
 निर्गता व्यतिरिक्ताः स्युश्चतुर्भद्रविभूषिताः ।
 तलपट्टाञ्छौकनासाव्यातले(?) भूमिरङ्गिका ॥ ५२ ॥
 तलपट्टमधस्तस्या मण्डपानां नियोजयेत् ।
 एवं परं परं कुर्यान्निम्नान्निम्नतरं बुधः ॥ ५३ ॥
 सममेवाथवा कुर्यात् प्रासादतलमानतः ।
 ध्रुवादिनाम्नां श्रीकूटः प्रवृत्तानां तथैव च (?) ॥ ५४ ॥
 रुचकप्रभृतीनां च या संज्ञा या विभक्तयः ।
 मण्डपेष्वपि ता ज्ञेया (तस्ति)त्सम्बन्धेषु नान्यथा ॥ ५५ ॥

देवालयोत्सवार्थाय विमानानि पृथक् पृथक् ।

मण्डपादि समाख्यातादूर्ध्व(?) स्युः सप्तविंशतेः ॥ ५६ ॥

देवयात्रानिमित्तानि तथैव परिकल्पयेत् ।

चतुःषष्टेरप्यधिकाः स्तम्भाः स्युः पदसंख्यया ॥ ५७ ॥

प्रासादाङ्गानि + + स्युस्तत्क्षणान्मण्डपेन च ।

संवास्तुपदं संबुद्ध्या(?) कर्तव्यो विषमैः क्षणैः ॥ ५८ ॥

न दोषो जायते तत्र (शिल्पीच्छतेऽत्र?) कारणम् ।

अथ दारुकलां ब्रूमः + + मण्डपसंश्रयाम् ॥ ५९ ॥

(या)दृक् समतलं तत्र विभागस्तादृगुच्यते ।

प्रासादस्य विभागेन राजसेनं तु भागिकम् ॥ ६० ॥

वेदी भागद्वयं ज्ञेया द्वौ भागौ मत्तवारणम् ।

चन्द्रावलोकनं तद्वद् विधातव्यं द्विभागिकाम् ॥ ६१ ॥

पट्टो भवति भागार्धमर्धभागिकमासनम् ।

कूटस्तम्भं तु भागेन सपादेन प्रकल्पयेत् ॥ ६२ ॥

शीर्षकं(क?भ)रणं चैव सपादं भागमिष्यते ।

एतत् समतले कार्यं विषमोऽपि क्वचिद् भवेत् ॥ ६३ ॥

पट्टि(?)र्भागिकी विधातव्या प्रकारेणापरेण च ।

अधस्तादूर्ध्वपट्टस्य तलपट्टस्य चोर्ध्वतः ॥ ६४ ॥

पदे त्रिभागमध्ये वा कार्या चन्द्रावलोकने ।

तदधस्ताद् विधातव्यो विभागः पञ्चभिः पदैः ॥ ६५ ॥

भागिकं राजसेनं स्याद् वेदिकापि द्विभागिकी ।

मत्तवारणकं कार्यं भागद्वितयसंमितम् ॥ ६६ ॥

दशभक्तेऽथवा कार्या चतुर्भिश्चन्द्रलोकना ।

भागद्वयेन वेदी च तत्समं मत्तवारणम् ॥ ६७ ॥

भागेन रूपहारस्तु भागेनैकेन कण्ठिका ।

मत्तवारणपातश्च त्र्यंशहीनैकभागिकः ॥ ६८ ॥

भागार्धेनाथका पातस्तयोर्मध्ये च मध्यमः ।

कूटामारेष्विदं मानमिदं चासनपट्टके ॥ ६९ ॥

भागद्वितयविस्तारमासनं परिकल्पयेत् ।

पिण्डो भागद्विकं तस्य त्र्यंशोना मत्तवारणा(?) ॥ ७० ॥

वेद्यां पिण्डः सपट्टः स्यात् कूटागारे तथैव च ।

राजसेनस्य पिण्डस्तु कूटागारसमो भवेत् ॥ ७१ ॥

कुम्भिकापि च तत्पिण्डा चोदरूर्ध्वतयासनम्(?) ।

विद्यात् + सशिरःस्तम्भः कूटकं + + + + ॥ ७२ ॥

राजसेनसमा कुम्भी जङ्घा वेदिसमा भवेत् ।

एवमेतत् त्रिधा प्रोक्तं (सूर्प?)च्छाद्यमथोच्यते ॥ ७३ ॥

अधःपट्टोर्ध्वपट्टान्तं पञ्चधा प्रविभाजयेत् ।

उभाभ्यां वा त्रिभिर्वापि भजे(निगतिस्तु सायते?) ॥ ७४ ॥

+ + पट्टसमोऽथ (द्वा?) त्रयोदशविभाजिते ।

शूर्पभागं त्यजेदूर्ध्वं (भ?घ)टना द्वादशांशिका ॥ ७५ ॥

कुर्यान्निपातं शूर्पस्य पञ्चभागमथापि वा ।

दण्डकैर्भूषयेच्छूर्पं मध्ये दण्डं विवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

मध्ये च स्तम्भिका वेद्या मत्तवारणकस्य च ।

भागेन पट्टपिण्डस्तु सपादेनाथवा भवेत् ॥ ७७ ॥

पृथुत्वं स्यात् स षड्भागपिण्डतुल्यं तु पट्टके ।

स्तम्भः पट्टसमः कार्यः शीर्षकं त्रिगुणं ततः ॥ ७८ ॥

स्तम्भादप्यधिका कूटी हीरकादपि पट्टकः ।

बाहापट्टवदुच्छ्रायः शुकनासस्य पट्टके ॥ ७९ ॥

पट्टपिण्डोच्छ्रिता वेदी यद्वा पट्टाधिका भवेत् ।

मण्डपे स्यात् तुलोच्छ्रायो विभागैः प्रमितोऽष्टभिः ॥ ८० ॥

स्थलप्रासादतुल्यो वा पातस्य च सतोऽपि वा ।

निम्नोन्नतं छादयेच्च छेदिकायोगतो बुधः ॥ ८१ ॥

कण्ठकश्चे + कार्थेन विधातव्यो विचक्षणैः ।

छेदिकायोगतो मध्ये स्तम्भाः स्युर्बाह्यतोऽधिकाः ॥ ८२ ॥

पञ्चाशेनाष्टषष्ठेन केशान्तात् सालभञ्जिकाः ।

रथिकाशालभञ्जीभिः स्थिताभिः पट्टिकोर्ध्वतः ॥ ८३ ॥

मध्ये(क?वा)राटकं कार्यं मनोज्ञं वा सरोरुहम् ।

छादयेद् वास + मलं विमानैर्बहुभेदवत् ॥ ८४ ॥

क्षणान्तरेषु रचयेद् दीप्तिकातोरणानि च ।

अन्यथा वा भवेद् वृत्तं चतुरश्रो यथा क्वचित् ॥ ८५ ॥

गजतालुयुतः पट्टस्योर्ध्वमष्टाश्रिरेववा ।

कुर्वीत मध्ये चाष्टाश्रिवाह्यतः पङ्क्तयस्तथा ॥ ८६ ॥

(विशेषं छादये ब्रूमः स्तम्भिकामूत्रद्वासयेत्?) ।

षोडश द्वादशाष्टौ वा + + + चतुरोच्छ्रायाः(?) ॥ ८७ ॥

पादान्यदूषर्यत् शिल्पीमवेक्षणवशात्(?) सदा ।

त्रयोविंशतिधा भाज्यमन्तरं पट्टघण्टयोः ॥ ८८ ॥

घण्टादूर्ध्व(?)पद्मपत्री सार्धभागसमुच्छ्रिता ।

उच्छ्रिता सार्धभागेन तदूर्ध्व (दृष्टरी?) भवेत् ॥ ८९ ॥

कपोत्त ग्राससंयुक्ताः सार्धभागसमुच्छ्रिताः ।

कण्ठक(स्त?स्तु)द्विभागः स्यादमरस्तु द्विभागिका(?) ॥ ९० ॥

भागद्वयं विनिष्क्रान्तं त्रिभागे गजतालुके ।

(दत्ताभागानुच्छितकोसलं भागं च धालिका भवेत्?) ॥ ९१ ॥

भागद्वयं द्वितीयं च तृतीयं च द्विभागिकम् ।

तस्योपरिष्ठात् कर्तव्या(वलिन्यार्धभागिका?) ॥ ९२ ॥

निर्गमः सूत्रमार्गेण एकैकस्य स्वमानतः ।

+ + गर्भकोणः स्यात् पक्ष्मपत्र्याश्च मस्तमे(?) ॥ ९३ ॥

विमृश्य सूत्रधारो वा निर्गमं कल्पयेत् स्वयम् ।

समैर्भागैश्च पत्रैश्च विकटैः पद्मपत्रकैः ॥ ९४ ॥

हस्तितुण्डैर्वरालैश्च शालभञ्जीभिरण्डकैः ।

भल्लिकातोरणैश्चैव भूषणीया चतुष्किका ॥ ९५ ॥

खेचरैर्मा(ल?ल्य)बन्धैश्च नानाकर्मवितानिभिः ।

मन्दारकैः शुक्तिभिर्वा पद्मैर्वा नागपाशकैः ॥ ९६ ॥

मण्डपं छादयेत् प्राज्ञो बाह्यतस्त्वभिधीयते ।

द्विगुणा(?) मौलिकद्वारात् पादोनद्विगुणं क्वचित् ॥ ९७ ॥

सार्धभागमितं यद्वा त्र्यंशोनं द्विगुणं क्वचित् ।

क्वापि त्र्यंशाधिकं कार्यं चतुर्द्वारं + मण्डपे ॥ ९८ ॥

द्वारे कार्यौ प्रतीहारौ भल्लिका तोरणास्तथा ।

स्तम्भयोश्च वरालौ द्वौ शालभञ्जिकया सह ॥ ९९ ॥

प्राग्ग्रीवं भद्रभद्रं च रथिका वेदिका बहिः ।

मण्डपे वरकस्योर्ध्वमधस्ताच्छिखरस्य च ॥ १०० ॥

भागार्धं छेदपट्टः स्याच्छेषं कुर्वीत संवृत्ति(?) ।

(शिखरा त्र्यंशयुग्मेन पादोन वा कारयेत्(?) ॥ १०१ ॥

प्रासादे शुकनासं तु (सन्तु सम्भ्रमेऽथवा?) ।

मण्डपस्योदयः स्वस्मादधस्तादथवा भवेत् ॥ १०२ ॥

वामनाद्या अनन्तान्ताः प्राक् प्रोक्ता ये दशो(पयेः?दयाः) ।

कर्तव्यो मध्यतस्तेषामुदयः कोपि मण्डपे ॥ १०३ ॥

प्रविभज्योदयं त्रेधा घण्टां भागेन कारयेत् ।

तत् त्रिभागेन तिलकस्तिलकार्धेन(फंसना?) ॥ १०४ ॥

क्रमैस्त्रिभिः पञ्चभिर्वा शूर्पैर्निर्माणमिष्यते ।

स्कन्धछाद्यवासने वामेषा सवणोदिता(?) ॥ १०५ ॥

शोभां भद्रेषु कर्णेषु यथायोगं प्रकल्पयेत् ।

वीथीभिश्चन्द्रशालाभिः सिंहकर्णैश्च शोभनैः ॥ १०६ ॥

रथिकाभिर्वरालैश्च तिलकैश्चारुदर्शनैः ।

शुकनासैर्गजैः सिंहैरन्यैरित्येवमादिभिः ॥ १०७ ॥

कर्मप्रकारैः कर्तव्या मण्डपे भूषणक्रिया ।
 त्रिविधैरथवा कूटैः सङ्घटैः कक्षकूटकैः ॥ १०८ ॥
 तिलकैर्वा तमज्जैर्वा खुरच्छाद्यैः सघट्टकैः ।
 शृङ्गादिभिः प्रभेदैश्च कार्या मण्डपसंवृतिः ॥ १०९ ॥
 शुकनासोच्छ्रितेरूर्ध्वं न कार्या मण्डपोच्छ्रितिः ।
 अधस्ताद् यत्र या प्रोक्ता कर्तव्या सा त्वशङ्कितैः ॥ ११० ॥
 वलभ्यां शुकनासान्ता कर्तव्या मण्डपोच्छ्रितिः ।
 (मण्डपः शुकनासान्तं योग्रासकुलम् ?) ॥ १११ ॥
 न च तत् पुरमध्ये तु यत्र सा मण्डपोच्छ्रितिः ।
 (स पुत्रयस्तबन्धवतस्य तयः कर्तकारकैः ?) ॥ ११२ ॥
 हीनाधिकप्रमाणेषु (द्वविष्टेषु ?) वास्तुषु ।
 द्रव्यैर्वाधिकप्रमाणेषु (?) स्युरनर्थाः पदे पदे ॥ ११३ ॥
 ऋद्धिः पुरस्य न भवेत् स्यात् पुराधिपतेर्भयम् ।
 क्लृप्तैरेवं मण्डपैः सुप्रमाणै-
 लक्ष्मोपेतैः सद्विधानेन कर्तुः ।
 ऋद्धिः सिद्धिः कारकस्यापि लोके
 क्षेमं च स्याद् भूमिभर्तुर्जयश्च ॥ ११४ १/२ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

सप्तविंशतिमण्डपाध्यायो नाम सप्तषष्टितमः ॥

—:०:—

अथ जगत्यङ्गसमुदायाधिकारो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

—:०:—

त्रिदशागारभूत्यर्थं भूषाहेतोः पुरस्य तु ।
 भुक्तये मुक्तये पुंसां सर्वकालं च शान्तये ॥ १ ॥
 निवासहेतोर्देवानां चतुर्वर्गस्य(हे ?) सिद्धये ।
 मनस्विनां च कीर्त्यायुर्यशस्सम्प्राप्तये नृणाम् ॥ २ ॥

जगतीनामथ ब्रूमो लक्षणं विस्तरादिह ।
 प्रासादं लिङ्गमित्याहु(स्त्रिग?)लुयनाद् यतः ॥ ३ ॥
 ततस्तदाधारतया जगती पीठिका मता ।
 आकारविस्तृतायामानुच्छ्रायं (ते क्रिया?) ॥ ४ ॥
 विना तमङ्गप्रत्यङ्गा कल्पना नापि + क्रमम् (?) ।
 विभक्तिं तिलकन्दानां भद्रविस्तारनिर्गमम् ॥ ५ ॥
 जलाधार(प्रदोश्च?) प्रवेशं निर्गमोद्गमम् ।
 मानसंख्यां च शालानां संस्थानोन्मानलक्षणम् ॥ ६ ॥
 परिक्रमं(तैमेवासां?)संज्ञां च त्रिविधामपि ।
 षट्प्रकारत्वमे(वासां?) सम्भवस्य च कार(णः?)णम् ॥ ७ ॥
 मूलशा(लो?ला)परिच्छित्तिं परिक्रमविनिर्गमम् ।
 सञ्चयद्वारसोपानमुण्डिकामण्डसम्भवा(न्) ॥ ८ ॥
 द्वित्र्यादिदेवताधिष्ण्याज्जगतीस्तोरणानि च (?) ।
 युक्तानि लक्षणैः सर्वैर्यथावत् संप्रचक्ष्महे ॥ ९ ॥
 चतुरश्रा समा शस्ता मनोज्ञा सर्वतःपुत्रा ।
 अंशप्रगूढदिग्भागा प्रासादानुगता शुभा ॥ १० ॥
 चतुरश्रायता यद्वा वृत्ता वृत्तायता तथा ।
 अष्टाश्रिर्वा विधातव्या सा संशोध्यादितः क्षितिम् ॥ ११ ॥
 निरूप्य त्रिदशागारं संस्थानोन्मानलक्षणैः ।
 तदाकारवर्ती पार्श्वे जगतीं तस्य योजयेत् ॥ १२ ॥
 कनीयसी मध्यमा च ज्येष्ठा चेति त्रिधैव सा ।
 कनीयःप्रभृतिष्वेताः प्रासादेषु नियोजयेत् ॥ १३ ॥
 जगत्यो(भ्रमणीभिः स्फारौकद्वित्रिस्त्रिभिः?) क्रमात् ।
 (नानाशातिशान्तिन्यकनिष्ठाद्या?) मनोरमाः ॥ १४ ॥
 प्रासादस्या(सु?नु)रूपेण साङ्गोपाङ्गादिसंख्यया ।
 शालास्तासां मताः कर्म प्रोच्यते सामुदायिकम् ॥ १५ ॥

(श्री आ द्वादशकराद्ध्वमोर्ध्वा?) विंशतिहस्ततः ।
 शालात्रिभागं तुर्यांशः स्याद्वा द्वात्रिंशतः पुनः(?) ॥ १६ ॥
 आसनार्धात्तु पञ्चाशच्छाला(?) प्रासादतो भवेत् ।
 बहुदेवकुला या तु प्रासादस्यानुसारतः ॥ १७ ॥

ब्रूमः प्रकाराञ् शालानां यथायोगमिहाधुना ।
 कर्णोद्भवा भ्रमो(च्छा?त्था) च भद्रजा गर्भसम्भवा ॥ १८ ॥
 मध्यजा पार्श्वजा चेति भेदास्तासां भवन्ति षट् ।
 (विस्तारायामतोस्यभिः कर्णजा पूर्वमारिणा?) ॥ १९ ॥

भ्रमजा तत्प्रमाणेन ++ पादेन वेष्टिता ।
 भद्रजा कर्णजातीया सार्धाया(म्य?मा) प्रकीर्तिता ॥ २० ॥
 गर्भजा मध्यजा चेति कर्णजाय(स?त)सम्मिते ।
 पार्श्वजा भ्रमजाया(सा?मा) स्थानं तासामथोच्यते ॥ २१ ॥

कर्णेषु कर्णजा ख्याता भ्रमजा च परिभ्रमे ।
 भद्रेषु भद्रजा ज्ञेया त्रयमध्ये च गर्भजा ॥ २२ ॥
 मध्ये व्यवस्थिता या तु पञ्चानां मध्यजा तु सा ।
 (पार्श्वसंस्थानश्चतस्रो यास्तासां शान्ताः?) पार्श्वद्वये स्मृताः ॥ २३ ॥

पार्श्वद्वयं स्युः कर्णानां + स्ता अपिच पार्श्वजाः(?) ।
 प्रासादविस्तृतेरर्धं विधातव्या भ्रमन्तिका ॥ २४ ॥

(पदवृद्धतिबाह्यस्याः कन्दा दिक्षु +++ च ।
 सुरसञ्चानुसारेण कुर्यादष्टौ विचक्षणः ॥ २५ ॥

(आरभ्य भद्रमालत्या यावत् त्रिंशमत्रिकाम्?)
 नवाण्डकाया यावत् स्यादेकत्रिंशत्तमे क्रमात् ॥ २६ ॥

शालाकन्दाः स्मृतास्तासां चतुर्वर्गविभाजिताः ।
 चतुष्पदा तत्र सास्या(?) स्याद् द्वादशपदो भ्रमः ॥ २७ ॥

क्रमेणानेन कर्तव्यं शालाकन्दनिवेश(तः?नम्) ।
 तद्ध्वं तु भ्रमो नास्ति शालागणविभाजने ॥ २८ ॥

(रु१भ)द्राद् भ्रमोऽयं न पुनः कर्णनिर्गमधारिणाम् ।
 रुचकस्येव कर्तव्यः कर्णदेशात् परिक्रमः ॥ २९ ॥
 शालानुसारतो भद्रे विस्तारैः कन्दकाद् बहिः ।
 कर्तव्यो निर्गमस्तत्र बुधैः पदचतुष्टयम् ॥ ३० ॥
 उदकान्तरविस्तारो भागेनार्धेन वा क्वचित् ।
 प्रजाङ्गस्य विधातव्यं क्षोभणं च पदद्वयम् ॥ ३१ ॥
 प्रासादस्य च विस्तारं दत्त्वाग्रे सलिलान्तरम् ।
 गण्डौ तत्सूत्रगौ कार्यौ भ्रमाद् द्विपदनिर्गतौ ॥ ३२ ॥
 प्रासादानां तु विस्तृत्या स्युरेकद्वित्रिनिघ्नया(?) ।
 कर्णाद् विनिस्सृतौ गण्डौ ज्येष्ठमध्यकनीयसा(म्) ॥ ३३ ॥
 (भवग्रे सुण्डिकाः?) कार्याः कर्णशालाविनिर्गम(मः?ताः) ।
 मालासोपानसंयुक्ताः प्रतीहारसमाकुलाः ॥ ३४ ॥
 प्रतोली चाग्रतः कार्या सपटो + गैला दृढा ।
 ब्रूमोऽथ जगतीपीठं तत् कुर्यादेकहस्तके ॥ ३५ ॥
 प्रासादे विस्तृतेस्तुल्यसमुत्सेधे त्रिचक्षणः ।
 द्विहस्तके तु पादोनं त्र्यंशहीनं त्रिहस्तकम् ॥ ३६ ॥
 चतुर्हस्ते (तु) कर्तव्ये सार्धहस्तद्वयोच्छ्रितम् ।
 चतुरिष्टा त्रया च + + + द्वादशहस्तकम् (?) ॥ ३७ ॥
 कनीयोमध्यमज्येष्ठानुदयान् कल्पयेत् क्रमात् ।
 अर्धं वा कर्णशालायाः पादोनं वाथ तत्समम् ॥ ३८ ॥
 अनेन (च) प्रकारेण ज्येष्ठमध्यमगोभि ।
 प्रासादयोर्जगत्युच्चा कर्णप्रासादमानतः ॥ ३९ ॥
 पीठस्य यः समुत्सेधा + + + तं विभाजयेत् ।
 भागेन खुरकं कुर्याद् भागेनैकेन वर्त्मना(?) ॥ ४० ॥
 कुम्भस्य खुर(का?कं)भागं द्विभागं कुम्भकं तथा ।
 कलशं भागिकोत्सेधं तथैवान्तरपत्रकम् ॥ ४१ ॥

वरण्डीं भागिकीं कुर्यात् तथा पट्टं च भामिकम् ।
जगत्याः खुरकाद् भागं (प्रचिशोकोद्भूतः सुरः?) ॥ ४२ ॥
पट्टो भागेन सार्धेन प्रतिष्ठाजगतीखुरान् ।
(खुरकारकुम्भकाकिञ्चित्कुम्भका क्षणरुस्तथा?) ॥ ४३ ॥
(कणकादन्तेरपत्र?) कपोतालीं तथैव च ।
पट्टिकानां प्रवेशांश्च नासिकावर्तनास्तथा ॥ ४४ ॥
निम्नोन्नतप्रवेशांश्च विदधीत मनोहरान् ।
+ धिकाभिर्विचित्राभिः कूटश्चानेकशेखरैः ॥ ४५ ॥
सुविभक्ता विधातव्याः शालानां कन्दका(मूस्त)ले ।
कर्माण्यतिविचित्राणि स्थानस्थानोचितानि तु ॥ ४६ ॥
कुर्यात् पीठेषु शोभार्थं प्रासादानां विवक्षणः ।
यथा सिंहासनं राज्ञां शोभते मणिदीप्तिभिः ॥ ४७ ॥
तथा प्रासादराजस्य पीठं कर्मभिरुत्तमैः ।
पट्टस्योर्ध्वं विधातव्यमृत्कृष्टं राजसेनकम् ॥ ४८ ॥
पुष्पितैः कमलैर्युक्तं शोभितं भारपुत्रकैः ।
तदर्थं वेदिका देशा नानापत्रममाकुला ॥ ४९ ॥
(रूपं संघटकोपेता ततश्चासमग्रदृकः ।
रत्नम्भिकाभिरनेकाभिधारयत् तं समन्वितः?) ॥ ५० ॥
तस्योपरि विधातव्यं (करव्यासनसमुत्तमम्?) ।
अन्तरं कणशालानां तलपादार्धद्वयोः ॥ ५१ ॥
राजसेनयुतां वेदीं तत्त्रिभागेन कारयेत् ।
वेदिकार्धं त्रिभागं वा तले स्याद् राजसेनकम् ॥ ५२ ॥
कूटारं + त्रिभागेन वेदेरूर्ध्वं मनोहरम् ।
करमात्रसमुत्सेधं कर्तव्यं मत्तवारणम् ॥ ५३ ॥
सुखलीलाशनार्थं तत् सप्रवेशं सनिर्गमम् ।
(गन्द्राग्रे सुकाग्रे?) च प्रतोलयग्रे तथैव च ॥ ५४ ॥

तोरणं त्रिविधं ज्ञेयं कनीयोमध्यमोत्तमम् ।

इत्थं जगत्यायतनस्य सम्यक्

प्रासादपीठस्यच सम्प्रदिष्टम् ।

विधानमेतज्जगतीषु (नार्ते-

मन्यथाभिदधाः सह लक्षणानाम्?) ॥ ५५^१/_२ ॥

इति श्रीमहार/जाधिराजश्रीभोजदेवाविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

जगत्यङ्गसमुदायाधिकारो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

—————:०:—————

अथ जगतीलक्षणं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।

—————:०:—————

वसुधा वसुधारा (च) वहन्ती च तथाप(रे?रा) ।

श्रीधरा भद्रिका चैव एकभद्रा द्विभद्रिका ॥ १ ॥

त्रिभद्रिका भद्रमाला वैमानी भ्रमरावली ।

स्वस्तिका हरमाला च कुलशीला महीधरी ॥ २ ॥

मन्दारमालिकानङ्गलेखाथोत्सवमालिका ।

नागारामा मारभव्या तथाच मकरध्वजा ॥ ३ ॥

नन्द्यावर्ता(नं?) च भूपाला पारिजातकमञ्जरी ।

चूडामणिप्रभा चैव तथा श्रवणमञ्जरी ॥ ४ ॥

विश्वरूपादिकमला तथा त्रैलोक्यसुन्दरी ।

गन्धर्वबालिका चान्या विद्याधरकुमारिका ॥ ५ ॥

सुभद्रा च समाख्याता तथान्या सिंहपञ्जरा ।

(वज्रपकुरवाद्याः?) गन्धर्वनगरी तथा ॥ ६ ॥

तथामरावती ज्ञेया रत्नधूमा च नामतः ।

त्रिदशेन्द्रसभा चैव तथान्या देवयन्त्रिका ॥ ७ ॥

चत्वारिंश(द्वि?दि)तीयं स्यादेकोना नामसंख्यया ।

(यमलाम्बरधरा नेत्रा दद्युडाः खण्डिला सिता?) ॥ ८ ॥

१. 'यमलाम्बुधरा नेत्रा दोर्दण्डा खण्डिला सिता' इति स्यात् ।

अथातः कथ्यते तासां प्रविभागो यथायथा ।

जगतीनां क्रमेणैव शालानां च यथोदितः ॥ ९ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे (षडेते स?)विभाजिते ।

समं वाचार्धयुक्ते वा गुणेऽथ मुखायताम्(?) ॥ १० ॥

मण्डपेनोज्झिते कुर्याज्जगतीमनुसारतः ।

द्वौ भागौ मध्यदेशे स्यात् प्रासादो भागिको भ्रमः ॥ ११ ॥

(कर्णादृशां समुज्य?) पार्श्वयोरुभयोः पुरः ।

श्रीखण्डिका विधातव्याः प्रासादमं + + मिमाम् (?) ॥ १२ ॥

मत्तवारणसंयुक्ता प्रतोल्यादिविभूषिता ।

प्रथ(मे?मा) च समाख्याता जगती वसुधाभिधा ॥ १३ ॥

वसुधा वसुधारा स्यात् समायुक्ताग्रशालया ।

निर्गमः पुरतः कार्यः प्रासादस्य प्रमाणतः ॥ १४ ॥

+विस्तारस्तथा कार्यस्तं चतुर्धा विभाजयेत् ।

भागिका श्रमणी कार्या शेषशाला द्विभागिका ॥ १५ ॥

मुण्डिका चापि पूर्वोक्तमानेनैवायता भवेत् ।

वसुधा च पुनः कर्णशालाभ्यां राजसिंहिका ॥ १६ ॥

प्रासादार्धेन ते का(र्य?र्ये) कर्णयोरुभयोरपि ।

स्वमानार्धेन च तयोर्भ्रमणीं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥

मूलप्रासादविस्तारा कर्तव्या मुण्डिका पुरा ।

शाला स्याद् वसुधा राजहंसाः(?) पुरो यदा ॥ १८ ॥

श्रीधरी सा तदा तस्याः (सुरोयद्यन्द्र?) पूर्ववत् ।

यदा तु हंसिकास्थाने शाले स्तोऽपरकर्णयोः ॥ १९ ॥

तद्रूपे तत्प्रमाणे च तदा सा भद्रिका भवेत् ।

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे षोडशांशविभाजिते ॥ २० ॥

पूर्वोक्तक्रमसम्पन्ने यथाकामं मुखायते ।

मण्डपायामसंयोगाद् यथाभागं विभाजिते ॥ २१ ॥

मध्ये देवालयः कार्यश्चतुर्वर्गपदान्वितः ।

बहिर्द्विपदविस्तारो भ्रमस्तस्य समन्ततः ॥ २२ ॥

कर्णे कर्णे च कर्तव्या द्विपदायामविस्तृता ।

चतुर्दिशं कर्णशाला या (पदि?) भ्रमणान्विता ॥ २३ ॥

पदद्वितयविस्तारा त्रिपदायामसंयुता ।

पदिका च भ्रमणा(?) कार्या भद्रशालाश्च सुन्दराः ॥ २४ ॥

वार्यन्तराणि परितः कुर्यान्मध्येषु शालयोः ।

पदमेकं प्रविष्टानि तदर्धं विस्तृतानि च ॥ २५ ॥

शालायाः पृष्ठभद्रे स्यादेकभद्रद्विभद्रिका(?) ।

(कपोकृताभ्यां त्रिभद्राणि पृष्ठकुक्षिषु?) ॥ २६ ॥

शालाभि(स्या?श्चा)थ तिसृभिर्जगती भद्रमालिनी ।

एकभद्रादिचतुष्टयम् ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्विंशतिभाजिते ॥ २७ ॥

षड्वर्गलक्षणोपेतो मध्ये कार्यः सुरालयः ।

देवालय(स्य)परितस्त्रिपदः स्यात् परिभ्रमः ॥ २८ ॥

ततः शालाविभक्तिश्च कर्तव्या प्रोक्तलक्षणा ।

पञ्चभागायता मध्ये(भूचतुर्विस्तृता?) पदैः ॥ २९ ॥

भद्रशालाश्च कर्तव्यास्तन्मध्ये भागिकभ्रमः ।

भद्रस्य पार्श्वद्वितये द्वि(त?प)दायामविस्तृतम् ॥ ३० ॥

शालाद्वयं विधातव्यं द्वादशी शत + भ्रमम्(?) ।

भागमेकं प्रवेशस्तु तयोः (कर्ण?) द्वयोर्भवेत् ॥ ३१ ॥

तिस्रस्तिस्त्रो भवन्त्येवं शालादि(क्र?क्षु) ति(सृ)ष्वपि ।

षडेवोदकमार्गाश्च कार्या भागार्धनिस्सृताः ॥ ३२ ॥

भागमेकं प्रविष्टाश्च भवेद्युर्दिक्त्रयेऽपि ते ।

कर्णौ च पुस्तः कार्यौ भागद्वितयसम्मिता ॥ ३३ ॥

समुण्डिका(?) विमानोऽयं सुरासुरनरार्चि(ता?तः) ।

मुण्डिकाग्रे वदेतस्मां शालाग्रासादसंमुखम् ॥ ३४ ॥

संस्तुता किन्नरैः सिद्धैस्तदा स्याद् भ्रमरावलिः ।
 वक्त्रशालाविहीना तु पार्श्वशालाद्वयान्विता ॥ ३५ ॥
 तद्रूपा तत्प्रमाणा या स्वस्तिकी सा प्रकीर्तिता ।
 प्रासादाभिमुखी शाला स्वस्तिक्यामेव चेद् भवेत् ॥ ३६ ॥
 तदानीं हंसमोलति विख्याता जगती भुवि ।
 मु(ख्यःख)स्य पार्श्वद्वितये भागं वार्यन्तरं यदा ॥ ३७ ॥
 कृत्वा (प्रासादयद्गुप्ते?) भद्रमानेन निर्गमम् ।
 प्रासादसंमितं सूत्रं शालास्तु गलभूषिताः ॥ ३८ ॥
 शुण्डिका तदवस्थे च मुखे स्याच्छालया विना ।
 कुलशैले तदा ज्ञेया हंसमालागमाश्रया ॥ ३९ ॥
 सदा महेश्वरस्येष्टा स्कन्दस्य तु विशेषतः ।
 अस्या एव यदा शाला पुरोभद्रे विधीयते ॥ ४० ॥
 तदा महीधरा प्रोक्ता महीधरमनःप्रिया ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे साष्टाविंशतिभाजिते ॥ ४१ ॥
 चतुःषष्टिपदं मध्ये कुर्याद् देवालयं बुधः ।
 चतुष्पदो भ्रमः कार्यो देवागारस्य सर्वतः ॥ ४२ ॥
 भ्रमसूत्रस्य कर्णस्था द्विपदायतविस्तृताः ।
 शालाश्च(तुस्तःतस्रः) कर्तव्या भागिकभ्रमवेष्टिताः ॥ ४३ ॥
 तासां पार्श्वेषु सन्त्यज्य भ्रमाद् भागचतुष्टयम् ।
 (शालां कं +) प्रकुर्वीत + भागायतविस्तृतम् ॥ ४४ ॥
 एकभागिकविस्तारः कर्णः (स्यात्) पार्श्वशालयोः ।
 मध्ये भागे जलाध्वा स्याद् विहाय त्रिदशं बहिः ॥ ४५ ॥
 द्विभागविस्तृतां तां च कुर्याद् भागत्रयायताम् (?) ।
 अन्तरेण जलाध्वा स्याद् मद्रपार्श्वज(लाःशा)लयोः ॥ ४६ ॥

१. 'हरमाले'ति लक्ष्ये पठ्यते । २. 'कुलशैले'ति पूर्वं पठिता । ३. 'शाला-
 स्कन्दम्' इति स्यात् ।

स च भागार्धमायामा(त्) प्रविष्टस्तावदेव च ।
 कृत्वा तिसृषु दिक्ष्वेवं सुण्डिकाकन्दमध्यतः ॥ ४७ ॥
 प्रासादार्धसमायामौ सम्यक् तुण्डौ निवेशयेत् ।
 तयोरपि च शाले द्वे भ्रमक्रमविभूषिते ॥ ४८ ॥
 कार्ये मन्दार(शाःमा)ला स्यादेवं हरमनःप्रिया ।
 सुण्डिकायां यदा तस्याः शाला सम्पद्यते तदा ॥ ४९ ॥
 अनङ्गलेखा भवति जगती पार्वतीप्रिया ।
 यत्रास्मिन्नेव विन्यासे मुखशाले विना कृते ॥ ५० ॥
 शुण्डिकागण्ड + + न्यौ शाला सौपानमालिका ।
 मुखशालान्विता सैव यदा नागोङ्गना तदा ॥ ५१ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे द्वात्रिंशद्भाग(विः)भाजिते ।
 चतुःषष्टिपदं मध्ये कर्तव्यं सुरमन्दिरम् ॥ ५२ ॥
 कार्यस्तस्य भ्रमः सम्यक् समन्ताच्च चतुष्पदः ।
 भ्रम(न्तिःन्ती) द्विपदायामे शाले (तु) भ्रमसंयु(तौःते) ॥ ५३ ॥
 स्वप्रमाणाद् विधातव्ये मध्यगे भद्रकर्णयोः ।
 स्युः षोडशप(द्रःःदाः) कन्दास्तेषु शालाश्चतुष्पदाः ॥ ५४ ॥
 चतुर्ष्वपि च कर्णेषु प्रविष्टा भ्रमजाः पदम् ।
 कर्तव्यं द्विपदायामं भद्रशालायुगं तथा ॥ ५५ ॥
 विस्तारात् प्र + पादोनमन्योन्याभिमुखं भवेत् ।
 आयता(द्) द्व्यंशविस्तारा पदेनैकेन वेष्टिता ॥ ५६ ॥
 भद्रशाला विधातव्या सार्धत्रिपदनिर्गमा ।
 सौम्यानिलीवारुणीषु नैर्ऋतीया(भ्ययो)रपि ॥ ५७ ॥
 शालास्तिस्रः प्रतिदिश(मशालाग्रेऽययादिना सुरविद्विषः?) ।
 अस्या एव मुखे शाला यदि तन्मकरध्वजा ॥ ५८ ॥
 अमराणां कृतानन्दा कृत्वैनां मोक्षमाप्नुयात् ।
 मुखशालां परित्यज्य यदैकैकाग्रकर्णयोः ॥ ५९ ॥

शाला प्रदीयते सा स्यान्नन्यावर्त(यस्यहर्षतेः?) ।
 विकर्णकन्दधोराग्रे(?) यदास्याः पृष्ठवंशगा ॥ ६० ॥
 द्विभागायामविस्तारा शाला भवति शोभना ।
 चतुर्ष्वसंस्थिता(?) शाला शालायाः सम्मुखी भवेत् ॥ ६१ ॥
 ताम्रमूला तदा ज्ञेया ब्रह्मविष्णुह(रि?र)प्रिया ।
 यदास्याः पृष्ठवंशस्था (हस्तायाम्योत्तरात्तथा ॥ ६२ ॥
 शाले क्रियेते?) तदा ज्ञेया पारिजातकमञ्जरी ।
 (वारणीचतुष्टःस्थिता?) शालायाः सम्मुखी भवेत् ॥ ६३ ॥
 (ताम्रयाम्यासौम्यासु?) शालाः स्युर्यदि वंशगाः ।
 प्रिया स्यात् सर्वदेवानां तदा चूडा(मणिः प्रभोः?) ॥ ६४ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुरश्रः समन्ततः ।
 दशांशः (स्यादुभायान्ता?) मध्ये प्रासादनायकः ॥ ६५ ॥
 + + + पुरतश्चैवं पार्श्वयोरुभयोरपि ।
 भ्रमास्तस्या विधातव्याः + + + पञ्चभिः पदैः ॥ ६६ ॥
 कर्णकन्दाश्च कर्तव्या भ्रमसूत्राद् बहिः स्थिताः ।
 द्विभागायामविस्ताराश्चतुःशालोपशोभिताः ॥ ६७ ॥
 अमुनैव क्रमेण स्युर्भद्रकन्दाः पदाधिकाः ।
 मूलप्रासादमालायां मालात्रितयधारिणाम्(?) ॥ ६८ ॥
 कर्णे कर्णे तु याः शालास्ता द्वयंशायामविस्तृताः ।
 द्विभागिकजलाधारा(स्तथा) भागपरिभ्रमाः ॥ ६९ ॥
 पदप्र(वि)ष्टाम्बुपदा भ्रमपद्धतिसंयुताः ।
 तुल्याश्चतुर्षु कर्णेषु तुल्या भद्रत्रयेऽपिच ॥ ७० ॥
 भागद्वितयविस्तीर्णा भागत्रितयमायताः ।
 (सृग?)भ्रमाश्च कर्तव्या भ्रमशालादिशान्तयोः ॥ ७१ ॥

१. 'तां त्वहर्षतेः' इति स्यात् । २. 'भूशाले'ति लक्ष्यनिर्देशे पठ्यते । ३. 'मणि-
 प्रभा' इति पाठ्यं भाति । ४. इह क्षेत्रविभाजकाशादर्शनात् किञ्चिदुत्तमिव प्रतिभाति ।

शेषं च पूर्ववत् कार्यं शुण्डिकागण्डमण्डनम् ।
 स्यात् कर्णमञ्जरित्येषा त्रिलोक्यानन्ददायिनी ॥ ७२ ॥
 कर्णमञ्जरिकाभद्रे विभक्ते दशभिः पदैः ।
 द्विभागायामविस्तारां तुर्यां शालां निवेशयेत् ॥ ७३ ॥
 उद (क) क्षणपूर्वाणि मुखान्यासां प्रकल्पयेत् ।
 परिक्रम(स्त्रिस्तु) सर्वासां भागैकः सर्वतो भवेत् ॥ ७४ ॥
 द्वौ भागौ भद्रकर्णाभ्यां संक्षेपो(भ्याभयपार्श्वयोः) ।
 भागिकोभयविस्तारा भद्रेऽन्या कर्णिका भवेत् ॥ ७५ ॥
 पदैः षोडशभिर्यु(क्तः)विचित्रभ्रमविभ्र(मं)मा ।
 भद्रास्या (च) चतुष्की स्यात् पुरतः संवृतान्त(रः)रा ॥ ७६ ॥
 श्रीमण्डपं प्रकुर्वीत प्रभूतस्तम्भमण्डितम् ।
 (दितामेतानेन परिक्षिप्तं छाद्यकाले हसंयुतः) ॥ ७७ ॥
 (एश्वास्याद् विश्वरूपे च कस्यायास्तुदपुरस्कराः) ।
 चतुष्किका(भि)स्तिसृभिर्भवेत् त्रैलोक्यसुन्दरी ॥ ७८ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे भक्ते द्वादशभिः पदैः ।
 त्रिभागायामविस्तारा मध्ये शाला चतुर्मुखी ॥ ७९ ॥
 सर्वतः सार्धभागा(श्च) कर्तव्या पदपद्धतिः ।
 तस्याः प्रागुदक + + + + शालाचतुष्टयम् ॥ ८० ॥
 द्विभागायामविस्तारं विधातव्यं सुशोभनम् ।
 भागिकालिन्दकेनैतत् स्यात् प्राक्से+न वेष्टितम् ॥ ८१ ॥
 कक्ष्यास्थाभिर्द्विभागाभिः कर्णिकाभिरलङ्कृतम् ।
 एवैत् कर्णमञ्जर्याः कर्णे + + विधीयते(?) ॥ ८२ ॥
 जगती स्याच्छिवस्येष्टा तदा गन्धर्व(मा)बा)लिका ।
 इय(वे)मे)वापरे भागे चतुर्थ्या शालयान्वि(तं)ता ॥ ८३ ॥
 विज्ञेया जगती नाम्ना विद्याधरकुमारिका ।
 अपरस्यां चतु(र्थी)र्था) तु हित्वा शालां (विनीयते?) ॥ ८४ ॥

ते द्वे + (कुघोः) कुर्वीत सुभद्रां त्रिदशप्रियाम् ।
 (चतसृषु भद्रेषु प्रत्येकं पञ्च कर्णिगा ॥ ८५ ॥
 शालाः स्युर्यदिभन्द्राष्टाः) तदा स्यात् सिंहपञ्जरा ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्दशविभाजिते ॥ ८६ ॥
 त्रिभागायामविस्तीर्णं मध्ये देवकुलं भवेत् ।
 भागेनैकेन कर्तव्यो भ्रमो दिक्षु तिसृष्वथ ॥ ८७ ॥
 प्रासादायामविस्तीर्णे तस्याग्रे मुखमण्डपः ।
 भद्रस्य पार्श्वद्वितये बाह्यतो भद्रविस्तृत(म्) ॥ ८८ ॥
 शालायुग्मं विधातव्यं त्रिपदायामविस्तृति ।
 भागिक(भद्रमाभ्रम)णोपेतं (यदिकाञ्च पयास्वितः) ॥ ८९ ॥
 द्विभागायामविस्तारे भागिकभ्रमणान्विते ।
 शाले द्वे पुरतः कार्ये साम्मुख्याच्च परस्परम् ॥ ९० ॥
 (पञ्चस्वलं?) भवेदेवं पृष्ठभद्रं यदा शुभम् ।
 याम्योत्तरे चतुःशाले (भद्रद्वयपञ्चकञ्जरा?) ॥ ९१ ॥
 पृष्ठभद्रं यदैतस्या + + + न्मध्यशालया ।
 (कक्षाभद्रे तथा स्यायुते?) गन्धर्वनगरी तदा ॥ ९२ ॥
 पञ्च त्रीण्येव भद्राणि पञ्चशालान्वितानि च ।
 (शिशुत्त?) षट्त्रिंशत्तमा ज्ञेया सा जगत्यमरावती ॥ ९३ ॥
 शुण्डिकाग्रे यदैतस्याः शाला सम्पद्यते कचित् ।
 तदा स्याद् दन्तचूडेति जगती जगतः प्रिया ॥ ९४ ॥
 (इयनि?) शुण्डिकाशाला गण्डशालाद्वयान्विता ।
 त्रिदशेन्द्रसभा ज्ञेया ससुण्डी देवयन्त्रिका ॥ ९५ ॥
 (इति चतुरस्राणां कीर्त्यतेषायताः कासानकामाः) ।
 सप्तभागायते क्षेत्रे भागपञ्चकविस्तृते ॥ ९६ ॥
 द्विभागायतविस्तारे स्तः शाले वामदक्षिणे ।
 चतुष्किकैकभागेन तयोरेवाग्रतो भवेत् ॥ ९७ ॥

भ्रमश्च भागिको मध्ये समन्ताच्च विधीयते ।
 प्रतोल्या भूषिता खण्डशुण्डिकाभिरलङ्कृता ॥ ९८ ॥
 मत्तवारणशोभाढ्या (यमालेखाः?) प्रकीर्तिता ।
 यदा स्यात् पृष्ठतः कन्दो भागत्रितयविस्तृतः ॥ ९९ ॥
 भागत्रितयनिष्क्रामश्चतुर्धा भाजितः पुनः ।
 द्विभागायामविस्तारा शाला भागद्वयं भ्रमः ॥ १०० ॥
 तदा पयोधरा नेत्रा शालाभ्यामग्रपृष्ठयोः ।
 (नेत्राद्याश्चेत्यरशालास्यातां तु काया ॥ १०१ ॥
 पौरस्त्ययोरुभयोः साम्नमूत्कन्दो भागनिर्गतः?) ।
 भागमन्तः प्रविष्टश्च विभाज्यः सोऽपि पूर्ववत् ॥ १०२ ॥
 (शालयोः स्यान्तमोमानभ्रमयोरपि पूर्ववत् ।
 पार्श्वयोर्भ्रामण्यं चागौ द्वे च चेन्मूलशालायाः ॥ १०३ ॥
 शेषं तु पूर्ववत् सर्वदोर्दण्डा प्रासादाः प्रकीर्तिताः?) ।
 दोर्द(ण्डयोः?ण्डाया)स्तु पार्श्वेऽपि शालासुश्लिष्टकर्णयोः ॥ १०४ ॥
 राक्षसानिलयोः शाले कुर्यादाखण्डला भवेत् ।
 आखण्डालायास्तु यदा पश्चाच्छाला विधीयते ॥ १०५ ॥
 (पयो यं सरयोनि इव वच्छिदेति?) जगती भवेत् ।
 (शिवायं वारुणी यद्वा शालात्रयविभूषिता ॥ १०६ ॥
 शुण्डिकारालय मचेन्माहेन्द्री वंपका तदा ।
 कोकैणेषु यमेलयासाद्यदा शालाचतुष्टय ॥ १०७ ॥
 भद्रत्रयोऽपि तिस्रस्ताः पूर्वभद्रममालकम् ।
 ये कर्ण व + कन्दाः स्युः सार्धञ्चंशविनिर्गतः?) ॥ १०८ ॥
 चतुर्भिस्तेषु भक्तेषु शाला भागद्वयं भवेत् ।
 भागं भागं भ्रमण्यः स्युः कर्णशाला इमा बहिः ॥ १०९ ॥
 (त्रिनिष्क्रान्ता सृविस्तीर्णा भद्रकन्दास्थिते बहिः ।
 चतुर्भिच्येषुतैः शाला स्युरार्धो भ्रमस्तथा ॥ ११० ॥

पदार्थसंमितः कुष्ठौ जलमार्गो विधीयते ।

पृष्ठसाधोसिकास्तस्या द्वौ कुलामोदिकाष्टमा ॥ १११ ॥

भागार्थयलमाला + + + द्वितयशालिना ।

पृष्ठभद्रेण जगतीतिलकाले केचिस्तुताः ॥ ११२ ॥

एतस्यां शुण्डिकायां स्याच्छाला चेन्मुखभूषणम् ।

असौ + पल्लवा ना(वःम) जगती जायते तदा ॥ ११३ ॥

तिलका गण्डकण्डेषु(?) शा(लाःले) द्वे भ(व)तो यदा ।

(तेदा सिद्धार्थसंमुखाः?) तदा विद्याधरी भवेत् ॥ ११४ ॥

त्रिविस्तृतं द्विनिष्क्रान्तं पृष्ठशालातलं यदि ।

विद्याधर्याः पृष्ठभद्रे तदा यक्षं विनिर्दिशेत् ॥ ११५ ॥

षड्भागविस्तृते क्षेत्रे दशभागकृतायते ।

द्विभागायामविस्तारं कुर्याच्छालात्रयं बुधः ॥ ११६ ॥

तदग्रे तत्समं कुर्यान्मण्ड(पा अधिवाधिकात्?) ।

यथाकामं प्रकुर्वीत कर्मशोभाविभूतये ॥ ११७ ॥

+ + भागं भ्रमं कुर्यात् तासां पार्श्वचतुष्टये ।

(विशेषकरणायंच शालानां मध्यमैरपि?) ॥ ११८ ॥

मत्तवारणसंयुक्ताः सुण्डिकागण्डमण्डिताः ।

इयं त्रिकूटा जगती ख्याता (तृपुषपूर्णा?) ॥ ११९ ॥

त्रिकूटा पूर्ववंशस्था त्रिभागायामविस्तृता ।

(विदध्यात् सवमां शालां प्राग्वत् स्याच्चित्रकूटिका?) ॥ १२० ॥

यथा पृष्ठे तथाग्रेऽपि यदि शाला विधीयते ।

तदा सरनिकूटीति विज्ञेया जगती बुधैः ॥ १२१ ॥

(युक्ता प्राणास्य लाभ्यामग्रशालाविवर्जिता) ।

उपमेवाजोत्तमा(?) सा जगती विश्रुता भुवि ॥ १२२ ॥

नैर्ऋतानलवाय्वीशकर्णप्रासादकैर्युता ।

(त्रिकूटैर्भवेन्नन्दै विभक्तषडला यथा ॥ १२३ ॥

चित्रकूटा क्रमानया द्विभजनं पूर्वविकूटवद् विचक्षणः ।
त्रिकूटायामतो रूपे सिद्धिद्वयायामविस्तृतम्? ॥ १२४ ॥

कर्णे कर्णे कृतं कन्दं चतुर्धा प्रविभाजयेत् ।
भागद्वयेन शाला स्याद् भागेन भ्रमणं तथा ॥ १२५ ॥

(मूलतार्धविस्तारं भवतच्चेह मानतः ।
याम्योत्तरे चतुर्भागविस्तार भागं निर्गताम् ॥ १२६ ॥

+++++ भद्रं भागिकद्वयान्वितम् ?) ।
शेषं तु भ्रमणं तत्र मध्यपार्श्वेषु कारयेत् ॥ १२७ ॥

एवमग्रेऽपि शाले द्वे द्वारस्योभयपार्श्वयोः ।
कर्तव्ये भागनिष्क्रान्ते भागिकायामविस्तृती ॥ १२८ ॥

पृष्ठभद्रं च कर्तव्यं सार्धांशद्वयविस्तृतम् ।
द्विभागनिर्गमं युक्तं शालया सार्धभागया ॥ १२९ ॥

याम्योत्तरेण चास्यैव कार्यं शालाद्वयं ततः ।
(प्रमाणे पसन्नकार्ये भागे प्रवेशनम् ?) ॥ १३० ॥

शेषो भ्रमः स्याच्छालानां सप्तानां मध्यगस्ततः ।
स्याच्छैवी (श्रयणी?) त्वेषा सर्वाभरणप्रिया ॥ १३१ ॥

अस्या एव मुखे शाला यदा संजायते तदा ।
त्रिविक्रमेति विख्याता जगती जायते शुभा ॥ १३२ ॥

यदा सार्धविनिष्क्रान्ते सार्धांशद्वयविस्तृते ।
पार्श्वभद्रद्वये शाले भवेतां भागविस्तृते ॥ १३३ ॥

+++++ सार्धभागि(कं?क)भ्रमणान्विते ।
(लिप्यते चापि मा शाला?) क्रमायाता तदा भवेत् ॥ १३४ ॥

शालायाः शुण्डिकाग्रे तु त्रिपथा सैव जायते ।
(चतुर्यातो प्रोक्ता?) कध्यन्ते वृत्तजातयः ॥ १३५ ॥

चतुरश्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ।
क्षेत्रे देवगृहं वृत्तं सार्धांशायामविस्तृति ॥ १३६ ॥

भ्रमयेज्जगतीवृत्तं (समगां?) भागिकं ततः ।
 पूर्वोक्तविधिना कार्यं पार्श्वतो मत्तवारणम् ॥ १३७ ॥
 गोपुरद्वारशोभाढ्या जगती वलया भवेत् ।
 वलयापृष्ठतः कन्दं मूलशालासमायतम् ॥ १३८ ॥
 पूर्वोक्तविधिना भक्तां शालां कुर्यात् तदर्धतः ।
 कलशेयं समाख्याता जगती कलशाकृतिः ॥ १३९ ॥
 कर्णस्थं द्विपदायामं कर्णशालाचतुष्टयम् ।
 चतुरश्रं भवेद् यत्र (शानाम्ये + ?)भिधीयते ॥ १४० ॥
 सप्तभागायते क्षेत्रे चतुरश्रे समन्ततः ।
 भागांस्त्रीन् वर्जयेदग्रे चतुरः(पृव्यन्तरश्चतान्?) ॥ १४१ ॥
 सार्धास्त्रीन् पार्श्वयोर्भागांस्त्यक्त्वा (गर्भततो कयेत् ?) ।
 द्विभागायामविस्तारं वृत्तं स्याद् देवमन्दिरम् ॥ १४२ ॥
 भागमेकं भ्रमस्तस्य विधातव्यः समन्ततः ।
 भ्रमण्याः पृष्ठतः कन्दो भागायामविभूषितः ॥ १४३ ॥
 तस्यार्धेन भवेच्छाला तदर्धेन परिक्रमः ।
 गर्भाद् भागद्वयस्यान्त ईशानानलयोर्दिशोः ॥ १४४ ॥
 द्विभागौ भवतः कन्दावर्धभागप्रवेशितौ ।
 पृष्ठशालोर्ध्वगे तिर्यक्सूत्रे(ण?) दत्ते भ्रमान्तिके ॥ १४५ ॥
 कर्णिकाद्वितयं कार्यं राक्षसानिलयोर्दिशोः ।
 (व्यय?)शालां च कुर्वीत पृष्ठशालासमां ततः ॥ १४६ ॥
 प्राक् (च?) पश्चात् कन्दगर्भ(स्था?स्थ)सूत्रद्वितययोगतः ।
 कुर्वीत कर्णि(का?कां) ती(क्ष्णा?क्ष्णां)पार्श्वयोरुभयोरपि ॥ १४७ ॥
 (शेषा भ?) पूर्ववत् सर्वा शुण्डिकादिक्रिया भवेत् ।
 (यदागभी?) करवीरेयमीशादित्रिदशमिया ॥ १४८ ॥
 पतस्या एव पृष्ठस्था यदा सन्त्य(ष?ष्ट) कर्णि(को?काः) ।
 वामशाले विधीयते नालिनीति तदा भवेत् ॥ १४९ ॥

१. 'सा कर्णेत्य' इति स्यात् । २. 'पृष्ठतश्च तान्' इति स्यात् । ३. 'गर्भे ततोऽङ्गयेत्' इति स्यात् ।

(दत्तंशस्य सालिख्यात् तथौ दशभिः पदैः ?) ।
 सूत्राणि पातयेत् तस्य ततो दिक्षु विदिक्षु च ॥ १५० ॥
 प्रासादभ्रमणस्यान्ते द्विपदायाम(व?वि)स्वृती(नू) ।
 कुर्वीताष्टसु सम्पातेष्वष्टौ कन्दान् समन्ततः ॥ १५१ ॥
 (विधाय तां चतुर्भक्तां कुर्याद् ज्ञामांस्तथा?) ।
 अन्तरेण च कन्दानां कर्तव्यं कर्णिकाष्टकम् ॥ १५२ ॥
 देशात् सार्धं यदा सूत्रे(?) यथा सम्पत्स्यते मिथः ।
 पार्श्वद्वयात् कर्णिकानां संस्थानं स्यात् तथाविधम् ॥ १५३ ॥
 भक्तैवैवं सर्वभद्राणि त्रिपदोऽन्तः सुरालयः ।
 पार्श्वभ्रमो व्यर्धपादो(?) दशधा भाजिते भवेत् ॥ १५४ ॥
 कन्दाश्च द्विपदाः कार्या बहिर्दिक्षु विदिक्षु च ।
 अन्योन्याभिमुखस्तेषु शालाः कार्या यथोदिताः ॥ १५५ ॥
 (शक्तियस्ता समीक्षते?) विष्णोरप्रतिमौजसः ।
 कार्येयं तस्य (तान्येस्युः?) (पुण्डरीकविनामतः?) ॥ १५६ ॥
 एतस्याः कर्णिकास्थाने यदा वृत्तं प्रकल्प्यते ।
 तदानींमातृपत्रं स्यात् कर्तव्या ब्रह्मणश्च सा ॥ १५७ ॥
 कृत्वा वृत्तायतं क्षेत्रं विभजेद् दशभिः पदैः ।
 तस्मिन्मध्ये विधातव्यं देवागारं पदैस्त्रिभिः ॥ १५८ ॥
 तस्य पार्श्वेषु कर्तव्यो भ्रमः सार्धं(द्वि)भागिकः ।
 द्विभासं बाह्यवृत्तं स्यात् तत्र कुर्यादिमां क्रियाम् ॥ १५९ ॥
 भागैर्द्वादशभिस्तच्च तुल्यमानैर्विभाजयेत् ।
 एकैकं च पुनर्भासं चतुर्धा तेषु भाजयेत् ॥ १६० ॥
 द्विभागायामविस्तारा शाला मध्ये विधीयते ।
 भागिकश्चतुरश्रश्च दिक्षा(?)ला(नृ?त्रि)तये भ्रमः ॥ १६१ ॥
 वामदक्षिणतः शाले (तां?) ये भवतः शुभे ।
 ते वृत्ते संविधातव्ये संमुखे च परस्परम् ॥ १६२ ॥

१. 'विधाय ताश्चतुर्भक्तान् कुर्याद् दिक्षु भ्रमास्तथा' इति स्यात् । २. 'केति न/मतः' इति स्यात् । ३. 'तासां' इति स्यात् ।

(शाला तु खुमार्गस्याच्छालार्धभागार्धविस्तृतः?) ।
 कल्प्यस्तेनैव मानेन (सञ्चावा?) भ्रमणं भवेत् ॥ १६३ ॥
 जगत्पेषा समाख्याता चक्रवालेति नामतः ।
 दिवाकराय कर्तव्या सग्रहायाथवेन्दवे ॥ १६४ ॥
 (समक्षवायभद्रायामात्रिषुक्तायं वा पुनः?) ।
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ॥ १६५ ॥
 गर्भात् कोणगसूत्रेण सर्वतो वृत्तमालिखेत् ।
 बहिस्त्रिपदविस्तारं कन्दं कुर्याच्चतुष्पदम् ॥ १६६ ॥
 शा(लायां'लां) च द्विपदायामां विस्तारात् सार्धभागिकाम् ।
 शेषं तु भद्रशालायाः समन्ताद् भ्रमणं भवेत् ॥ १६७ ॥
 भद्रस्योभयतो वृत्ते द्विभागायतविस्तृते ।
 शाले च वृत्तयोरन्तर्भागिकायामविस्तृती ॥ १६८ ॥
 याम्यसौम्यापरास्वेवं दिक्षु भद्रत्रयं भवेत् ।
 सार्धमायामविस्तारा(स्तः?)दर्धभ्रमणान्विताः ॥ १६९ ॥
 शाला विदिक्षु कर्तव्याः शोभनाश्चतसृष्वपि ।
 भद्रमध्ये स्थितां शालां हित्वा प्राच्या(तु सा) भवेत् ॥ १७० ॥
 सार्धमायामविस्तारा(स्तः?)दर्धभ्रमणान्विता ।
 सनक्षत्राय सोमाय कर्तव्या पुष्टिहेतवे ॥ १७१ ॥
 चतुरश्रीकृते क्षेत्रे दशभागविभाजिते ।
 पञ्चभागायतां मध्ये शालां वृत्तां प्रकल्पयेत् ॥ १७२ ॥
 सार्धभागद्वय(स्तः?)मिता देवागारस्य बाह्यतः ।
 (अमण संविद्यातव्य?) कर्णशालाश्च कर्णगाः ॥ १७३ ॥
 कर्णमानं बहिर्वृत्तं भ्रमयित्वा(सारन्द?समन्त)तः ।
 भद्रोपभद्रकर्णेषु वृत्ताः शालाः प्रकल्पयेत् ॥ १७४ ॥
 पदद्वयसमायामा(ः) पदत्रितयविस्तृता(ः) ।
 भागि(का?क)भ्रमणोपेता(ः) शालाः कुर्वीत भद्रजाः ॥ १७५ ॥

द्वे भद्रात् पार्श्वयोः शाले द्वे च प्रतिरथाश्रये ।
 भागिकायामविस्ता(रा?रे) कुर्यादर्धपरिभ्रमे ॥ १७६ ॥
 (वौ?बा)हल्यायामतः सार्धभागा(:?) शालार्धकर्णगा ।
 तासां तदर्धमानेन विधातव्यः परिक्रमः ॥ १७७ ॥
 प्रविष्टौ तु पदार्धेन भद्रान् प्रतिरथावुभौ ।
 इत्येषा जगती प्रोक्ता मानतश्चन्द्रमण्डला ॥ १७८ ॥
 अथ वृत्ता ++ ब्रूमो जगतीः षड् यथाक्रमम् ।
 पञ्चभागायताः क्षेत्रा विस्तरेण चतुष्पदाः(?) ॥ १७९ ॥
 विदध्यादायतं वृत्तं (चमस्यां भवभागिकः?) ।
 मध्ये स्यात्(त्रिपदास्तामा सद्विपदविस्तृताः?) ॥ १८० ॥
 मत्तवारणसंयुक्ता (य?प्र)तोल्यालङ्कृता शुभा ।
 सोपानशुण्डिकाप्रान्तं ++ गण्डितमण्डिता(?) ॥ १८१ ॥
 उक्तेयं मातुलिङ्गीति जगत्यमरवल्लभा ।
 अस्या एव यदा पृष्ठे द्विभागायामविस्तृतिः ॥ १८२ ॥
 शाला पूर्वक्रमेण स्यात् तदा ज्ञेया घटीति सा ।
 तद्रूपे (तद्यतालालं?) द्वे शाले वामदक्षिणे ॥ १८३ ॥
 (यदि पश्चिमशाला च तत्रेस्यायमती जगती तदा?) ।
 घटीकर्णेषु सर्वेषु द्विभागायामविस्तृ(ती?ताः) ॥ १८४ ॥
 यदि स्युर्भ्रमसंयुक्ता(:) शाला(:) प्राग्वद् विभाजिता(:) ।
 (कुरुक्ष्येर्धायंतरिक्षे द्वे च पृष्ठे वार्तन्तदूर्य?) ॥ १८५ ॥
 कालिङ्गीयं भवेदेवं (पार्श्वयो अंयुर्लमदात्रेषु?) ।
 (पुस्यांसु?एतस्यां तु) यदा शाला शुण्डिकाननसं(त्रि?स्थि)ता ॥
 वृत्तायतविनिर्माणा जगती स्या(ष्ट?त्) ++++ ।
 एता वृत्तायताः ॥
 ब्रूमोऽथाष्टाश्रिसंस्था(न?ना) जगतीः शुभलक्षणाः ॥ १८७ ॥
 चतुरश्रीकृतं क्षेत्रं सपादैर्दशभिर्भजेत् ।
 परित्यजेत् ततः सूत्रं कर्णे कर्णे पदत्रयम् ॥ १८८ ॥

१. 'वृत्तायताः' इति स्यात् । २. 'त्रिपदायामा सार्धद्विपदविस्तृता' इति स्यात् ।

सपादांश्चतुरो भागान् मध्यभागेऽवशेषयेत् ।

संसिध्य(तेऽति) च साष्टाश्रि तस्यार्धे स्यात् सुरालयः ॥ १८९ ॥

अष्टाश्रिमध्यभागस्थः + शेषं भ्रमणं भवेत् ।

प्रासादश्च (च)तुर्द्वारश्च(च?)तुर्भिर्मण्डपैर्यु(ताः?तः) ॥ १९० ॥

(प्रासादसाकसूत्र?) मुखलिङ्गं निवेशयेत् ।

मूलकन्दार्धतः (कन्दा क्रमादिक्षु च?) ॥ १९१ ॥

तुल्यप्रमाणकानष्टौ चतुर्भागविभाजि(ताः?तान्) ।

भ्रमशालाश्च पूर्वोक्तक्रमेण परिकल्पयेत् ॥ १९२ ॥

सोपानशुण्डिकागण्ड(स्ताः?गो)पुराद्यैरलङ्कृताः ।

(करव्यासामेरुपेता ववा सर्वायमुदाहृता?) ॥ १९३ ॥

कृत्वा पूर्ववदष्टाश्रि क्षेत्रं भद्रं (विःद्वि)धा भजेत् ।

कुर्याद् भागार्धकं भद्रे पक्षयोश्च विनिर्गतम् ॥ १९४ ॥

तद्विस्तारं भजेत् षड्भिर्निर्गमस्तैस्त्रिभिः पदैः ।

परिक्रमो भवेत् ++ पार्श्वयोः पृष्ठ(तोऽ)ग्रतः ॥ १९५ ॥

शेषं (शाला)युगं कार्यं भागद्वितयमायतम् ।

सार्धभागिकविस्तारं (संघचेस्यरस्यं च?) ॥ १९६ ॥

अनेनैव प्रकारेण भद्रे भद्रे भवेद् गतिः ।

कर्णभद्रं विधातव्यं त्रिपदायामविस्तृति ॥ १९७ ॥

चतुर्धा भाजिते तस्मिन् भागेन भ्रमणं भवेत् ।

शेषं तु शाला विज्ञेया द्विपदायामविस्तृता ॥ १९८ ॥

विदिग(न्ते)षु सर्वेषु न्यासोऽयमतिसुन्दरः ।

मूलशाला तु कन्दार्धे (भ्रमश्चाधीभ्रमं ततः?) ॥ १९९ ॥

मातृकेयं समाख्यात्वा (जगत्पसरचन्दितकिन्नरोशप्रदिति?) ।

भद्रं ++ पदेभ्यः स्याद् (भद्र?भाग)त्रितयनिर्गतम् ॥ २०० ॥

१. 'कन्दान् क्रमाद् दिक्षु विदिक्षु च' इति स्यात् । २. 'भ्रमश्चार्धभ्रमस्ततः'

चतुर्भागिकविस्तारं त्रिषदायामकन्दकम् ।

तदा स्वाच्छेस्वरा माम भद्रत्रितयभूषिता ॥ २०१ ॥

नित्यप्रमुदितानेकदेवबु(त्तदः)कृतास्पदा ।

प्राग(ष्ट्यःष्टा)श्रीकृते क्षेत्रे चतुर्भागविभाजिते ॥ २०२ ॥

द्विभागायामविस्तारे प्रासादे दशमे भ्रमे ।

अश्रिभिः समविस्तारा(दासष्टौ++?) प्रकल्पयेत् ॥ २०३ ॥

सदा भागप्रविस्तारं(रं?रान्) तांश्च कुर्यात् पृथक् पृथक् ।

निर्गमेण चतुर्भा(गो?गान्) भागिकभ्रमणान्वितान् ॥ २०४ ॥

द्विभागायामविस्तारं मध्ये शालाद्वयं भवेत् ।

पञ्चगर्भेयमित्युक्ता प्रजापतिमनःप्रिया ॥ २०५ ॥

भवे(ता?दा)र्यादिदेवीनां सदा चि(त्र?त्त)प्रसादिनी ।

विधाय(क्षेत्रमष्टासृतवदर्धायामविस्तृतौ?) ॥ २०६ ॥

मध्ये देवगृहं कार्यं तदर्धेन भ्रमो बहिः ।

भद्रं भवेद् द्वादशभिस्तैश्चतुर्भिर्विनिर्गमः ॥ २०७ ॥

तस्य(स्यात्य?) भद्राणां निर्गमोऽपि चतुष्पदः ।

विस्तारः षट्पदस्तेषां चतुर्भिस्तं विभाजयेत् ॥ २०८ ॥

भागार्धेन (च) शाला स्याद् भागत्रितय(स?)मा(यात्?यता) ।

भ्रमश्च स्या + (त्तु)कर्तव्यो भागं तत्पार्श्वयोः (रुद्राया?) ॥ २०९ ॥

द्विभागायामविस्तारं(रा?रे) शाले स्यातां पदभ्रमे ।

इयमंशुमती प्रोक्ता जगती शुभलक्षणा ॥ २१० ॥

विधाय क्षेत्रमष्टाश्रि तदर्धायामविस्तृति ।

मध्ये देवगृहं कार्यं तदर्धेन भ्रमो बहिः ॥ २११ ॥

प्रासादसमविस्तारं भद्रं कृत्वा ततो भजेत् ।

चतुर्दशभिरस्य (स्यान्निर्गमो?) दशभिश्च तैः ॥ २१२ ॥

१. 'नष्टौ कन्दान्' इति स्यात् । २. 'क्षेत्रमष्टाश्रि तदर्धायामविस्तृति' इति स्यात् । ३. 'स्यान्निर्गमो' इति स्यात् ।

मौलिकभ्रमणस्यान्ते त्रिपदायतविस्तृता ।
 शालातिशोभना कार्या सार्धभागभ्रमणान्विता ॥ २१३ ॥
 द्विपदायामविस्तारे भागिकभ्रमणान्विते ।
 कर्तव्ये पार्श्वयोस्तस्याः शाले द्वे चारुदर्शने ॥ २१४ ॥
 प्रतिभद्रं विधातव्यं भागपञ्चकविस्तृतम् ।
 भागत्रयं प्रविष्टं च तत्र शाला त्रिभागिकी ॥ २१५ ॥
 भागद्वितयविस्तारा भागिकभ्रमणान्विता ।
 पार्श्वयोः प्रतिभद्रस्य कर्णिके भागत्रिर्गमे ॥ २१६ ॥
 सार्धभागायते स्यातां कर्णाः शालाद्युगान्विताः ।
 पूर्ववच्छुण्डिकाद्यं च कमलेयमुदाहृता ॥ २१७ ॥
 चतुर्दशविभक्तासु सप्तस्वस्तिषु(?) कल्पयेत् ।
 निर्गमायामतुल्यासु शालाः पञ्च पृथक् पृथक् ॥ २१८ ॥
 अग्रभद्रे तु कर्तव्यं शालात्रितयमुत्तमम् ।
 इति विज्ञेयः(?) समारूढाता शाला वज्रधरप्रिया ॥ २१९ ॥
 इत्थं जगत्यश्चतुरश्रसंस्थाः
 (स्पदायतां?) बर्तुलसन्निवेशाः ।
 (वृत्तायता थस्तियुताश्चयः सम्यग्?)
 जङ्घाः सदा शिल्पिभिरप्रमत्तैः ॥ २२० ॥

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसुसन्धारनाय शालाशाले

जगतीलक्षणाध्यायो नामैकोनसप्ततितमः ॥

—10:—

अथ लिङ्गपीठप्रतिमालक्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।

—10:—

अथ प्रमाणं लिङ्गानां लक्षणं चाभिधीयते ।
 (लोहं हस्तत्रिभागेन कनीयसम्?) ॥ १ ॥

(व्यंशवृद्धानावेवं स्युराहस्तात्रतवाविधेः) ।
 (ह्रस्वमध्योत्तमाख्यानि त्रीणि त्रीण्यकल्पकादिभिः ॥ २ ॥
 लिङ्गनामभिः प्रासादस्यानुसारतः?) ।
 अतश्च द्विगुणानि(स्थुवारुणाजानि प्रमाणतः?) ॥ ३ ॥
 (त्रिगुणान्यस्माज्जातानि?) मृत्तिकाप्रभवानि च ।
 स्वस्य स्वस्य कनिष्ठस्य पदेन परिवर्तनात् ॥ ४ ॥
 कनिष्ठायाने(?)हीनं च कर्तव्यं लक्षणं बुधैः ।
 (सप्तमे यदि वा तिर्यग्रज्जलोधसनिभाम् ॥ ५ ॥
 स्तम्भद्रातौ दैतकैवलेषा विष्णुवारिता?) ।
 पक्षरेखा विधातव्या लक्षणोद्धरणार्धनी(?) ॥ ६ ॥
 पक्षक्षेत्रे कृते षोढा त्यक्तार्धांशकरैर्वृता(?) ।
 पुत्रार्थिनां पक्षलेखा हिता (राद्यपिर्थिनानामपि?) ॥ ७ ॥
 अष्टभिर्नवभिर्वास्मिन् भक्ते त्यक्त्वांशकावधः ।
 स्यात् पक्षलेखा षड्भिश्च सप्तभिश्चेष्टकामदा ॥ ८ ॥
 यद्वा षोडशभिर्भक्ते विहायाधोऽंशकद्वयम् ।
 (पशुरेखासरैर्नन्दैः स्तर्यैः शक्रैश्च शस्यते?) ॥ ९ ॥
 लिङ्गेऽङ्गुलानि यावन्ति यवत्र्यंशैस्तदुन्मितैः ।
 लक्षणोद्धारणा कार्यमन्तरं लक्ष्यरेखयोः(?) ॥ १० ॥
 रेखान्तरेषु (मांशस्य नर्थांशे?) पूर्वकसम्मितम् ।
 खातं कुर्वीत रेखायां विस्तारं च विचक्षणः ॥ ११ ॥
 कुर्यान्न लक्षणे द्वाः(णोद्धा)रं लिङ्गे (लोहेच्चरत्रजे?) ।
 बाणलिङ्गे चले चापि (तथातोजाहिलक्षणम् ?) ॥ १२ ॥
 पूजांशमेकादशधा भक्त्वोर्ध्वं सर्वतः स(मा?म)म् ।
 तिर्यक् तथैकनवतिं भागानां शिरसो भजेत् ॥ १३ ॥

१. 'व्यंशवृद्धा नवैवं स्युराहस्तात्रतयाविधेः' इति स्यात् । २. 'स्युर्दारुजानि प्रमाणतः' इति स्यात् । ३. 'त्रिगुणान्यस्मज्जातानि' इति स्यात् । ४. 'विद्यार्थिना-
 नामपि' इति स्यात् । ५. 'लक्षणोद्धारणं कार्यमन्तरे पक्षरेखयोः' इति स्यात् ।

भवेत् सहस्रं लिङ्गानां सैकमित्यसमैः पदैः ।

सहस्रलिङ्गमित्युक्तं (पञ्चाङ्गव्यङ्ग्यमेवता?) ॥ १४ ॥

(अर्था विभागं ववधा लिङ्गे सर्वमे भावयेत्?) ।

ऊर्ध्वं भागत्रयं त्यक्त्वा भागभागेन कल्पयेत् ॥ १५ ॥

भागेन (शकास्य?) ग्रीवाः कुर्यात् ततः परम् ।

भागद्वयेन (स्कन्धांशपणै युग्मपटानि च?) ॥ १६ ॥

(पुष्पसंस्थे च?) माशासु विहिते चतसृष्वपि ।

चतुर्मुखं भवेद्विङ्गमर्चितं सर्वकामदम् ॥ १७ ॥

त्रिमु(खं?खे) तु ललाटा(दी)(ना?न्य)ङ्गान्यंशेन साङ्घ्रिणा ।

पृथक् पृथक् विधेयानि शेषांशात् स्कन्धकल्पना ॥ १८ ॥

एकचक्रे(?) तु सार्धेन ललाटा(दान?दीनि) कल्पयेत् ।

नवभक्ते (त्यात्रे?त्यजेद्) द्वौ द्वौ विभागौ पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ १९ ॥

विधिरेष चतुर्वक्त्रे (विभक्ते?) पार्श्वयोर्द्वयोः ।

सार्धं सार्धं त्यजेद् (भूषा?)मेकवक्त्रे(र्धशस्य च ?) ॥ २० ॥

चन्द्रार्धालङ्कृतं कार्यं (कू?ज)टाकूटधरं शिरः ।

शिरसो (वर्तते?) कार्या पूर्वप्रोक्तेन वर्त्मना ॥ २१ ॥

(एकत्र चातुरो स्यातां विसृते?) मुखनिर्गमः ।

स्याद्वा विभागै(राकेन्द्रि काराख्यैर्यथाक्रमम्?) ॥ २२ ॥

मुखलिङ्गं न कर्तव्यं लिङ्गात् सर्वसमाहते ।

सर्वेषां मुखलिङ्गानां द्विदलं पीठमिष्यते ॥ २३ ॥

(तैज दैर्घ्य?) जायन्ते त्रयस्त्रिंशत् सहोदितैः ।

(लो?लौ)हानि तद्वद् दारुत्थान्य(स्म?श्म)मृ(त्प?त्प्र)भवानि च ॥

तेषां (यवनवाल्यायान्यान्तराणि च ततोऽपि षट्?) ।

चतुराद्याश्चतुर्वृद्धा हस्तैः (सहस्तपद्धतः?) ॥ २५ ॥

१. 'एकवक्त्रे' इति स्यात् । २. 'भाग' इति पाठः स्यात् । ६. 'वर्तना' इति स्यात् । ४. 'एकत्रिचतुरास्याना विसृतेः' इति स्यात् ।

ये प्रासादा निरन्धारा नवलिङ्गानि तेष्विह ।
 पञ्च+द्वादशाद्येषु साधारेष्वा शतार्थतः ॥ २६ ॥
 एकाद्येकोत्तरैहस्तैः शैलजानि प्रचक्षते ।
 प्रासादगर्भमानाद् वा प(ञ्चदःश्वां)शैस्त्रिभिरुत्तमम् ॥ २७ ॥
 नवांशैः पञ्चभिर्मध्यं कनीयोऽर्धेन तद् भवेत् ।
 प्रभेदैरन्त(रैरै)स्तेषां यथायोगं त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २८ ॥
 षडन्यानि भवन्त्येवं नवलिङ्गानि पूर्ववत् ।
 तेभ्योऽप्यवान्तरैर्भेदैः प्राग्वत् सत्रिविधैर्युता(?) ॥ २९ ॥
 दिशानया दारुजानि '++ यल्लोहजानि च ।
 (दौप्ते?दैर्घ्ये) षोडशधा भक्ते चतुर्भिः सुरपूजितम् ॥ ३० ॥
 लिङ्गं विष्कम्भतो (नाद्यं भूतैः स अंशतैः?) शुभैः ।
 भवेत् सर्वसमं षड्भिराद्याख्यं चतुरश्रकम् ॥ ३१ ॥
 कोणे क(र्मा?र्णा)र्धसूत्रेण लाञ्छिते शेषलोप(मा?ना)त् ।
 अष्टाश्रि स्यात् सप्तभक्ते (हानातुणेशयोरन्ध?) ॥ ३२ ॥
 गर्भसीमार्धसूत्रेण वर्तनाद् वृत्तनिर्मि(त?ता) ।
 अधोमध्योर्ध्वभागाः स्युश्चतुरश्रादिकाः क्रमात् ॥ ३३ ॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशानां दैर्घ्याल्लिङ्गे समोत्तमाः ।
 (नमस्तेष्वपि लिङ्गानां शुभुभागतः?) ॥ ३४ ॥
 (पूनाधेवै?) विधातव्यौ भागौ ब्रह्मशिवाश्रयौ ।
 लिङ्गस्य दैर्घ्यजं पीठे विस्तारोऽसौ विधीयते(?) ॥ ३५ ॥
 लिङ्गविस्तारतश्चान्यत् पार्श्वपीठे विशिष्यते ।
 तत्समो ब्रह्मणो भा(ग?गा)त् संप्रदायापहृत्य वा ॥ ३६ ॥
 रुद्रभागो विधातव्यो ब्रह्मभा(गे?गो)ऽपि तद्वशात् ।
 एवं कृते परिहृत(स्वा?स्त्वा)यदोषो भवेदिह ॥ ३७ ॥
 कर्तुः (कैरेष्टेतुश्च?) स्यात् तस्मिन् परिहृते शुभम् ।
 ऊर्ध्वं त्र्यंशस्य दानेन वर्तनाद् बालचन्द्रमाः ॥ ३८ ॥

(कुक्कुटाण्डचतुर्यस्य त्रपुसम्भवे तु?) ।
 अष्टमां(स्या स?शस्य) तुच्छत्रं दानादर्थस्य वर्तनात् ॥ ३९ ॥
 कृतेऽष्टांशे चतुर्धास्मिन् भागवृद्ध्या तदुच्यते ।
 पुण्डरीकं विशालाख्यं श्रीवत्सं (शक्रसर्वनम्) ॥ ४० ॥
 लिङ्गेषु (लक्षणैर्द्वार?) कर्तव्यः स च कथ्यते ।
 रुद्रभागं त्रिधा भ(क्त्या?क्ता) द्वाभ्यां लक्षणमुद्धरेत् ॥ ४१ ॥
 (शिरोर्धायतो लिङ्गे लक्षणापि?) तदिष्यते ।
 यद्वायताननं षष्ठे कर्त(व्य?व्यं) नवमांशके ॥ ४२ ॥
 + वायं ++ वाकारपक्षरे(खा)विवर्जितम् ।
 पार्श्वरेखात्रिभागेन विस्तृतं चतुरश्रकम् ॥ ४३ ॥
 प्राग्वदष्टा(स्ति?श्रि) वृत्तं च षडश्रिच्छत्रमस्तकम् ।
 शत्रुमर्दनसंज्ञेन च्छत्रेण समलङ्कृतम् ॥ ४४ ॥
 लिङ्गमिन्द्रार्चितं शस्तमैन्द्रदिग्विजयार्थिना(म्?) ।
 प्रतिष्ठाप्यमिदं शत्रोर्यद्वा स्तम्भनमिच्छता ॥ ४५ ॥
 लोकपालैश्चेति कुर्यात् + त्र्यंशार्धार्धलक्षणम् ।
 ऐन्द्रे वज्राभमध्येऽ(स्या?स्य) (प)क्षरेखा विधीयते ॥ ४६ ॥
 स्वदैर्घ्यदलरुद्रांशैः पञ्चभिश्चित्रभावना(म्?) ।
 विस्तृतं चतुरश्रं स्यान्मध्ये वृत्ते च पूर्ववत् ॥ ४७ ॥
 अश्रिभिः सप्तभिर्युक्तं वृत्तं स्वा(स्त्रा?स्त्र)विवर्जितम् ।
 (प्राग्विस्तारार्धविस्तारि लक्ष्मस्योतमस्तकम्?) ॥ ४८ ॥
 (पूद्ध्ये?यद्वै)कादशभिर्भक्ते पक्षयोश्च(छिभि?)स्त्रिभिः ।
 लुप्तैरंशैस्तदेवां(शैर्नो?शेनो)च्छ्रितं छत्रमिष्यते ॥ ४९ ॥
 इदमग्न्यर्चितं लिङ्गं कृत्वाग्रेयोजयेद् दिशम् ।
 चिकीर्षुणारिसन्तापं प्रतिष्ठाप्यमिदं सदा ॥ ५० ॥

स्व(थै?दै)र्घ्यार्धनवांशानां पञ्चकेन प्र(वि)स्तृतम् ।
 कुर्यात् कुण्डं च(ष्टाष्टं च पार्श्वयुगं?) त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ५१ ॥
 नवधा सर्वतः कृत्वा त्रींस्त्रीनुत्सृज्य कोणगान् ।
 कुर्वाताप्य(स्त्र?स्त्र)मेवं स्यात् क्रमाद् वृत्तं विनाश्रिभिः ॥ ५२ ॥
 मूर्धानं दशभिर्भक्त्वा भागात्रितय(ला?लो)पने ।
 पक्षयोर्विहिते कुर्यादुच्छ्रितिं दशमांशतः ॥ ५३ ॥
 लक्षणं पूर्ववत् कार्यं (दण्डाग्रकोर?)मग्रतः ।
 (कैथं यान्यादिष्वि?)++ लिङ्गमेतज्जिगीषुभिः ॥ ५४ ॥
 वधार्थं वा विपक्षाणां सर्वैर्वैवस्वता(न्वि?चि)तम् ।
 (आग्रयवत्कविष्णोसाः किन्त्वर्तुस्यदशापिक ॥ ५५ ॥
 स्वराशिर्मस्तकेरुक्ते?) सार्धभागपरिक्षते ।
 पार्श्वयोः 'स्यादभिर्लाभ?) खड्गाग्राभं च शस्यते ॥ ५६ ॥
 (षड्भा?खड्गा)भिधामिदं लिङ्गं प्रतिष्ठाप्य (तु) निऋतिः ।
 (अथापश्यन्दिरासत्व?) तत्त्व(व्यो?यो)गं च शाङ्करम् ॥ ५७ ॥
 (सार्व सप्तांशकलिंविंश्वास्यारुणान्वितो?) ।
 चतुर्भिर्लक्ष्म चैतस्य पाशाग्राभं (कतासिचत?) ॥ ५८ ॥
 लिङ्गमेतत् प्रतिष्ठाप्य (वरुणास्वादिगासतम्?) ।
 यो(नं?गं)तथाप्तवानैशं कि(न्तै?न्त्वे)तच्छान्तिपुष्टिकृत् ॥ ५९ ॥
 (स्वर्धे द्वादशभागांशैः सप्तभिः पुवतेनिले ।
 वेष्णासाकं शोकैः भक्ते द्वित्रिलोपने परश्चतम्?) ॥ ६० ॥
 विधेयं पूर्ववद् वृत्तं शरच्छत्रं विनापरम् ।
 लक्ष्म ध्वजाग्रवच्चास्य (त्वैतसृषतांपरिः) ॥ ६१ ॥
 अथाप (सुंदिर्गसेत्वं?) तथा योगं च शाभवम् ।
 द्विषदुच्चाटविश्लेष(परौक्षकंपान्विधेश्वाभिः?) ॥ ६२ ॥

-
१. 'दण्डाग्राकारम्' इति स्यात् । २. 'स्थाप्यं याम्यदिशि' इति स्यात् ।
 ३. 'अथाप स्वं दिगीशत्वं' इति स्यात् । ४. 'वरुणः स्वादिगीशताम्' इति स्यात् ।
 ५. 'स्वदिगीशत्वं' इति स्यात् ।

प्रतिष्ठाप्यमिदं लिङ्गं (व्यधीयां+?) मनीषिभिः ।
 (कार्यवारुणः सव्याक्षं किन्त्वाच्चोसे गुरुदशाम्?) ॥ ६३ ॥
 (पैत्तांशेमूर्द्धि?) पार्श्वस्थ + पादांशपरिच्युतेः ।
 छत्रं स्यात्(परिच्युतेः?) लक्ष्म चैतस्य गदाग्रसदृशं भवेत् ॥ ६४ ॥
 एतन्ननेश्वरः कृत्वा (स्वैदिर्गासत्वसाद्य?)वान् ।
 योगं च शिवधामाप्त्यै विभू(त्यं?तिं)प्राप्तवानतः ॥ ६५ ॥
 (स्वद्वे?) रुद्रांशकैः षडभिर्विस्तृतं चतुरश्रकम् ।
 (भवभक्ते त्रयं?) त्यागाद् भवत्य(था?ष्टा)श्रि पार्श्वयोः ॥ ६६ ॥
 वृत्तं तु पूर्ववत् कार्यं कुक्कुटाण्डनिभं शिरः ।
 (त्र्यंशवस्यैर्नवभिः?) कुक्कुटाण्डमिदं भवेत् ॥ ६७ ॥
 (मूषनवभिः पार्श्वयोस्त्रिस्त्रिंशतनाः कुक्कुटाण्डकम्?) ।
 अश्रित्रयं च कर्तव्यं पूजाभागसमाश्रयम् ॥ ६८ ॥
 शू (द्रा?ला)ग्रप्रतिमं लक्ष्म लिङ्गे कर्तव्यमैश्वरे ।
 स्यादिदं योगसाम्राज्यज्ञानसम्प्राप्तिकारकम् ॥ ६९ ॥
 ब्राह्मे स्याद् रौद्रवत् सर्वे(र्व?) पद्मकुड्मलवच्छिरः ।
 लक्ष्मा(स्मा?स्मि)न कमलाकारं लि(ङ्गं?ङ्गे)कमलजन्म(नि?नः)॥
 लिङ्गमेतत् प्रतिष्ठाप्य प्राजापत्यं प्रजापतिः ।
 लेभे पदमतः (स्थोसिदं व्येषूपदेस्यतिः?) ॥ ७१ ॥
 वैष्णवे रौ(द्र)वत् सर्वं शिरोऽस्मिन् कु(न्तु?न्त)सन्निभम् ।
 भ(क्ता?क्त्वा) भवजतुल्यं वा कर्तव्यं लक्ष्म वैष्णवे ॥ ७२ ॥
 पुण्यक्षेत्रोज्ज्वलमिदं द्विजादीनां (सिताश्रया?) ।
 संग्राहयेच्छिलाद्रव्यं (गुक्तयोषितयान्विराम्?) ॥ ७३ ॥
 इदं पद्मपङ्क वा (लोहतू?)भयगर्भितम् ।
 अप(कुं?के) वज्रलेपाद्यं कर्तव्यं सिद्धि(सास्तु?)भिः ॥ ७४ ॥

१. 'वायव्याय' इति स्यात् । २. 'सप्तांशे मूर्द्धि' इति स्यात् । ३. 'स्वदिगी-
 णत्वमात्म' इति स्यात् । ४. 'भक्ते भागत्रय' इति स्यात् । ५. 'स्थाप्यमिदं भेषूपदे-
 क्षुभिः' इति स्यात् ।

भूतये लोहजं लिङ्गं सीसकत्रपुवर्जितम् ।
 काञ्चन(पयं?) शत्रुच्छेद(काययि संचितम्?) ॥ ७५ ॥
 (यास्य लिङ्गोक्तलक्ष्मैतत् त्रापुंसांनागाकुन्मचात्र्यादि?) ।
 लोहोद्भवं वा यन्मातृ + + गुह्यकसिद्धिकृत् ॥ ७६ ॥
 भि(क्षु?)णां चलमेतत् स्यान्मु(मूक्षु?)मुक्षु?)णां च वेदमशु ।
 श्रेष्ठं समस्त(रान्ताच्छ्रं?) व(ज्जज्जं?)ज्जं) तदरिच्छिदे ॥ ७७ ॥
 पद्मरागं (महाभृत्यौ?) सौभाग्या(पैर?) मौक्तिकम् ।
 पुष्परागम(हा)नीलौ + यातीरसमुद्भवम् ॥ ७८ ॥
 यशसे कुलसन्तत्यै तेजसे सूर्यकान्त(र?)कम् ।
 ता+च्छं स्फाटिकं सर्वकामदं (शूलारस्रो?) ॥ ७९ ॥
 मणिजं + + + श(क्र?)त्रु)क्षयाय (पुलका?) तथा ।
 सस्यकं सस्यनिष्पच्यै (भोजगं?) दिव्यसिद्धिदम् ॥ ८० ॥
 श्रेष्ठं (सारक्त+?) लिङ्गमारोग्याहितचेतसाम् ।
 वैकु(त?)न्त)कसहावर्तराकायस्कान्तजं हितम् ॥ ८१ ॥
 (क्षुद्र सिस्त्रिषु?) तन्मन्त्र + + + जातिसंस्कृतम् ।
 फलं सम्यग् गुणादूह्यमन्यासु मणिजातिषु ॥ ८२ ॥
 वर्णाभिधानसंस्थानविशेषाभ्य + तद्विदा ।
 (पृथियां सपीठं वा त?) स्यान्नोर्ध्वं नवाङ्गुलात् ॥ ८३ ॥
 सिद्धये (चरदारान्तावश्वनकाद्वा?) प्रशस्यते ।
 सुसंस्थानं सुदीप्तं चेद(वाक्यं पिनयं?) दोषकृत् ॥ ८४ ॥
 (सूक्ष्मोपकोगुणोपेत?) बलीयान् सर्वदोषकृत् ।
 सान्निध्यकारणं दीप्तिः समस्तमणि(य?)ज)न्मनाम् ॥ ८५ ॥
 मानोन्मानप्रमाणादित्येषु ग्राह्यं नवा बुधैः ।
 शैलं हस्तादधः (स्थे?)श्रे)यः प्रासादेषु च शस्यते ॥ ८६ ॥

१. 'प्रभवं' इति, २. 'महाभृत्यै' इति, ३. 'य तु' इति, ४. 'पृथिव्या वा
 स्वपीठे वा तत्' इति च स्यात् ।

ततश्चलमपि प्राहुः(हीणाश्रयसिस्त्रियो ।

इतश्चेदकृत्ये सुयवाकं पिण्डिकाधियाङ्कम् ॥ ८७ ॥

अर्था भागद्वये ता + + भागपिण्डिकावटे?) ।

वृत्ता भागास्त्रयोऽप्यस्य प्रतिष्ठा स्याद् गुहासु च ॥ ८८ ॥

क्षेत्रे परिगृहीतेऽसौ देशे देशाधिपक्षयः ।

[निष्पन्नरूपप्रगुप्तं मण्डलां भाव्यसाकया ॥ ८९ ॥

सिद्धरालाप्तधौतेस्मिनभिः सिद्धरसं गतम् ।

यत्रोक्तः गर्भस्तंकास्यात् तत्रालेखात् समा भवेत् ॥ ९० ॥

करखीइजटाकाङ्का हरितालविष्टेधिभिः ।

सर्वेषाभिः प्रविष्टाभिरनालिं ने लेखनीकृतम् ॥ ९१ ॥

प्रदेशो यानित्यां विभ्रान्ति?] व्यक्तिकृद् भवेत् ।

विषरुद्रजटापथ्या(चब्रू?)कन्दविभीतकैः ॥ ९२ ॥

सुदर्शनाश्वमाराभ्यामविदुग्धेन संयुतः ।

प्रलेपो यदि वा पार्श्वं (चि)ह्नाभिव्यक्तिहेतवे ॥ ९३ ॥

इदानीमिह पीठानां (स्तथाव?) कथ्यते ।

मानतो नामतो(र्धाच?)विशेषेतरसिद्धये ॥ ९४ ॥

(देव्यादि भेदवतीं तु पदेको गर्भमानतः ।

तत्सिद्धिर्मुखतः प्रोक्तं शुनं षंगे मुक्तयो ॥ ९५ ॥

कारादिलिङ्गमानेन यामितंन्यमुखं ततः?) ।

भुक्तये मुक्तये चैतान्युपदिष्टानि मुख्यतः ॥ ९६ ॥

लिङ्गवद् गर्भमानेन सम्यग्वा (ता)नि कल्पयेत् ।

लिङ्गदैर्घ्यप्रमाणानि (मानेषु वेदमसा?) ॥ ९७ ॥

अव्यक्तमुक्तलिङ्गानां समं [विष्पतः ।

कारादिलिङ्गमानेन यामितान्यनुषङ्गतः ॥ ९८ ॥

भुक्तये भुक्तये तेनात्फपदिव्यभानां तदर्दाघ्रविस्तृतिः ।

नृपार्कविक्रजायामास्तदर्धोच्छ्रायविस्तृतिः?] ॥ ९९ ॥

उत्तमादि सहार्धानां(?) सिद्धयै कुर्वीत पीठिकाम् ।

वृत्तं वा चतुरश्रं वा सर्वप्रासादलिङ्गगम् ॥ १०० ॥

वृत्तं व्यक्तेषु न हितं विनाशादि + + + + ।

विधिना पृथिवी + + (पो?पा)वकी पूर्णसंज्ञिता ॥ १०१ ॥

भाभावती त्रपाक्षी(?) च गण्यन्ते ताश्च नामतः ।

इन्द्रादिलोकपालानां कार्या लिङ्गे(व्यचसु?)क्रमात् ॥ १०२ ॥

पेशानलिङ्गे रौद्रान्ति + + या पीठिका भवेत् ।

ते चैतासु त्रयेऽन्यास्तु(?) भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥ १०३ ॥

(पपापपावरावापी वज्र?) चन्द्रकला स्मृता

संवर्ता नन्दिकाव(ते?र्ता) चैताः साधारणा मताः ॥ १०४ ॥

अथ लक्षणमे(तेषां?तासां) सर्वासामभिधीयते ।

ऐन्द्रलिङ्गा वृत्ता पृथ्वी स्तम्भादौ चतुरश्रिका(?) ॥ १०५ ॥

चतुरश्रस्य यः कर्णस्तच्चतुर्थांशमष्टधा ।

कृत्वांशसप्तकेनास्य (तुर्यात्तर्गतसकल्पनात्?) ॥ १०६ ॥

पाश्चात्यभागयोः पार्श्वे बहिः सूत्रस्थिताव(थे?) ।

वृत्तद्वयस्य भ्रमणं विदधीत विचक्षणः ॥ १०७ ॥

(चतुरश्रे पुरोगर्भसूत्राष्टस्यासवर्धनात् ।

कृतपत्रभमुद्देशं पार्श्वार्भ्यां सूत्रमात्रयेत्?) १०८ ॥

लोपनात् त्यक्तभाग(स्या होतासि?) पीठिका भवेत् ।

आग्नेयलिङ्गं स्याच्छ(क्र?त्रु)नाशसन्तापदाहकृत् ॥ १०९ ॥

क्षेत्रे+चतुरश्रेऽस्य द्वादशांशं परित्यजेत् ।

(पामदो गर्भनस्तेन?) वृत्तस्यार्धं समालिखेत् ॥ ११० ॥

इत्यर्धचन्द्राकारोऽयं (सामी?)भवति पीठिका ।

याम्यलिङ्गस्य नगरा(दिक्षिणास्था?)रिनाशनी ॥ १११ ॥

चतुरश्रे विभागार्धवर्धनात् पार्श्वयोर्द्वयोः ।

(पुरिस्वी?) भागवृद्ध्या च सूत्रद्वयनिपातनात् ॥ ११२ ॥

(रौत्संचत्त्या?) नैर्ऋती स्त्रीमरणद्वेषरोगकृत् ।
 (पूर्वचन्द्रमाकृतिर्णा?) वारुणी परिमेखला(:?) ॥ ११३ ॥
 शान्तिके पौष्टिके (चष्ट?चाथ) मृत्युनाशे(ने?च) पीठिका ।
 प्रतीच्यो(?) षडंशस्य वृद्धिं कृत्वा + + + तः ॥ ११४ ॥
 (गर्भाव?) वृत्तलेखेन यत् सम्पातचतुष्टयम् ।
 (कर्णाभ्यकर्ण?) भवेत् तेन वृ(त्ति?त्त)स्थानद्वयेन च ॥ ११५ ॥
 षडंशं सममा(ले)ख्यं यद्वा वज्रसमाकृति ।
 नाभस्वती पीठिका स्यात् (पर्णेनि?)र्मरुतो दिशि ॥ ११६ ॥
 कर्मसूच्चाटनाद्येषु विनियोज्या जिगीषुभिः ।
 याक्षी त्रिमेखला वृत्ता वित्ताप्त्यै धनदाचिं(ते?ता) ॥ ११७ ॥
 (गणाद्विमखलाष्पश्रितः?) ।
 कुर्वीतैकेन खुरकं चतुर्भिर्जाड्यकुम्भकम् ॥ ११८ ॥
 (द्वाभ्यामज्जं तथैकेन प्रवेशोऽत्र जाड्यकुम्भस्य शस्यते ।
 अञ्जयस्य चतुर्भिस्तैः कर्णिकाया द्वये नराः?) ॥ ११९ ॥
 एकेन कण्ठक(स्या?श्वा)तो निर्यात्येकेन कर्णिका ।
 (विभाजैरं पुजं?) षड्भिस्ततश्चैकेन मेखलाः ॥ १२० ॥
 पद्मेयं पीठिका ख्याता सर्वकामप्रदायिनी ।
 क्षेत्रे षोडशधा भक्ते भागेन खुरको भवेत् ॥ १२१ ॥
 चतुर्भि(र्जरांतां?) कुम्भस्त्रिभिरेकेन कर्णिका ।
 त्रिभिः कण्ठश्चतुर्भिश्च पूर्ववन्निर्गमो भवेत् ॥ १२२ ॥
 इ(मं?यं) + व्यक्तलिङ्गेषु पीठिका स्यात् पयोधरा ।
 (एवंविधैव चापीठ स्यात्किमुच्यक्तो?) लक्षणे ॥ १२३ ॥
 भक्ते द्वादशभिः पीठमानं द्विर्भागिको भवेत्(?) ।
 जगती(ति?तु) त्रिभिः (कुंसे?) द्वाभ्यामेकेन वेदिका ॥ १२४ ॥
 कण्ठो द्वाभ्यामथैकेन वेदिका पुनरुत्तरा ।
 एकैकेन तु भागेन ततः स्यात् पीठिकाद्वयम् ॥ १२५ ॥

१. 'पूर्णचन्द्राकृतिः कार्या' कार्या इति स्यात् । २. 'कर्णाभ्यर्णे' इति स्यात् ।
 ३. 'विभागैरभ्युजं' इति स्यात् । ४. 'जगती' इति स्यात् । ५. 'कुम्भो' इति स्यात् ।

एवं षडश्रा कर्तव्या वज्राक्षा पीठिका बुधैः ।
 (पीठिका क्षेत्रेण निर्भक्तषो?) भागेन खुरको भवेत् ॥ १२६ ॥
 द्वाभ्यां जङ्घाथ भागेन वेदी द्वाभ्यां तु कण्ठ(य?कः) ।
 (उभयाभ्यां निर्गमः सा स्तीच्छि?) चन्द्रकला भवेत् ॥ १२७ ॥
 (आपायनायपुद्गौ च पदारेखैव चामृता?) ।
 भवेत् षण्मेखलादर्धाद्धर्वकण्ठोऽथ भागिकः ॥ १२८ ॥
 पट्टिकात्रितयं शेषे क्षेत्रे(त्र?त्रे) स्यान्निर्गमान्तरम् ।
 रुद्रार्चिता पीठिकेयं संवर्तत्यभिधानतः ॥ १२९ ॥
 यां कृत्वा प्रकृतेरूर्ध्वं गताः संवर्तकादयः ।
 रुद्रावोथस्तराख्यं(?) ते भेजिरे पदमव्ययम् ॥ १३० ॥
 षोढा पीठोदये भक्ते भागं स्यात् पट्टिकात्रयम् ।
 एकेन कण्ठो भागेन पट्टिकान्यापि भागिका ॥ १३१ ॥
 नन्द्यावर्ताङ्किता सेयं नन्द्यावर्तेति कीर्तिता ।
 साधारणीयं सर्वेषां लिङ्गानां सर्वसिद्धिदा ॥ १३२ ॥
 (भवाकण्ठसुखासध्यानामियं सिद्धखुरा ।
 दोदेरन्योनमिथै?) भवन्त्यन्याश्च पीठिकाः ॥ १३३ ॥
 मा(स?न)संस्था न कथितास्तासामानन्त्यकारणात् ।
 ज्यंशेन गर्तः स्यादासां षोडशंशेन मेखला ॥ १३४ ॥
 खातश्च नेयः श्वभ्रान्तं मेखलामध्यतो ह्य(तौ?सौ) ।
 (प्राणालार्धासमा?) दैर्घ्यविस्ताराभ्यामुदग्दिशि ॥ १३५ ॥
 [पञ्चाशद्विशयंस्ताल सद्वयमन्तरा ।
 सदांसद्विभयं प्रान्ते खातोऽग्रे द्विगुणामुखान् ॥ १३६ ॥
 सार्धाभमेखला कार्याः प्राणालः स्वमृतं भागतः ।
 गुणागुणास्त्रयो लिङ्गे तान्यापत्रेव?] भावयेत् ॥ १३७ ॥
 आवर्ताः शोभनाकाराः शुभाः स्यु + + + + धः ।
 (नहु?) पीठमक्षशिले अस्ते लिङ्गजात्यनुगे सदा ॥ १३८ ॥

(भर्गःगर्भः)कर्णचतुर्थाशमाना स्याद् ब्रह्मणः शिला ।
 + + + गस्य कर्णेन यद्वा ब्रह्मशिला भवेत् ॥ १३९ ॥
 (याताभिधेकः) ब्रह्मशिला ब्रह्मांशतो भवेत् ।
 ताव(त्याःता)भ्यधिका कार्या तस्याः कर्मशिला बुधैः ॥ १४० ॥
 स्थापयेत् (पुरुषत्रयाः) शि(वाःवं) मध्ये निवेशयेत् ।
 ब्रह्माणं दक्षिणेनास्य वामतः पुरुषोत्तमम् ॥ १४१ ॥
 अन्यथास्थापनादेषां प्रत्यवायो महान् भवेत् ।
 (त्रिभागौना शचाः) स्यातां कोशान्तश्चक्रिणो भवेत् ॥ १४२ ॥
 (त्रिभागोनस्तिवासातां कोशान्तश्चक्रिणो भवेत् ।
 त्रिभागोन्नतस्यादान्तः कोकस्यान्तः?) पद्मजन्मनः ॥ १४३ ॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशानां + + + + निवेशने ।
 प्रमाणमेतेषु (द्विश्वः) पृथक्स्थानां यदृच्छया ॥ १४४ ॥
 उमामहेश्वरौ यत्र तत्रोमा ब्रह्मविष्णुवत् ।
 आकाशे(?) प्रतिमा (येष्टा?) चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ १४५ ॥
 हस्तान् कार्या त्रिभागोना मध्या हीना तदर्धतः ।
 यात्रार्था प्रतिमा द्वारप्रमाणेन विधीयते ॥ १४६ ॥
 (भवःतच्च) द्वारं त्रिधा (चत्वाःभक्त्वा) पीठं भागेन कल्पयेत् ।
 (ताःद्वा)भ्यां (तु) प्रतिमा कार्या ज्येष्ठा(स्याःयां) मानमीदृशम् ॥
 मध्यायां नवधा द्वारं कृ(तेःत्वै)कं भागमुत्सृ(तेःजेत्) ।
 शेषान् भागान् त्रिधा कृत्वा पीठं भागेन कल्पयेत् ॥ १४८ ॥
 अर्चाभ्यां हिनायां विदध्याद् द्वारमष्टधा ।
 ए(वःक)मुत्सृज्य शेषेण + + + + + ॥ १४९ ॥
 पी(ठात्?)तं त(त्)त्रितयेनार्चाभ्यां(रि?)विष्टां प्रकल्पयेत् ।
 द्वारस्यार्धं त्रिधा कृत्वा द्वाभ्यां पीठं विधीयते ॥ १५० ॥
 (चाकलसिरुक्तवतयद्वा?) द्वेधा चतुर्धा वा द्वारं कृत्वैकमुत्सृजेत् ।
 शेषं भागत्रयं कृत्वा पीठमर्चां च पूर्ववत् ॥ १५१ ॥

१. 'यावताभ्याधिका' इति स्यात् । २. 'कमोऽयं स्याद्' इति पूरणीयं भाति ।

३. 'ज्येष्ठा' इति स्यात् ।

द्वारोच्छ्रितेः पञ्चदशभागं (कृ?) त्यक्त्वा विधीयते ।
 भागत्रयं तदेकेन पीठमर्चा तु (तद्)द्वयात् ॥ १५२ ॥
 भागान् पञ्च विधीयेत यदिवा भागयुग्मतः ।
 पीठं (तत्)त्रितयेनार्चापुपविष्टां प्रकल्पयेत् ॥ १५३ ॥
 द्वारस्यार्धं त्रिधा कृत्वा द्वाभ्यां पीठं विधीयते ।
 भागेनार्चा(शयानागार्धेऽर्चा?) वेष्मानुसारतः ॥ १५४ ॥
 भक्ते प्रासादगर्भा(द्वेऽर्धे) दशधा पृष्ठभागतः ।
 पिशाचरक्षोदनुजाः स्थाप्या गन्धर्वगुह्यकाः ॥ १५५ ॥
 (आदित्यचन्द्रिकाविष्णुब्रह्मेशानान्ता?) पदक्रमात् ।
 गर्भे षड्भागभक्ते वा त्यक्त्वैकं (पृथता शत?) ॥ १५६ ॥
 स्थापनं सर्वदेवानां पञ्च(मेशोऽर्धे) प्रशस्यते ।
 यदङ्गप्रत्यङ्गप्रहरणगतं लक्ष्म विततं
 तदर्थानां (चित्रकनावधो वाच्यमक्षय?) ।
 सपीठा(र्थाऽर्चा)लिङ्गोन्मिति(मपि) विदित्वा ब(टु^१हु)मतो
 भवेद् भूपालानां कृतिभिरपि पूज्येत सकलैः ॥ १५६-२ ॥
 इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवाविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 लिङ्गपीठप्रतिमालक्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—————:0:—————

अथ चित्रोद्देशो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।

—————:0:—————

अथ(प्रियं विते?)ऽस्माभिर्विन्यासश्चित्रकर्मणः ।
 (रा?चि)त्रं हि सर्वशिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम् ॥ १ ॥
 (पदे पदे वा?) कुड्ये वा यथा(चित्रं सं वचने?) ।
 वर्तयः कृतबन्धाश्च लेखामानं यथा भवेत् ॥ २ ॥

१ 'पृथगंशकम्' इति स्यात् २. 'प्रपञ्च्यते' इति स्यात् । ३. 'पट्टे पटे वा'
 इति स्यात् । ४. 'चित्रस्य सम्भवः' इति स्यात् ।

(वर्णगव्यक्तिया?) यादृग् यादृशो वर्तनाक्रमः ।
मानोन्मानविधिश्चैव नवस्थाने'न)विधिस्तथा ॥ ३ ॥

हस्तानां यश्च विन्यासो (लक्षणनात्रसंशय?) ।
दिव्यानां मानुषाणां च (दिव्या सा मुखजन्मना?) ॥ ४ ॥

गणरक्षःकिन्नराणां कुब्जवामन(यैस्तेषाम्?) ।
विकल्पाकृतिमानानि रूपसंस्थानमेव च ॥ ५ ॥

वृक्षगुल्मलतावल्लीवीरुधां पापकर्मणाम् ।
शूराणां दुर्विधानां च धनिनां पृथिवी(क्षिःभृ)ताम् ॥ ६ ॥

ब्राह्मणानां (विंसासोडजातन?) क्रूरकर्मणाम् ।
मानिनामथ रज्जोपजीविनां चेह्र(ङ्ग?क)ध्यते ॥ ७ ॥

रूपलक्षणनैपथ्यं सतीनां राजयोषिताम् ।
दासीप्रव्रजितारण्डा(यतिवल्लीषु लक्षणा ॥ ८ ॥

कन्यानामसंकारणां च विध्याना?)गजवाग्जिनाम् ।
मकरव्यालसिंहानां तथा यज्ञोपयोगिनाम् ॥ ९ ॥

(विना?)रात्रिविभागस्य ऋतूनां चापि लक्षणम् ।
(अत्र योज्यं याप्यंभ्र कथं भवति?) ॥ १० ॥

प्रविभागस्य देवानां रेखाणां चापि लक्षणम् ।
लक्षणं पञ्चभूतानां तेषामारम्भ एव च ॥ ११ ॥

वृकादीनां विहङ्गानां सर्वेषां जलवासिनाम् ।
चित्रन्यासविधानस्य ब्रूमः सम्प्रति लक्षणम् ॥ १२ ॥

(कर्षण कर्मा करमे?) यस्माच्चित्रकर्मणि वर्तते ।
तस्याङ्गान्यभिधीयन्ते तेन सर्वाणि विस्तरात् ॥ १३ ॥

वर्तिका (प्र)थमं तेषां द्वितीयं भूमिवन्धनम् ।
लेख्यं तृतीयं स्याद् रेखाकर्माणि (वर्ततेमिह लक्षणम्?) ॥

१. 'वर्णव्यक्तिक्रमो' इति पाठः स्यात् । २. 'दिव्यमानुषजन्मनाम्' इति,
३. 'योषिताम्' इति, ४. 'विशं शूद्रजातीनाम्' इति, ५. 'दिवा' इति च स्यात् ।

पञ्चमं (कर्षकर्मच्च?) षष्ठं स्याद् वर्तनाक्रमः ।
 सप्तमं (लेखनं लेखकरणं द्विचकर्म?) तथाष्टमम् ॥ १५ ॥
 सङ्ग्रहोऽयमिति (चैवं कर्मणः?)
 (सूत्रिति तदनुक्रमेणा यः?) ।
 भावयेन्न खलु मोह(म?मे)त्यसौ
 चित्रकर्मणि कृती च जायते ॥ १६ ॥

इति गह्वराजधिराजश्रीभोजदेवधिरन्त्रिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

चित्रोद्देशाध्यायो नाम (सप्तमः?) ॥

—:—

अथ भूमिवन्धो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:—

इदानीं वर्तिकालक्ष्म भूमिवन्धश्च कथ्यते ।
 गुल्मान्तरे शुभे क्षेत्रे पद्मिन्यां सरितस्तटे ॥ १ ॥
 पार्वतानां च कक्षेषु वापि(का)काननान्तरे ।
 भौमा लवणपिण्डाः स्युर्मूलेषु च महीरुहाम् ॥ २ ॥
 क्षेत्रेष्वेतेषु या जाताः स्थिराः श्लक्ष्णा(श्च) पाण्डराः ।
 ग्राह्या (मृद्वावसासेष्वा?) विज्ञेया क(र^१टु)शर्करा ॥ ३ ॥
 क्षेत्राणामानुपूर्व्येण मृत्तिका कथिता शुभा ।
 पेषयेत् कुट्टयित्वा तां ततः कल्कं समाचरेत् ॥ ४ ॥
 शालिभक्तस्य दातव्यस्तत्र भागो यथोदितः ।
 ग्रीष्मर्तौ सप्तमं भागं शीतकाले च पञ्चमम् ॥ ५ ॥
 षष्ठं शरदि वर्षासु चतुर्थं भागमानयेत् ।
 वर्तिकावन्धनार्था(यैदार्थ)मायान्ति तेन ता(ः) ॥ ६ ॥
 (अग्राया शालिवक्त्राभा यत्रं यव्यां सुखगृहम् ।
 कुर्कुटाराग्रसदृशी?) कर्मभागविकल्पतः ॥ ७ ॥

१. 'वर्णकर्म स्यात्' इति स्यात् । २. 'चित्रकर्मणः' इति स्यात् । ३. 'सूत्र्यं स्म तदनुक्रमेण यः' इति स्यात् । ४. 'नाम एकसप्ततितमः' इति स्यात् । ५. 'य दाव्य' इति स्यात् ।

शिक्षाकालेऽङ्गुलद्वन्द्वं प्रमाणेन विधीयते ।
 कुथरेखासु शस्यन्ते वर्ति(काः)व्यङ्गुलोन्मिताः ॥ ८ ॥
 (पटा?)रेखासु कुर्वीत मानेन चतुरङ्गुलाः ।
 इदानीमभिधास्यामो वसुधाबन्धनक्रियाम् ॥ ९ ॥
 पक्षिका चैव कूटाश्च + + + पट एव च ।
 तस्य तस्य (किमान?) भूमिवन्धो निगद्यते ॥ १० ॥
 पुण्यनक्षत्रवारेषु माङ्गल्यदिवसेषु च ।
 (क्षतो वासो भुक्ता) च कर्ता भर्ताश्च शिक्षकः ॥ ११ ॥
 अनेकवर्णैः कुसुमैर्गन्धैः (न कृपापाः?) ।
 नानाधूपैः सुरभिभिरर्चयित्वारभेत ताम् ॥ १२ ॥
 [नवसूत्रात्तुलमृद्वस्तितजलेन समं समम् ।
 नवत्वामात्सदृशं वृक्तनभविद्रात्यपराक्रियः ॥ १३ ॥
 लिङ्गसूत्रविनीक्षेतानिकटं सहतं नवः ।
 अनुत्ततमनिस्मं च कुर्याद् यावत् क्षितौ समम् ॥ १४ ॥
 सुस्थितं जलवक्षायं?] सम्यगालोक्य धीमता ।
 कृत्वा भूमिक्रियाभेतां पश्चाद् बन्धनमाचरेत् ॥ १५ ॥
 (लुचिमलांस्तिस्व?) व्रीहितण्डुलसन्निभाम् ।
 संगृ(स्य?ह्य)तीर्थमथवा पिष्टा कल्कं समाचरेत् ॥ १६ ॥
 तेन पिण्डं प्रकुर्वीत (शोषयेच्चतमात्तयो?)
 (शैवयेत्?) कल्कयेद् येन (व्यासाद्ब्रषव्यस्तुया?) ॥ १७ ॥
 एवमेव (चतुष्कोन्ता?) सप्त वारान् प्रघर्षयेत् ।
 हस्तेन संमृशेत् पश्चाद् यथा (लोमं?) च जायते ॥ १८ ॥
 अथवा शिक्षिकाभूमौ (ख)रबन्धनमाचरेत् ।
 पूर्वोदितस्य कल्कस्य निर्यासे बन्धनं क्षिपेत् ॥ १९ ॥

१. 'कुतोपवासो भक्त्या' इति स्यात् ।

२. 'शोषयेच्च तमात्तपे' इति स्यात् ।

३. 'भपयेदि'ति स्यात् ।

पञ्चभागप्रमाणेन ग्रीष्मकालेषु शस्यते ।

शरद्यंशत्रयं सार्धं त्रीनंशा समागमम्?) ॥ २० ॥

वर्षाकाले हि भागेन प्रदद्यादिति निश्चयः ।

पञ्चभागप्रमाणेन ग्रीष्मसं + + + + + ॥ २१ ॥

(बन्धानयं प्रकुर्वीतापपूर्वकं धिनाक्षितो?) ।

(लो?ले)पयेद् रोमकूर्वेण शुष्कां शुष्कामनुक्रमात् ॥ २२ ॥

तोयेन हस्त(क्तवचि?) प्रदातव्यो विचक्षणैः ।

विधिनैवं कृतं श्रेष्ठं शिक्षिकाभूमिबन्धनम् ॥ २३ ॥

बन्धनं कुड्यभूमेश्च यथावत् कथ्यतेऽधुना ।

स्तुहीवास्तुककूष्माण्डकुहालीनामुपाहरेत् ॥ २४ ॥

क्षीरमन्यतम(स्यापामामीस्येक्षरुकस्य?) च ।

(तेषांणां वागसूत्रे?) सप्तरात्रं निधापयेत् ॥ २५ ॥

(सिंहपासननिम्बानां त्रिफलव्याधेर्घातयो?) ।

स(मो?मा)हरेद् यथालाभं (कथया?)कुटजस्य च ॥ २६ ॥

कषाय(का?क्षा)रयुक्तेन सामुद्रलवणेन च ।

(पूर्वा कुड्यं रामं कृत्वा कषायैः परिषे परिषेमयतु?) ॥ २७ ॥

चिक(ण?णां?) मृदमादाय स्थूलपाषाणवर्जिता(म्) ।

(मानुषां?)स्ताद्विगुणान् (न्य)स्य(स्वदय)वा(च?)लुकामृ(दा?द)म्

ककुभस्य (स्कन्दद्याधा)न्माषाणां शालमलेरपि ।

श्रीफलानां रसं तद्वद् दद्यात् कालानुरूपतः ॥ २९ ॥

पूर्वकालानुसारेण यत् प्रोक्तं बन्धनं क्षितेः ।

तत् सर्वं सिकतायुक्तं कृत्वैकत्र (न)वं बुधः ॥ ३० ॥

१. बन्धने च प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना क्षितौ' इति स्यात् । २. 'स्यापामामीस्येक्षरुकस्य' इति स्यात् । ३. 'सिंहपासननिम्बानां त्रिफलव्याधेर्घातयोः' इति स्यात् । ४. 'पूर्वं कुड्यं रामं कृत्वा कषायैः परिषेचयेत्' इति स्यात् । ५. 'ओदयेद्' इति स्यात् । ६. 'रसं दद्या' इति स्यात् ।

(कुमाद्यमालयापातं म?)हस्तिचर्मप्रमाणतः ।
 (विशेषां ग्याथ प्रतिक्षिपेत् तोयं कुर्यादशसन्निभाम्?) ॥ ३१ ॥
 विशुद्धं विमलं स्निग्धं पाण्डुरं मृदुलं स्फुटम् ।
 पूर्वोदितां समादाय विधिवत् (कण्टककरीम्) ॥ ३२ ॥
 तां कुट्टयित्वा घृष्टा च कलकं कुर्याद् विचक्षणः ।
 पूर्वोक्तभक्तभागं च निर्यासांश्च प्रदापयेत् ॥ ३३ ॥
 (विष्वङ्क!) यदिवा दद्यात् (कूटसर्करया?) समम् ।
 त्रीन् वारा(न्) लेपयेत् कुड्यं पूर्वोक्तेन विचक्षणः ॥ ३४ ॥
 हलेन हस्तमालिप्य प्रदद्यात् (कूटकूर्तकाम् ?) ।
 जायते विधिनानेन कुड्यबन्धनमुत्तमम् ॥ ३५ ॥
 साम्प्रतं कथयिष्यामः पट्टभूमिनिबन्धनम् ।
 बिम्बावीजानि संगृह्य त्यक्त्वा तेषां मलं बुधः ॥ ३६ ॥
 एवं वि(सृद्ध?शोधय) निष्पावान् यदिवा(न्य?) शालितण्डुलान् ।
 तेषामन्यतमं श्लक्ष्णं पिष्ट्वा पात्रे विपाचयेत् ॥ ३७ ॥
 पट्टमालिप्य बन्धेन पूर्वोक्त(मिवा?विधिमा)चरेत् ।
 पूर्वोक्त(निर्यासा पुना विधात्तयः?) कटशर्कराम् ॥ ३८ ॥
 तोयेन तां (प्रचांकृत्य?) पट्टमालेखयेत् तथा ।
 अनेन विधिना बन्धश्चित्रकर्मणि शस्यते ॥ ३९ ॥
 विधिनान्येन वा कुर्यात् (सादानां?) भूमिबन्धनम् ।
 (प्राद्यद्यामिकतालपङ्कनिर्यास?)समन्विताम् ॥ ४० ॥
 निर्याससंयुतां दद्यात् त्रिस्ततः कटशर्कराम् ।
 (पाटायनां?) भूमिबन्धोऽयं विक्षेप्तव्यः प्रयत्नतः ॥ ४१ ॥
 (गोमयेन कटपेने शैस्तदनन्तरम् ?) ।
 (कटशर्करयुक्तिवारास्त्राक्तर्चकेन च?) ॥ ४२ ॥

१. 'कुड्यमालेपयेत् पूर्व' इति स्यात् । २. 'कटशर्कराम्' इति, ३. 'कटश-
 र्करया' इति, ४. 'कटशर्कराम्' इति च स्यात् । ५. 'निर्यासयुता विधाय' इति
 स्यात् ६. 'द्रवीकृत्य' इति भ्यात् । ७, ८. 'पट्टानाम्' इति स्यात् । ९. 'कट-
 शर्करया युक्तैर्वारास्त्रा कूर्चकेन च' इति स्यात् ।

(यथा पन्थत्तास्वां पश्चाद् भूमिबन्धः कटेपिहः?) ।

इति निगदितमेवं लक्षणं वर्तिकाणा-

(मिहकपदकुड्यक्ष्मानिविविविधेश्च?) ।

इदमखिलमवैति (प०ग्र)न्थतो योऽर्थतश्च

(प्रतिवति स विधातुर्विभ्रमस्यास्य योगात्?) ॥ ४३ $\frac{1}{2}$ ॥

इति महाराजः।धिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि बास्तुशास्त्रे

भूमिबन्धो ना(मैकः?म द्वि)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—:0:—

अथ लेप्यकर्मादिकं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:0:—

लेप्यकर्म समृल्लक्ष्म (लेक्षा?)लक्ष्म च कथ्यते ।

वापीकूपतटाकानि पद्मिन्यो दीर्घिकास्तथा ॥ १ ॥

वृक्षमूलं नदीतीरं गुल्ममध्यं तथैव च ।

मृत्तिकाणामिति क्षेत्राण्युक्तान्येतानि तत्त्वतः ॥ २ ॥

तासां वर्णः सिताक्षौद्रसन्निभो गौर एव च ।

कपिलश्चेति ते स्निग्धाः शस्ता विप्रादिषु क्रमात् ॥ ३ ॥

(इन्द्रांशी?) मृत्तिका ग्राह्या स्थूलपाषाणवर्जिता ।

शाल्मली(शा?मा)षककु(भं?भ)मधूकत्रिफलोद्भवम् ॥ ४ ॥

रसं विनिक्षिपेत् तस्यां (प०प्रेक्षस्यसिकथितां चपि?) ।

क्रमुकं(चनका?)बिल्वे सटालोमानि वाजिनः ॥ ५ ॥

गवां रोमाणि वा दद्यान्नालिकेरस्य (क?व)ल्कलम् ।

मृदा संयोज्य मृद्रीयाद् दद्याद् वा द्विगुणांस्तुषान् ॥ ६ ॥

(वाँलुकातीवतीचापि तपासांयोगयेन्मृदम्?) ।

भागद्वयं मृत्तिका(यै?यां) कार्पासांशेन मिश्रयेत् ॥ ७ ॥

१. 'यथा पटे तथैव स्याद् भूमिबन्धः पटेऽपि सः' इति स्यात् २. 'लेखा' इति स्यात् । ३. 'प्रक्षिप्य सिकतामपि' इति स्यात् । ४. 'वालुका वावती चापि तावती भोजयेन्मृदम्' इति स्यात् ।

तदेकीकृत्य मृद्भागं तृतीयमुपरि क्षिपेत् ।
 पूर्वोदितां स(निः)न्निधाय ततश्च कटशर्कराम् ॥ ८ ॥
 क(ल्यं?ल्कं) विधाय(:?) चीरेण रूपं तत्परिवेष्टि(ता?तम्) ।
 तेन निर्यासयुक्तेन कुर्यादाकारमादृतः ॥ ९ ॥
 कटशर्करया लिम्पेत् कूर्चकेन विचक्षणः ।
 मृत्तिकाकाथसङ्घातालेप(क)र्म प्रशस्यते ॥ १० ॥
 (रवयेल्लोहसङ्घातं लसंकार्यसुधामध्यये ।
 युक्तं पक्षेत संयोज्य मोममानं योजयेत् ॥ ११ ॥
 अनेपकं समायुक्तं?) कर्तुः स्थानविनाशनम् ।

लेपकर्ममृत्तिकानिर्णयः ॥

विलेखा(ल)क्षणं सम्यगिदानीमभिधीयते ॥ १२ ॥

कूर्चनं कूर्चकेनाथ द्वितीयं हस्तकूर्चकम् ।
 तृतीयं भासकूर्चाख्यं चतुर्थं चल्लकूर्चनम् ॥ १३ ॥
 (वर्तनं पञ्चमं वर्तन्यकूर्चमान्यकूर्चनमिष्यते ।
 लेप्यकर्मणि तच्छस्तमनामणवः ॥ १४ ॥

जलचूर्णकमानीतमिह सत्सन्तितो?) + + ।
 कूर्चकं धारयेद् धीमान् दृषश्रवणरोम(ति?भिः) ॥ १५ ॥

+++++ तत्कृतकूर्चकैः ।
 बल्कलैर्वा विधातव्यः खरकेशैरथापि वा ॥ १६ ॥

कूर्चको (येमतिर्यापि?) विहितोऽत्र प्रशस्यते ।
 (कूर्चकं धारयेद् धीमान् दृषश्रवणरोमभिः?) ॥ १७ ॥

तन्तूतः कूर्चकः श्रेष्ठो विले(प?खा)कर्मणि स्वतः ।
 (आद्यो वदाङ्कुराकारस्ततो स्वच्छाङ्कुराकृतिः?) ॥ १८ ॥

प्लक्षसूचीनिभश्चान्यस्तृतीयः कूर्चको भवेत् ।
 उदुम्बराङ्कुराकारश्चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १९ ॥

स्थूला लेखा न कुर्वीत वटाङ्कुरनि(भे?भा)दितः ।
न्यूनलेखा न कुर्वीत प्रक्षाङ्कुरसमेन च ॥ २० ॥

अश्वत्थाङ्कुररूपेण यत्र (विद्वत्सहीकरात्?) ।
उदुम्बराङ्कुराकारो लेप्यकर्मणि शम्यते ॥ २१ ॥

ज्येष्ठः स्यादायतो दण्डो वैणवो + + + इगुलः ।

लेप्यकर्म + + + समासतः

संस्कृ(तं?तेः)विधिरनन्तरं मृदः ।

अत्र सम्यगुदिता विलेखनी

कूचकस्य रचना (च) पञ्चधा ॥ २२-२ ॥

इति महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वाम्तुशास्त्रे

लेप्यकर्मविलेखाकूचकाध्यायो नाम (द्वि?त्रि)सप्ततितमः ॥

—————:o:—————

अथाण्डकप्रमाणं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

—————: : —————

अथात्र प्रक्रमायाता कथ्यतेऽण्डकवर्तना ।

कायप्रमाणमपिच जातिभावादिसंश्रयम् ॥ १ ॥

अथ (मधोतिरालिख्य तोरका सन्निवेशयेत् ।

तारका?)त्रयमालिख्य तत्रान(न)समायति ॥ २ ॥

ताव(त)प्रमाणमायामं गोल(क)स्योत्तमं विदुः ।

तेन गोलकत्वेन(?) मानोन्माने तु कारयेत् ॥ ३ ॥

मुखाण्डकस्य विस्तारो (लेप?, षट्केन सम्मितः ।

द्विदैर्घ्यं तु (?) गोलकाः सप्त वापीसंस्थानमेव च ॥ ४ ॥

मुखाण्डकमिदं श्रेष्ठं कर्तव्यं चित्रकर्मणि ।

त्रिकोटि वृ(न्ति?त्त)मालेख्यं वृत्ताण्ड(क)मिति क्रमात् ॥ ५ ॥

(भावाण्डकान्यथ ब्रूमः सोहस्याभिप्रस्तवेडकम्?) ।
गोलार्धाभ्यधिकं कार्यं (पूर्वेस्तोत्तद्विचक्षणैः?) ॥ ६ ॥
अर्धगोलकमायामादलसाण्डकमुच्यते ।
नवगोलकदैर्घ्यं तद्वद्ब्रह्मासमुखं(?) भवेत् ॥ ७ ॥
पुंसां षडा(दात्तं?यतं) मानं विस्तारात् पञ्चगोलकम् ।
वनिताण्डकमालेख्यं नालिकेरफलोपमम् ॥ ८ ॥
चतुर्गोलकविस्तीर्णमायतं पञ्चगोलकान् ।
शिशूनामण्डकं तावत् कर्तव्यं चित्रकर्मणि ॥ ९ ॥
(हास्योभिः प्रसवेत्?) तस्य गोलकार्धान् विशेषयेत् ।
आलस्याण्डकमप्येवं रोदनं तद्वदेव तु ॥ १० ॥
षड्गोलक(प्र)विस्तारमायतं सप्तगोलकम् ।
राक्षसस्याण्डकं कुर्याच्चन्द्रमण्डलसन्निभम् ॥ ११ ॥
(हास्योभिप्रस्तवे?) तस्य गोलकार्धान् विशेषयेत् ।
देवाण्डकं प्रमाणेन तदालस्येऽत्र कीर्तितः(?) ॥ १२ ॥
षड्गोलक(प्र)विस्तारं गोलकाष्टकमायतम् ।
(वृत्तांया?) समालेख्यं दिव्याण्डकमिति स्मृतम् ॥ १३ ॥
अथाभिधीयते दिव्यमानुषाण्ड(व?क)(वि?)लक्षणम् ।
गोलकार्धाधिकं (भे?त)च्च कार्यं मानुषमानतः ॥ १४ ॥
पञ्चगोलकविस्तीर्णं षड्गोल(सेकंमायुतम्?) ।
मुखाण्डं मानुषं कृत्वा(केत्तरस्य?) विधीयते ॥ १५ ॥
शिशुकाण्डकमानेन प्रमथानां मुखाण्डकम् ।
राक्षसाण्डकमानेन यातुधानाण्डकं भवेत् ॥ १६ ॥
दानवस्याण्डकं कुर्याद् देवानां वदनोपमम् ।
गन्धर्वनागयक्षाणां तद्वदेवाण्डकं भवेत् ॥ १७ ॥
विद्याधराणां विज्ञेयं दिव्यमानुषमण्डकम् ।
बुध्यन्ते केऽपि शास्त्रार्थं केचित् कर्माणि कुर्वते ॥ १८ ॥

करामलकव(त्यास्यं परः)द्वयमप्यदः ।

न वेत्ति शास्त्रवित् कर्म न शास्त्रमपि कर्मवित् ॥ १९ ॥

यो वेत्ति द्वयमप्येतत् स हि चित्रकरो वरः* ॥ १९½ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

अण्डकप्रमाणं नाम (त्रिःचतुः)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—:0:—

अथ मानोत्पत्तिर्नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:0:—

ब्रूमोऽथ(मातमङ्गणां?) परमाण्वादि तद् भवेत् ॥ १ ॥

परमाणू रजो रोम लिक्षा (प्रैरिका?) यवोऽङ्गुलम् ।

क्रमशोऽष्टगुणा वृद्धिरे(वःवं) मानाङ्गुलं भवेत् ॥ २ ॥

द्व्यङ्गुलो गोलको ज्ञेयः कलां वा तां प्रचक्षते ।

द्वे कले गोलकौ (बाहौ?) भागो मानेन तेन तु ॥ ३ ॥

आयामाद् विस्तृतेश्चित्रमन्यूनाधिकमाचरेत् ।

देवादीनां शरीरं स्याद् विस्तारेणाष्टभागिकम् ॥ ४ ॥

(त्रिदशद?)भा(गा)यतं चैतद् विदध्याच्चित्रशास्त्रवित् ।

असुराणां (सैरं?) स्याद् भागान् स(मा?सा)र्धसंयुतान् ॥ ५ ॥

विस्तारेण तदायामादेकान्नत्रिंशदिष्यते ।

सप्तभागं राक्षसानां विस्तारेणायतं पुनः ॥ ६ ॥

सप्तविंशतिभागं स्याद् यत् पुनर्दिव्यमानुषम् ।

(सार्धा तु षडंशास्त कुर्यात्याद्व्यशत्यायतम्?) ॥ ७ ॥

१. 'मानगणनम्' इति स्यात् । २. 'यूका' इति स्यात् । ३. 'वा द्वौ' इति स्यात् । ४. 'त्रिंशद्' इति स्यात् । ५. 'शरीरं' इति स्यात् ।

● अध्यायावसाने नियमेन दृश्यमानां तत्तदध्यायविषयक्रोडीकरणकारिकां विनैवे-
हाध्यायपरिसमाप्तिर्नातुकायामुपलभ्यते, एतदध्यायारम्भे 'कायमानमपि च' इति यद् विष-
यान्तरं प्रतिज्ञातं, तत् समनन्तराध्याये सप्रपञ्चं निरूप्य मध्ये 'अण्डकवर्तना' 'कायमान-
मि'त्येतयोरेतदध्यायगतयोर्द्वयोर्विषययोः क्रोडीकारः कारिकारूपेणाभ्यायावसान इव निबद्धः ।

षड्भागविस्तृतं कार्यं शरीरं मर्त्यजन्मनि ।

चतुर्विंशतिभागान् + सार्धान् कुर्वीत दैर्घ्यतः ॥ ८ ॥

पुरुषस्योत्तमस्यैतन्मानम(स्याः?स्मा)भिरीरितम् ।

मध्यमस्य तु सार्धं स्याद् विस्ताराद् भागपञ्च(म?क)म् ॥ ९ ॥

आयामस्तस्य तु प्रोक्तो (विंशतिस्विति?)रन्विता ।

(कैनीयसानां कुब्जानां विस्तारान् पञ्चभागिका ॥ १० ॥

दैर्घ्यमस्य विधातव्यस्तथा शरीरस्य विस्तरा पञ्चभागिका?) ।

दै(र्घ्य?र्घ्य) द्वाविंशतिर्भागा वपुषोऽस्य प्रशस्यते ॥ ११ ॥

(कार्या शरीरस्य?) कुब्जानां विस्तारात् पञ्चभागिकम् ।

दैर्घ्यमस्य विधातव्यं तथा भा(गं शुभदश?) ॥ १२ ॥

भागपञ्चिकावस्तारं (वामनानां वपुर्भवेत्) ।

कुर्वीत सा(र्ध?र्धान्) सप्तैव भागा(न्) दैर्घ्येण त(द्वत?त् पुन): ॥

(किंवांराणि?) प्रोक्तं प्रमाणमिद(मेद?)मेव हि ।

(प्रथमानं?) तु विस्तारो वपुषोऽश्चतुष्टयम् ॥ १४ ॥

(दैर्घ्यैदो पुनसूत्ये?) भागषट्कप्रमाणतः ।

उक्तं देहप्रमाणस्य भागसूत्रमिदं पृथक् ॥ १५ ॥

देवानामसुराणां च राक्षसानां तथैव च ।

दिव्यमानुषमर्त्यानां कुब्जवामनयोरपि ॥ १६ ॥

किन्नराणां सभूतानां क्रमेणास्मिन्नुदाहृतम् ।

इत्थमण्डक(वैले च वनं क्रमं?)

१. 'विंशतिस्त्रिभि' इति स्यात् । २. कुब्जानामित्यादितथेत्यन्तं पदजातमुपरि-
त्यमाणकुब्जशरीरप्रमाणादिह लेखकेन प्रमादात् प्रक्षिप्तमिव भाति । ततश्च प्रकृतानुगु-
।न 'कनीयसः शरीरस्य विस्तारः पञ्चभागिकः' इतीह पाठो योजनीयः स्यात् ।
३. 'कार्यं शरीरं' इति स्यात् । ४. 'गांश्चतुर्दश' इति स्यात् । ५. 'किन्नराणामपि'
ति स्यात् । ६. 'प्रमथानां' इति स्यात् । ७. 'दैर्घ्यं भवेत् पुनस्तस्य' इति स्यात् ।
८. 'विलेखनक्रमः' इति स्यात् ।

(का)यमानमपि जातिभेदतः ।

भावतश्च कथितं विभा(जन्मना?)वयन्

(यलित्याख्या स्त?)खलु चित्रवित्तमः ॥ १७^१/_२ ॥

अथ मानसमुत्पत्तिर्यथावदभिधीयते ॥ १८ ॥

देवानां त्रीणि रूपाणि सुरजो + + कुम्भकौ ।

स्याद् दिव्यमानुषस्यैकं शरीरं दिव्यमानुषम् ॥ १९ ॥

असुराणां त्रिधा रूपं चक्रमुत्तीर्णकं तथा ।

दुर्दरः शकटः कूर्म (त्रिदिवौ?इति द्वे) रक्षसां पुनः ॥ २० ॥

पुंसां रूपाणि पञ्च स्युस्तान्युच्यन्ते यथाक्रमम् ।

(हंसः सासाप्ररूचको भक्तामालाव्य एव च ॥ २१ ॥

कुयस्वविद्विधौ ज्ञेयो मेषो वृत्तकरस्तथा?) ।

वामनास्त्रिविधा ज्ञेयाः सपिण्डास्थानपद्मकाः ॥ २२ ॥

(कूष्माण्डकर्बटस्तिर्यक् + + + + प्रथमतः?) ।

मयूरः कुर्वटः काशः किन्नरस्त्रिविधो भवेत् ॥ २३ ॥

(वालकापौरुषी वृत्ता + + + दण्डका तथा ।

त्रयः(?) पञ्चधा प्रोक्ताः समस्ताश्चित्रवेदिभिः ॥ २४ ॥

भद्रो मन्दो मृगो मिश्र इति हस्ती चतुर्विधः ।

जन्मतस्त्रिविधं प्राहुः (‘त्रिधिर्न गिरिनयूषांश्रयम्’) ॥ २५ ॥

(‘विविधा वाजिनो रथ्य?’ पारसादुत्तरान्ततः ।

सिंहाश्चतुर्धा शिखरविल(द्रमवृणारव्यया?) ॥ २६ ॥

व्यालाः षोडश निर्दिष्टा हरिणो गृध्रकः शुकः ।

कुक्कुटः सिंहशार्दूलवृकाजागण्डकीगजाः ॥ २७ ॥

(क्री?क्रो)डाश्वमहिषश्वा(ना’नो) मर्क(टोत?टः) ख)र इत्यमी ।

[ए.सामिन्दमासं यं याम्यनैर्ऋतवारुणैः ॥ २८ ॥

वायव्यां सौम्यमित्युक्तं जज्ञिपातमिहव्यधारु ।

नतस्तमिहर्भामः शिपद्या सूकरोऽपि च ॥ २९ ॥

१. ‘यो लिखेत् स’ इति स्यात् । २. ‘गिरिनयूषांश्रयम्’ इति स्यात् ।

३. ‘द्विविधा वाजिनो रथ्याः’ इति स्यात् । ४. ‘गुल्मवृणाभयाः’ इति स्यात् ।

पशुर्गौः सुसुमारुश्च गजमेषश्चतुर्मुखः] ।

तुरङ्गसिंहशार्दूलमेषाश्चेत्यत्र षोडश ॥ ३० ॥

(जातसंस्तृतिः ?) ॥

शुक्रवासाः शुचिर्दक्षः स्त्रीशूद्रानभिलाषुकः ।

स्थाने कर्मारभेतैतद् विभक्ते संवृतेऽपि च ॥ ३१ ॥

आरम्भो देवतार्चानां रोहिण्यामुत्तरेषु च ।

साधकं वा भवेद् (यस्तु भवा?) रम्भो विधीयते ॥ ३२ ॥

*मुखं भागेन कुर्वीत ग्रीवा वक्त्रात् त्रिभागिका ।

(ओयमतन्मुखं?) ज्ञेयं केशान्तं द्वादशाङ्गुलम् ॥ ३३ ॥

द्वादशैवाङ्गुलान्येतद् विस्तारेण पुनर्भवेत् ।

(प्रविमानं?) त्रिभागेन नासिका च त्रिभागतः ॥ ३४ ॥

त्रिभागेन ललाटं स्यादुत्सेधात् त्रिसमं मुखम् ।

अक्षिणी द्व्यङ्गुलायामे तदर्धा(ध्यः)दपि विस्तृते ॥ ३५ ॥

तारकाक्षित्रिभागेन कर्तव्या सुप्रतिष्ठिता ।

तारकायास्ततो मध्ये ज्योतिस्त्र्यंशेन कल्पयेत् ॥ ३६ ॥

(अत्रौ व्यक्षिरामे कुर्यादक्षिमांसयो ।

मंकाराणां स्युरुच्चाता सम्यगालिखेत् ?) ॥ ३७ ॥

एवं विधानतो योज्यं रूपजातमशेषतः ।

जातीनां वशत इति प्रमाणमुक्तं

(दिवादिष्वखिलमुक्तं देवा?) मिदं स्फुष्टं विदित्वा ।

यश्चित्रं लिखति बहुप्रकारमस्मै

प्राधान्यं वितरति चित्रकृत्समूहः ॥ ३८^१/_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

मानोत्पत्तिर्नाम (चतुः?पञ्च)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

:०:

१. 'यत्तु तदा' इति स्यात् । २. 'अयामतो मूलाद्' इति स्यात् । ३. भ्रुवो-
र्गर्भे इति स्यात् । ४. 'दिव्यादिष्वखिल' इति स्यात् ।

* इत आरभ्य श्लोकपञ्चकगता विषयाः समनन्तराध्यायादिह प्रक्षिता इति भाति ।

अथ प्रतिमालक्षणं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः

—:०:—

प्रतिमानामथ ब्रूमो लक्षणं द्रव्यमेव च ।
 सुवर्णरूप्यता(म्राः स्युर्दारुलेखानि?) शक्तितः ॥ १ ॥
 चित्रं चेति विनिर्दिष्टं द्रव्यमर्चासु सप्तधा ।
 सुवर्णं पुष्टिकृद् विद्याद् रजतं कीर्तिवर्धनम् ॥ २ ॥
 प्रजाविष्टद्धि(जं?टं) ताम्रं शैलेयं भूजयावहम् ।
 आयुष्यं दा(वरच?रवं) द्रव्यं लेख्यचित्रे धनावहे ॥ ३ ॥
 प्रारभेद् विधिना प्राज्ञो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
 हविष्यनियताहारो जपहोमपरायणः ॥ ४ ॥
 शयानो धरणीपृष्ठे (कुशास्तरणे तदन्तरम् ?)* ।
 अप्राप्ताया(?) द्वयोर्मध्यं भवेत् पञ्चाक्षिसम्मितम् ॥ ५ ॥
 नेत्रश्रवणयोर्मध्यं भवेद्ङ्गुलपञ्चकम् ।
 कर्णौ चाक्षिसमौ ज्ञेयावुत्सेधाद् द्विगुणायतौ ॥ ६ ॥
 (सा कर्णपाली स्यान्मध्यं पत्तिष्यल्यकूटयोः ।
 द्विभागोलकायता पिप्पल्याश्रिताङ्गुलविस्तृता?) ॥ ७ ॥
 अरोमप्रभवा ज्ञेया व्याकृष्टधनुराकृतिः ।
 एवम्प्रमाणं स्यादेषां कर्णपृष्ठाश्रयोऽपि च ॥ ८ ॥
 ऊर्ध्वबन्धादधोबन्धः कर्णमूलसमाश्रिता(?) ॥ ९ ॥
 अध्यर्धं गोलकं ज्ञेयः पृष्ठतश्चैवमेव सः ॥ ९ ॥
 निष्पावसदृशाकारा कर्तव्या कर्णपिप्पली ।
 आयामेनाङ्गुलं सा स्याद् विस्तारेण चतुर्य(या?वा) ॥ १० ॥
 पिप्पल्याधातयोर्मध्ये(?) लकार इति संज्ञितः ।
 स्याद(ध्य)र्धाङ्गुलायामो विस्तारेण च सोऽङ्गुलम् ॥ ११ ॥

१. 'म्राश्मदारुलेखानि' इति स्यात् ।

* इत उत्तरं वाक्यपरिसमाप्तिदर्शनात् प्रक्रमान्तरमङ्कमणाच्च कियाश्चिद् ग्रन्थ-
 पातः संभाव्यते ।

मध्ये लकारो निम्नः स्यान्मानाद् यवचतुष्टयम् ।
 मूले पिप्पलिकायाः स्याच्छ्रोत्रच्छिद्रं चतुर्यवम् ॥ १२ ॥
 या(गोलकारपीगूष्मो स्तूतिकेति?) प्रकीर्तिता ।
 अर्धाङ्गुलायता सा स्याद् यवद्वितयविस्तृता ॥ १३ ॥
 लकारावर्तयोर्मध्ये पीयूषी सा प्रकीर्तिता ।
 अङ्गुलद्वितयायामा विस्तृता सार्धमङ्गुलम् ॥ १४ ॥
 कर्णस्य बाह्या रेखा या तामावर्तं प्रचक्षते ।
 षडङ्गुलप्रमाणः स्याद् वक्रो वृत्तायतश्च सः ॥ १५ ॥
 मूलांशोऽर्धाङ्गुलः कार्यः क्रमान्मध्ये यवद्वयम् ।
 अग्रे यवप्रमाणश्च विस्तारेण विधीयते ॥ १६ ॥
 लकारावर्तयोर्मध्यमुद्धात इति कीर्तितम् ।
 अधोभागे + पीयूष्या विस्तारेण यवत्रयम् ॥ १७ ॥
 ऊर्ध्वतः कर्णविस्तारो गोलकाद् द्वियवान्वितः ।
 मध्ये च द्विगुणं नालं मूले मात्रा स(पञ्च?षड्य)वा ॥ १८ ॥
 समुदायप्रमाणेन (णैलक?)द्वितयायतः ।
 कर्णप्रसप्तः(?) कर्तव्यो निम्नो(च्चूमत?)विभागवान् ॥ १९ ॥
 अङ्गुलं पश्चिमं नालं पूर्वमर्धाङ्गुलं भवेत् ।
 कुर्वीत कोमले नाले क(ल?ला)द्वितयमायते ॥ २० ॥
 श्रवणस्य विभागोऽयं (पर्वा?यथा)वत् परिकीर्तितः ।
 अन्यूनाधिकमानः स्यात् प्रशस्तो दूषितोऽन्यथा ॥ २१ ॥
 चिबुकं द्व्यङ्गुलायामं तस्यार्धमभ्रं विदुः ।
 तदर्धमुत्तरोष्ठः स्याद् भाजी चार्धाङ्गुलो(ष्ठ?च्छ्रया) ॥ २२ ॥
 नासापुटौ तु विज्ञेयौ चतुर्थं भाग(मष्ट?मोष्ठ)योः ।
 तयोः प्रान्तौ तु कर्तव्यौ करवीरसमौ शुभौ ॥ २३ ॥
 तारकान्तःसमे चैव सृक्कणी परिचक्षते ।
 नासिका स्या(त्) प्रमाणेन चतुरङ्गुलमाय(ते?ता) ॥ २४ ॥

पुट(भा?प्रा)न्ते च विस्तारो नासाग्रस्याङ्गुलद्वयम् ।

विस्तारेणाङ्गुलान्यष्टौ तदर्धमपि चायतम् ॥ २५ ॥

प्रमाणगुणसंयुक्तं ललाटं परिकीर्तितम् ।

आरभ्य चिबु(का?काद्) यावत् (कु?के)शान्तं पश्चिमात् तथा ॥

ग(णिक?ण्डा)न्तं शिरसो मानं भवेद् द्वात्रिंशदङ्गुलम् ।

+ + + कर्णयोर्मध्ये (मष्टको?)ऽष्टादशाङ्गुलः ॥ २७ ॥

+ ग्रीवयोः परीणाहो विंशतिश्चतुरन्विता ।

(श्री?ग्री)वातः स्यादुरोभा(गा?ग) उरसो नाभिरेव च ॥ २८ ॥

नाभे(‘मेन्द्र?’) भवेद् भागौ (द्रा?बुभयमेव च?) ।

ऊर्वोः समे मते जङ्घे जानुनी चतुरङ्गुले ॥ २९ ॥

चतुर्दशाङ्गुलौ पादौ स्मृतावायाममानतः ।

षडङ्गुलौ तु विस्तारादुत्सेधाच्चतुरङ्गुलौ ॥ ३० ॥

(पञ्चाङ्गुलपरीणाह अङ्गुलौ त्र्यङ्गुलायतः?) ।

अङ्गुष्ठकसमा चैव स्यादायामा(त्) प्रदेशिनी ॥ ३१ ॥

तस्याः षोडशभागेन हीना स्यान्मध्यमाङ्गुलिः ।

अष्टभागेन म(ध्ये?ध्या)या हीनां विद्यादनामिकाम् ॥ ३२ ॥

तस्याश्चैवाष्टभागेन हीना ज्ञेया कनिष्ठिका ।

पादोनमङ्गलं कुर्यादङ्गुष्ठस्य नखं बुधः ॥ ३३ ॥

अङ्गुलीनां नखान् कुर्यात् (खं?) पञ्चत्र्यंशसंमितान् ।

(कुर्वीताङ्गुलकोत्सेधं त्रिभ्यन्वितमङ्गुलाम्?) ॥ ३४ ॥

प्रदेशिन्यङ्गुलोत्सेधा हीना(ः) शेषा यथाक्रमम् ।

जङ्घामध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः ॥ ३५ ॥

जानुमध्ये परीणाह(इ?) (स्त?स्त्व)ङ्गुलान्येकविंशतिः ।

तस्यैव सप्तमं भागं विद्याज्जानुकपालकम् ॥ ३६ ॥

(कु?ऊ)रुमध्ये परीणाहो भवेद् द्वात्रिंशदङ्गुलः ।

(भागार्धमाशै?) वृषणौ मेढं वृषणसंस्थितम् ॥ ३७ ॥

१. ‘मेढं’ इति स्यात् । २. ‘द्राबुभयमेव च’ इति, ३. ‘पञ्चाङ्गुलपरीणाहावङ्गुष्ठो
अङ्गुलायतौ’ इति च स्यात् । ४. ‘कुर्वीताङ्गुलकोत्सेधं त्रिभ्यन्वितमङ्गुलम्’ इति स्यात् ।

षडङ्गुलपरीणाहं कोशस्तु चतुरङ्गुलः ।
 अष्टादशाङ्गुलमिता विस्तारेण कटिर्भवेत् ॥ ३८ ॥
 अङ्गुलार्धं (भवेन्नारीरोधोवश्वाङ्गुलं?) भवेत् ।
 नाभिमध्ये परीणाहः षट्चत्वारिंशदङ्गुलः ॥ ३९ ॥
 द्वादशाङ्गुलमात्रं तु स्तनयोरन्तरं विदुः ।
 स्तनयोरुपरिष्ठात्तु कक्षप्रान्तौ षडङ्गुलौ ॥ ४० ॥
 उत्सेधात् पृष्ठविस्तारो विंशतिश्चतुरन्विता ।
 उरसः सह पृष्ठेन परीणाहः प्रकीर्तितः ॥ ४१ ॥
 षडङ्गात् परीमाणादङ्गुलानीति निश्चयः(?) ।
 परीणाहाच्चतुर्विंशत्यङ्गुलाष्टौ च विस्तृता ॥ ४२ ॥
 ग्रीवा(वा?) कार्या भुजायामः षट्चत्वारिंशदङ्गुलः ।
 पर्वोपरितनं बाहोः कार्यमष्टादशाङ्गुलम् ॥ ४३ ॥
 षोडशाङ्गुलमात्रं तु द्वितीयं पर्वं कथ्यते ।
 बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः ॥ ४४ ॥
 प्रबाहोस्तु परीणाहो भवति द्वादशाङ्गुलः ।
 आयामेन (तलत्वापि?) कीर्ति(ते?)तो द्वादशाङ्गुलः ॥ ४५ ॥
 अङ्गुलीरहितः प्रा(ज्ञो?ज्ञैः) सप्ताङ्गुल उदाहृतः ।
 पञ्चाङ्गुलानि विस्ती(र्णा?र्णो) लेखालक्षणलक्षितः ॥ ४६ ॥
 पञ्चाङ्गुलानि मानेन कर्तव्या मध्यमाङ्गुलिः ।
 पर्वणोऽर्ध(तु)मध्याया हीनां त्रिधात् प्रदेशिनीम् ॥ ४७ ॥
 प्रदेशिनीसमा चैव स्यादायामादनामिका ।
 पर्वार्धमानहीना च प्रमाणेन कनिष्ठिका ॥ ४८ ॥
 अङ्गुलीनां नखाः कार्याः सर्वे पर्वार्धसंमिताः ।
 आयाममात्रमेतासां परीणाहं प्रचक्षते ॥ ४९ ॥
 अङ्गुष्ठकस्य दैर्घ्यं स्यादङ्गुलानां चतुष्टयम् ।
 पञ्चाङ्गु(ल?लं) परीणा(हं?हः) स्पष्टचारुयवाङ्कि(तं?तः) ॥ ५० ॥

तुङ्गा(स्थःत्त)मानपर्यन्तात् किञ्चिद्धीना नखा मताः ।
अङ्गुष्ठकप्रदेशिन्योरन्तरं द्व्यङ्गुलं भवेत् ॥ ५१ ॥

स्त्रीणामप्येवमेतत् स्यात् स्तनोरुजघनाधिकम् ।
त्रीणि चत्वारि चत्वारि त्रीणि चत्वार्यथापिच ॥ ५२ ॥

एकादशैकादश वा दश(धाःवा) विंशति(त्रःस्त्र)यम् ।
विंशतिस्त्रीणि च स्त्रीणां मानमेतत् प्रकीर्तितम् ॥ ५३ ॥

कनिष्ठं मानमेतत् स्यान्मध्यं सत्र्यंशमष्टकम् ।
(पःक)लानाष्टमकं सार्धमुत्तमं परिकीर्तितम् ॥ ५४ ॥

उरसश्च भवेत् तासां विस्तारोऽष्टादशाङ्गुलः ।
कर्तव्यः कटिविस्तारो विंश(ति) चतुरुताः(?) ॥ ५५ ॥
एतत् प्रमाणमुद्दिष्टं प्रतिमानां समासतः ।

प्रमाणमेतत् सक(लाशराणा-
मर्धास्तु?) निर्दिष्टमनुक्रमेण ।
कार्यं सदा शिल्पिभि(रंशुमर्तै?)—
यथोचितद्रव्यसमुद्भवासु ॥ ५६ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
प्रतिमालक्षणं नाम (पञ्चषट्)सप्ततितमोऽध्यायः ॥

—:०:—

अथ देवादिरूपप्रहरणसंयोगलक्षणं नाम
सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:०:—

त्रिदशानामथाकारान् ब्रूमः प्रहरणानि च ।
दैत्यानामथ यक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ १ ॥
विद्याधरपिशाचानां + + + यथायथम् ।
ब्रह्मानलार्चिःप्रतिमः कर्तव्यः सुमहाद्युतिः ॥ २ ॥

१. 'तिश्चतुरन्विता' इति स्यात् । २. 'लामराणामर्चास्तु' इति स्यात् । ३. 'रथ-
मर्तै' इति स्यात् ।

स्थूलाङ्गः श्वेतपुष्पश्च श्वेतवेष्टनवेष्टितः ।

कृष्णाजिनोत्तरीयश्च श्वेतवासाश्चतुर्मुखः ॥ ३ ॥

दण्डः कमण्डलुश्चास्य कर्तव्यो वामहस्तयोः ।

अक्षसूत्रधरस्त(द्वा?द्वद्) मौञ्ज्या मेखलया वृतः ॥ ४ ॥

का(र्या?र्यो) वर्धयमानस्तु जगद् दक्षिणपाणिना ।

एवं कृते तु लोके(शे) क्षेमं भवति सर्वतः ॥ ५ ॥

ब्राह्मणा(र्थ?)वर्धन्ते सर्वकामैर्न संशयः ।

यदा विरूपा (दीनां वा कुरसोदरी ॥ ६ ॥

ब्राह्मणैर्वा(?) भवेद् वर्णा(?) सा नेष्टा भयदायिनी ।

निहन्ति कारकं रौद्रा दीनरूपा च शिल्पिनम् ॥ ७ ॥

कृशा व्या(धि?धिं) विनाशं च कुर्यात् कारयितुः सदा ।

कृशोदरी तु दुर्भिक्षं विरूपा चानपत्यताम् ॥ ८ ॥

एतान् दोषान् परित्यज्य कर्तव्या सा सुशोभना ।

ब्रह्मणो(वा?र्चा) विधानज्ञैः प्रथ(मो?मे) यौवने स्थिता ॥ ९ ॥

चन्द्राङ्कितजटः श्रीमान् नीलकण्ठः सुसंय(ते?तः) ।

विचित्रहुकुटः शम्भुर्निशाकरसमप्रभः ॥ १० ॥

दोभ्यां द्वाभ्यां चतुर्भिर्वा (वधा?) युक्तो वा दोर्भिर्गृष्टभिः ।

प(टि?ट्टि)शव्यग्रहस्तश्च पन्नगाजिनसंयुतः ॥ ११ ॥

सर्वलक्षणसम्पूर्णो नेत्रत्रितयभूषणः ।

एवंविधगुणैर्युक्तो यत्र लोकेश्वरो हरः ॥ १२ ॥

परा तत्र भवेद् वृद्धिर्देशस्य च नृपस्य च ।

यदारण्ये (समाने?) वा विधीयेत महेश्वरः ॥ १३ ॥

एवंरूपस्तदा कार्यः कारकस्य शुभावहः ।

अष्टादशशु(लो?जो) दोष्णां विंशत्या वा समन्वितः ॥ १४ ॥

१. 'दीना वा कृशा रौद्रा कृशोदरी । ब्रह्मणोऽर्चा' इति स्यात् । २. 'स्मशाने'

शतबाहुः कदाचिद्वा सहस्रभुज एव च ।
 रौद्ररूपो गणवृतः सिंहचर्मोत्तरीयकः ॥ १५ ॥
 तीक्ष्णदंष्ट्राग्रदशनः शिरोमालाविभूषितः ।
 चन्द्राङ्कितशिराः श्रीमान् पीनोरस्कोग्रदर्शनः ॥ १६ ॥
 (भद्रमू?) कर्तव्यः श्मशानस्थो महेश्वरः ।
 द्विभुजो राजधान्यां तु पत्तने स्याच्चतुर्भुजः ॥ १७ ॥
 कर्तव्यो विंशतिभुजः श्मशानारण्यमध्यगः ।
 एकोऽपि भगवान् भद्रः स्थानभेदविकल्पितः ॥ १८ ॥
 रौद्रसौम्यस्वभावश्च क्रियमाणो भवेद् बुधैः ।
 (उद्यद्यथा भावद्भागभगवान्) सौम्यदर्शनः ॥ १९ ॥
 स एव तीक्ष्णतामेति मध्यन्दिनगतः पुनः ।
 तथारण्यस्थितो नित्यं रौद्रो भवति शङ्करः ॥ २० ॥
 (सं येद सौम्यावति स्थाने सौम्यो व्यवस्थितः?) ।
 स्थानान्येतानि सर्वाणि ज्ञात्वा किम्पुरुषादिभिः ॥ २१ ॥
 प्रमथैः सहितः कार्यः शङ्करो लोकशङ्करः ।
 एतद् यथावत् कथितं संस्थानं त्रिपुरद्रुहः ॥ २२ ॥
 कार्तिकेयस्य संस्थानमिदानीमभिधीयते ।
 तरुणार्कनिभो रक्तवासाः पावकसप्रभः ॥ २३ ॥
 ईषद्दालाकृतिः कान्तो मङ्गल्यः प्रियदर्शनः ।
 प्रसन्नवदनः श्रीमानोजस्तेजोन्वितः शुभः ॥ २४ ॥
 (विशेषान्मुटुकैश्चित्रि?) मुक्तामणि(वि)भूषितः ।
 षण्मुखो वैकवक्त्रो वा शक्तिं रोचिष्मतीं दधत् ॥ २५ ॥
 नगरे द्वादशभुजः खेटके षड्भुजो भवेत् ।
 ग्रामे भुजद्वयोपेतः कर्तव्यः शुभमिच्छता ॥ २६ ॥

१. 'भद्रमूर्तिस्तु' इति स्यात् २. 'उद्यन् यथा भवेद् भानुर्भगवान्' इति स्यात् ।

३. 'स एव सौम्यो भवति स्थाने सौम्ये व्यवस्थितः' इति स्यात् । ४. 'विशेषान्मुकुटे-
 भित्रैः' इति स्यात् ।

शक्तिः शरस्तथा खड्गो मुसृण्ठी मुद्रोऽपि च ।
हस्तेषु दक्षिणेष्वेतान्यायुधान्यस्य दर्शयेत् ॥ २७ ॥
एकः प्रसारितश्चान्यः षष्ठो हस्तः प्रकीर्तितः ।
(चतुः?) पताका घण्टा च खेटः कुक्कुट(क)स्तथा ॥ २८ ॥
वामहस्तेषु षष्ठस्तु तत्र (शौजर्जन?) करः ।
एवमायुधसम्पन्नः संग्रामस्थो विधीयते ॥ २९ ॥
(अव्यया) तु विधातव्यः क्रीडालीलान्वितश्च सः ।
छागकुक्कुटसंयुक्तः शिखियुक्तो मनोरमः ॥ ३० ॥
नगरेषु सदा कार्यः स्कन्दः परजयैषिभिः ।
खेटके तु विधातव्यः षण्मुखो ज्वलनप्रभः ॥ ३१ ॥
तथा तीक्ष्णायुधोपेतः स्रग्दामभिरलङ्कृतः ।
ग्रामेऽपि द्विभुजः कार्यः कान्तिद्युतिसमन्वितः ॥ ३२ ॥
(दक्षिणा च भवेद् भक्तिर्नाम हस्ते तु कुक्कुटः?) ।
विचित्रपक्षः (स?सु)महान् कर्तव्योऽतिमनोहरः ॥ ३३ ॥
एवं पुरे खेटके च ग्रामे (वाभिलं?) शुभम् ।
कार्तिकेयं + + कुर्यादाचार्यः शास्त्रकोविदः ॥ ३४ ॥
अविरुद्धेषु कार्येषु खेटे (या?ग्रा)मे पुरोत्तमे ।
कार्तिकेयस्य संस्थानमेतद् यत्नेन कारयेत् ॥ ३५ ॥
(बालस्तु सुभुजः श्रीमान् स्थले केतु महाद्युतिः?) ।
बनमालाकुलोरस्को निशाकरसमप्रभः ॥ ३६ ॥
गृहीत(सारो?सीर)मुसलः कार्यो दिव्यमदोत्कटः ।
चतुर्भुजः सौम्यवक्रो नीलाम्बरसमावृतः ॥ ३७ ॥
(कु?मु)कुटालङ्कृतशिरोरोहो रागविभूषितः ।
रेवतीसहितः कार्यो (बन?बल)देवः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥

१. 'धनुः' इति, २. 'सर्वधनः' इति, ३. 'अन्यदा' इति, ४. 'दक्षिणे च भवे-
भक्तिर्नामे हस्ते तु कुक्कुटः' इति, ५. 'बलस्तु सुभुजः श्रीमास्तालकेद्युर्महाद्युतिः' इति
स्यात् ।

विष्णुर्वैदूर्यसङ्काशः पीतवासाः श्रिया(कृःवृ)तः ।
 वराहो बाभनश्च स्यान्नरसिंहो भयानकः ॥ ३९ ॥
 कार्यो (वा?) दाशरथी रामो जामदग्न्यश्च वीर्यवान् ।
 द्विभुजोऽष्टभुजो वापि चतुर्बाहुररिन्दमः ॥ ४० ॥
 शङ्खचक्रगदापाणिरोजस्वी कान्तिसंयुतः ।
 नानारूपस्तु कर्तव्यो ज्ञात्वा कार्यान्तरं विभुः ॥ ४१ ॥
 इत्येष विष्णुः कथितः (सुरास्वरनमस्वरनमस्त्वतः?) ।
 त्रिदशेशः सहस्रा(क्षौ?क्षो) वज्रभृत् सुभुजो बली ॥ ४२ ॥
 किरीटी सगदः श्रीमाञ् श्वेताम्बरधरस्तथा ।
 श्रोणिमूत्रेण म(हा?हता) दिव्याभरणभूषितः ॥ ४३ ॥
 कार्यो राजश्रिया युक्तः पुरोहितसहायवान् ।
 वैवस्वतस्तु विज्ञेयः (कालेः केसं?) परायणः ॥ ४४ ॥
 तेजसा सूर्यसङ्काशो जाम्बूनदविभूषितः ।
 सम्पूर्णचन्द्रवदनः पीतवासा(स्तु?:शु)भक्षणः ॥ ४५ ॥
 विचित्रमुकुटः कार्यो वराङ्गदविभूषितः ।
 तेजसा सूर्यसङ्काशः कर्तव्यो बलवाञ्छुभः ॥ ४६ ॥
 धन्वन्तरिर्भरद्वाजः (प्रजानीयतयस्तथा ।
 दक्षार्थाः सदृशाः कार्या कार्यो रूपाणि + रपि?) ॥ ४७ ॥
 अर्चिष्मान् (क्ष?ज्व)लनः कार्यः(यत्कण्ठाश्व?)समीरणः ।
 सौम्यः कार्यस्तथा(विस्या?) + रुद्रशरीरिणः ॥ ४८ ॥
 रक्तवस्त्रधराः कृष्णा नानाभरणभूषिताः ।
 कर्तव्या राक्षसाः सर्वे बहुप्रहरणान्विताः ॥ ४९ ॥
 पूर्णचन्द्रमुखा शुभ्रा बिम्बोष्ठी चारुहासिनी ।
 श्वेतवस्त्रधरा कान्ता दिव्यालङ्कारभूषिता ॥ ५० ॥
 कटिदेशनिविष्टेन वामहस्तेन शोभना ।
 सपद्मेन (वान्तेन?) दक्षिणेन शुचिस्मिता ॥ ५१ ॥

कर्तव्या श्रीः प्रसन्नास्या प्रथमे यौवने स्थिता ।

गृहीतशूलपरिघ(पाहिका?)पट्टिसध्वजा ॥ ५२ ॥

बिभ्राणा खेटकोपेतलघुखड्गं च पाणिना ।

घण्टामेकां च सौवर्णीं दधती घोररूपिणी ॥ ५३ ॥

कौशिकी पीतकौशेयवसना सिंहवा(ह)ना ।

(सेचोष्टौ?) + विधातव्याः शुक्लाम्बरधराः + + ॥ ५४ ॥

शोभमानाश्च मुकुटैर्नानारत्नविभूषितैः ।

सदृशावश्विनौ कार्यौ लोकस्य शुभदायकौ ॥ ५५ ॥

शुक्लमाल्याम्बरधरौ जाम्बूनदविभूषितौ ।

(त्रिपञ्चदशपूतिरस्येदं भृङ्गवन्मेचकप्रभाम् ॥ ५६ ॥

वैदूर्यशकंसङ्काशा?) हरितश्मश्रवोऽपि च ।

रोहिता विकृता रक्तलोचना बहुरूपिणः ॥ ५७ ॥

नागैः शिरोरुहालीनैर्विरागाभरणाम्बराः ।

कार्याः पिशाचा भूताश्च परुषासत्यवादिनः ॥ ५८ ॥

(बहुप्रकारमन्दहा?) विरूपा विकृताननाः ।

घोररूपा विधातव्या ह्रस्वा नाना(सु?यु)धाश्च ते ॥ ५९ ॥

सुभीमविक्रमा भीमा(:) सङ्घा यज्ञोपवीतिनः ।

वर्मभिः शाटिकाचित्रैर्भूताः कार्याः सदा बुधैः ॥ ६० ॥

येऽपि नोक्ता विधातव्यास्तेऽपि कार्यानुरूपतः ।

यस्य यस्य च यल्लिङ्गमसुरस्य सुरस्य च ॥ ६१ ॥

यक्षराक्षसयोर्वापि ना(ना?ग)गन्धर्वयोरपि ।

तेन लिङ्गेन कार्यः स यथा सा(शु?धु) विजान(जा?ता) ॥ ६२ ॥

प्रायेण (वा?) वीर्यवन्तो हि दानवाः क्रूरकर्मिणः ।

किरीटिनश्च कर्तव्या विविधायुधपाणयः ॥ ६३ ॥

तेभ्योऽपीषत् कनीयांसो दैत्याः कार्या गुणैरपि ।

दैत्येभ्यः परिहीणास्तु यक्षाः कार्या मदोत्कटाः ॥ ६४ ॥

हीनास्तेभ्योऽपि गन्धर्वा गन्धर्वेभ्योऽपि पन्नगाः ।
 नागेभ्यो राक्षसा हीनाः क्रूर(विक्रिमतसूषिणः?) ॥ ६५ ॥
 विद्याधराश्च यक्षेभ्यो हीनदेह(त'ध)राः स्मृताः ।
 चित्रमाल्याम्बरधराश्चित्रचर्मासिपाणयः ॥ ६६ ॥
 नानावेषधरा घोरा भूतसङ्घा भयानकाः ।
 पिशाचेभ्योऽधिकाः स्थूलास्तेजसा परुषास्तथा ॥ ६७ ॥
 अन्यूनाधिकरूपांश्च कुर्वीत प्रायशः शुभान् ।
 *(दिव्यैरासणाभरणैश्च युक्ताः
 कृतीथविदधीत यथोदितांस्तान्?) ॥ ६८ ॥

इति महाराज!धिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 देवादिरूपग्रहरणसंयोगलक्षणाध्यायो नाम (षट्सप्त)सप्ततितमः ॥

—:0:—

अथ दोषगुणनिरूपणं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

—:0:—

अथ वज्र्यानि रूपाणि ब्रूमहेऽर्चादिकर्मसु ।
 यथोक्तं शास्त्रतत्त्वज्ञैर्गोब्राह्मणहितार्थिभिः ॥ १ ॥
 अशास्त्रज्ञेन घटि(ताःतं) शिल्पिना दोषसंयुतम् ।
 अपि माधुर्यसम्पन्नं (न) ग्राह्यं शास्त्रवेदिभिः ॥ २ ॥
 अश्लिष्टस(न्धेःन्धि) विभ्रान्तां वक्रां चावनतां तथा ।
 अस्थितामुन्नतां चैव काकजङ्घां तथैव च ॥ ३ ॥
 प्रत्यङ्गहीनां विकटां मध्ये ग्रन्थिनतां तथा ।
 ईदृशीं देवतां प्रा(ज्ञैर्हिज्ञो हि)तार्थं नैव कारयेत् ॥ ४ ॥
 अश्लिष्टसन्ध्या मरणं भ्रान्तया स्थानविभ्रमम् ।
 वक्रया कलहं विद्यान्नतया (मिवसः?) क्षयम् ॥ ५ ॥

७ इदमशुद्ध वसन्ततिलकश्लोकस्यार्थम्, अर्धान्तरं तु भ्रष्टम् ।

१. 'वयसः' इति स्यात् ।

नित्यमस्थितया पुंसामर्थस्य क्षयमादिशेत् ।

भयमुन्नतया विद्याद्धृद्रोगं च न संशयः ॥ ६ ॥

देशान्तरेषु गमनं सततं का(रु?क)जङ्घया ।

प्रत्यङ्गहीनया नित्यं भर्तुः स्यादनपत्यता ॥ ७ ॥

विकटाकारया ज्ञेयं भयं दारुणम(र्ध?र्च)या ।

अधोमुख्या शिरोरोगं (तथानयापि च?) ॥ ८ ॥

एतैरुपेता दोषैर्या वर्जयेत् तां प्रयत्नतः ।

अन्यैरपि युतां दोषैरर्चा ब्रूमोऽथ सम्प्रति ॥ ९ ॥

(उद्धद्वपिण्डिका सासिसासि?) स्वामिनो दुःखमावहेत् ।

(कुक्षिष्टिप्राय?) दुर्भिक्षं रोगा(न्) कुब्जार्चिता नृणाम् ॥ १० ॥

पार्श्वहीना तु भवति राज्यस्याशुभदर्शनी ।

(शालायासनया स्थानं स्त्रीश्र?) प्रतिमया भवेत् ॥ ११ ॥

आसनालयहीनायां बन्धनं स्थानविच्यु(ते?तिः) ।

नानाकाष्ठसमायुक्ता या चैवायसपिण्डिता ॥ १२ ॥

सन्धिभिः (प्रविसहिर्या?) सानर्थमयदा भवेत् ।

(सम्बन्धाकृष्ट?)लोहेन त्रपुणा वा कदाचन ॥ १३ ॥

दारुणा च तथैवोक्ता प्रतिमा(यास्तु?शास्त्र)वेदिभिः ।

सन्धयश्चापि कर्तव्याः सुश्लिष्टाः पुष्टिमिच्छता ॥ १४ ॥

अर्चनाम धराधेन(?) शास्त्रदृष्टविधानतः ।

बध्नीयात् ताम्रलोहेन सुवर्णरजतेन वा ॥ १५ ॥

(कृतेन केणुना चान्यथा स्तुंसामबद्धावरुजावहा?) ।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्थपतिः शास्त्रकोविदः ॥ १६ ॥

कुर्यादर्चा यथान्यायं सुविभक्तां प्रमाणतः ।

(न क्षतां नोपदिगां च न च विवर्जिता ॥ १७ ॥

न प्रत्यङ्गैः प्रहीनं च घाणपादैर्नखादिभिः?) ।

सुविभक्तां यथोत्सेधां प्रसन्नवदनां शुभाम् ॥ १८ ॥

निगूढस(न्धे?न्धि)करणां समायतिमृजुस्थिताम् ।
(^१ईदृशां राणायेदर्घा?) प्रमाणगुणसंयुताम् ॥ १९ ॥

समोपचितमांसाङ्गाः पुरुषाः स्युः समासतः ।
प्रमाणलक्षणयुता वस्त्ररत्नविभूषितः (?) ॥ २० ॥

(क्षान्त?) गुणान् परिकलय्य च दोषजात-
मर्चा यथोदितगुणां (विदधीता मत्न्या?) ।

शिष्यत्वमेत्य विविध(त्स?)मुपासतेऽन्ये
तं शिल्पिनः कृत(ध्ये?धि)यश्च मुहुः स्तुवन्ति ॥ २१ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

दोषगुणाध्यायो ना(म सप्त?माष्ट)सप्ततितमः ॥

—————:०:—————

अथ ऋज्वागतादिस्थानलक्षणं
नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

—————:०:—————

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि (नेवि?)स्थानविधिक्रमम् ।
(संपात्यारुघाणां?) हि जायन्ते नव वृत्तयः ॥ १ ॥

(पूर्वभृष्कागतं तेषां ततोऽर्ध्वं क्षरगतं भवेत्?) ।
ततः (शैचीक्षतं?) विद्यादध्यर्धाक्षमनन्तरम् ॥ २ ॥

चत्वार्यूर्ध्वागतादीनि परावृत्तानि तानि च ।
ऋज्वागतपरावृत्ता(त्ता?त्तं) ततोऽर्ध्वज्वागतादिकम् ॥ ३ ॥

(शैचीकृत?) परावृत्तं ततोऽध्यर्धाक्षपूर्वकम् ।
पा(र्ध्व?र्धा)गतं च नवमं स्थानं भित्तिकविग्रहम् ॥ ४ ॥

ऋज्वर्धऋजुनोर्मध्ये चत्वारि व्यन्तराणि च ।
अर्धजुसाचीकृतयोर्मध्ये च व्यन्तरत्रयम् ॥ ५ ॥

१. 'ईदृशां कारयेदर्घा' इति स्यात् । २. 'ज्ञात्वा' इति स्यात् । ३. 'विदधीत भूत्यै' इति स्यात् । ४. 'पूर्वभृष्कागतं तेषां ततोऽर्ध्वज्वागतं भवेत्' इति स्यात् । ५. 'साचीकृतम्' इति स्यात् । ६. 'साचीकृत' इति स्यात् ।

(द्व्यर्धाज्वा?)साचीकृतयोर्मध्ये द्वे व्यन्तरे परे ।

(परोद्व्यर्धक्षपार्श्व?) व्यन्तरं चैकमन्तरे ॥ ६ ॥

ऋज्वागतपरावृत्तपार्श्व(भ्यं?भ्या)गतयोर्दश ।

अन्तरे व्यन्तराणि स्युः स्थानकान्यपराण्यपि ॥ ७ ॥

ऋज्वागताद्यं मध्यं च विग्रहं (वेन्वा + + + ।

ऋज्वागतां + + + + शेषभाव्यन्तरा व्यया?) ॥ ८ ॥

अर्धापाङ्गमर्धपुटमर्धार्धपुटमेव च ।

(अर्धज्वासेऽपि कथितं सिलीद्व्यन्तरं व्ययः?) ॥ ९ ॥

अर्धसाचीकृतं चैव स्वस्तिकं च ततः परम् ।

(साचीकृतोशे?) द्वावुक्तावंशौ द्व्यर्धक्षसंज्ञिते ॥ १० ॥

द्व्यर्धाक्षांशपरावृत्तं द्व्यर्धाक्षांसं च ते उभे(?) ।

(द्विज्वाक्षे?)व्यन्तरे प्रोक्ते चित्रशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥

ऋज्वागतादध्यर्धाक्षं(?) यथा प्रोक्तानि संज्ञया ।

व्यन्तराणि तथैव स्युः परावृत्ते यथाक्रमम् ॥ १२ ॥

वैचित्र्यं भित्तिके नास्तीत्येव चि(त्र्यं?त्र)(विचित्र्यं बि?)विदो विदुः ।

एकान्नत्रिंशदेवं च स्थानानि व्यस्तवर्त्मना ॥ १३ ॥

वैतस्त्यमन्तरं स्थाप्यं पादयोः सुप्रतिष्ठितम् ।

हिक्कार्या पदयोश्चान्तभूमौ लम्बे प्रतिष्ठिते ॥ १४ ॥

प्रोक्तमृज्वागतं पूर्वं प्रमाणेन निरूपितम् ।

ततोऽर्धज्वागतस्येदं प्रमाणमुपलक्षयेत् ॥ १५ ॥

ब्रह्मसूत्रं तु कर्तव्यं मुखस्यैव तु मध्य(गः?गम्) ।

नेत्ररेखासमत्वेन तिर्यक्तालौ मवेन्मुखम् (?) ॥ १६ ॥

अपाङ्गस्याक्षिकूटस्य कर्णस्य च मवे(त्) क्षयः ।

अन्यत्र कर्णमानं स्यादर्धाङ्गुलविशेषितम् ॥ १७ ॥

हृक्सूत्रे ब्रह्मलेखाया अपरे स्यात् (कलाहवम् ।

यच्छ्रमात्राभुपास्तोक्षि क्षीयतान्योपवस्तथा?) ॥ १८ ॥

त्रियवाः श्वेतभागः स्यात् तारा च प्रोक्तमानतः ।
विस्तारः श्वेतभागश्च करवीरोऽपि चोक्तवत् ॥ १९ ॥

परभाः(?) करवीरं स्याद् ब्रह्मसूत्रात् तथाङ्गुलम् ।
पूर्वभाकरवीरात्तु(?) सङ्गमश्चाङ्गुलं भवेत् ॥ २० ॥

कर्णनेत्रान्तरं प्रोक्तं कला(भ्यःध्य)र्धाङ्गुलाधि(कम्?का) ।
(पूर्वकू सर्वदिस्याविक्षायत् कथयेत् पराम्?) ॥ २१ ॥

पुटोऽङ्गुलं ब्रह्मसूत्रात् कपोलाद् द्व्यङ्गुलं भवेत् ।
पूर्वं परत्र मात्रार्धं पुटः स्याच्छेषमुक्तवत् ॥ २२ ॥

(परभागान्तराष्ट?) स्यादङ्गुलं द्वियवाधिकम् ।
अधरः परभागे तु यवषट्कं विधीयते ॥ २३ ॥

अधरान्ता कला(?) गण्डो ब्रह्मसूत्रात् पुनर्हनुः ।
परभागेऽङ्गुलं सार्धं मुखलेखाङ्गुलं ततः ॥ २४ ॥

(आरुढ वा यत्कार्यं मुख्यां पर्यतलेखया ।
परिवर्तसुखादेशा?) ज्ञात्वा कार्या प्रयत्नतः ॥ २५ ॥

(अपादमध्यं हि ज्ञातः?) सूत्रेऽन्यस्मिन् प्रवर्तिते ।
(खरे लुप्येत तुर्यांशः पूर्वत्वेवाविवर्धते?) ॥ २६ ॥

कक्षाधरः परे भागे सूत्रतः पञ्चगोलकः ।
पूर्वभागे(तृतं?) विद्यात् (पद्मो?षड्गो)लपरिमाणतः ॥ २७ ॥

मध्ये सूत्रात् (पर?) पार्श्वलेखा + + यावच्चतुष्कलम् ।
उरसो मध्य(मो?मात्) सूत्रात् कक्षा स्यान्नव (माभवा?) ॥

(क्षितलेखात्तस्मात्वं विधाकलत्रयम् ।
स्तनाः पार्श्वकलां कुर्यात् स्तनं वा पतमण्डलम्?) ॥ २९ ॥

परतो हस्तकः कार्यः कर्मयोगानुसारतः ।
(पार्श्वपर्यन्त सर्वा भागे षण्डलालम्?) ॥ ३० ॥

तथैव पूर्वहस्तस्य यथायोगं प्रकल्पना ।
(अभ्ययस्वाग + दीनां?) क्रिया स्याद् दक्षिणे करे ॥ ३१ ॥

मध्ये षडङ्गुला रेखा बाह्यसूत्रात् परे भवेत् ।
 पूर्वस्मिन् बाह्यलेखा तु मध्ये (सास्या)दष्टमात्रका ॥ ३२ ॥
 नाभिदेशे परे भागे बाह्यासौ सप्तमात्रका ।
 कलामात्रं भवेन्नाभिस्तस्याः पूर्वं नवाङ्गुला ॥ ३३ ॥
 परे भागे कटिः सप्त मात्रा दश च पूर्वतः ।
 ऊरुलेखा परे भागे मुखमानस्य मध्यतः ॥ ३४ ॥
 प्राग्भागस्य बहिर्लेखा + + + परजानुतः ।
 (परभागेन्द्रवास्तेश्च सूत्रस्यात् तद्वदङ्गुले?) ॥ ३५ ॥
 परस्य नलकस्य स्याल्लेखा प्रागङ्गुलान्तरे ।
 परभागस्य षष्ठांशाः (सूत्रा प्रागङ्गुलद्वयोः?) ॥ ३६ ॥
 नलेन परपादस्य भूमिलेखा विधीयते ।
 ततोऽङ्गुष्ठोऽङ्गुलेनाधः पार्ष्णिरूर्ध्वं तदर्धतः ॥ ३७ ॥
 अङ्गुष्ठाग्रं ब्रह्मसूत्रात् परस्मिन् पञ्चमात्रकम् ।
 तलं च परभागज्ञैस्तिर्यक् पञ्चाङ्गुलं स्मृतम् ॥ ३८ ॥
 (सत्त्वितस्तलघाण्येः?) स्यादङ्गुष्ठाग्रं कलात्रये ।
 अङ्गुल्योऽङ्गुष्ठतः सर्वा (व्रजत्परयं?) क्रमात् ॥ ३९ ॥
 (सन्निवेशसवासाद द्विरङ्गुल्यतो?) नवाङ्गुलः ।
 यथोक्तं जानु पूर्वं स्यात् सूत्रतश्चतुरङ्गुले ॥ ४० ॥
 नलकस्तद्वदेवास्य नलकौ त्र्यङ्गुलान्तरौ ।
 (सूत्रादक्षः कलास्तिस्राङ्गुष्ठस्त्वङ्गुलत्रयम्?) ॥ ४१ ॥
 भूमिसूत्राद् गतोऽधस्तात् पूर्वाङ्गुष्ठो भवेत् कला ।
 अङ्गुष्ठोऽङ्गुल्यश्चेति सर्वमन्यद् यथोदितम् ॥ ४२ ॥
 (दृश्यपार्श्वतलप्रविपारंहौ?) मध्यमे तलम् ।
 एवमुक्तप्रमाणेन ज्ञात्वा युक्त्या समादिशेत् ॥ ४३ ॥
 अर्धज्वागतमित्येतत् प्रवरं स्थानमीरितम् ।
 लक्ष्म (सा वो?साची)कृतस्याथ स्थानकस्याभिधीयते ॥ ४४ ॥

विन्यस्येद् ब्रह्मसूत्रं प्रा(क् स्या)नबोधस्य सिद्धये ।

ललाटं परभा(मं?गे) स्यात् केशलेखा तथा कला ॥ ४५ ॥

परभागभ्रुवो लेखा + + + ध्रुमुदाहृता ।

(परता + क्षिलेखायां कालिका द्वियतो ज्ञत?) ॥ ४६ ॥

ज्योतिषः स्यात् परे भागे तारा दृश्या यवोन्मिता ।

यवमात्रं तसौ ज्योतिस्तस्मात् तारा यवद्वयम् ॥ ४७ ॥

श्वेतं च करवीरं च ततः प्रागुक्तमानतः ।

(कनीलिका तु?) नासाया मूलं विद्याद् यवान्तरम् ॥ ४८ ॥

नासामू(ल?लं) प्रमाणेन ततो ज्ञेयं यवत्रये ।

ब्रह्मसूत्रात् पूर्वभागे (नगन्तो?)ध्वगोलकौ ॥ ४९ ॥

(आपाञ्जं स्तात्रेतो?) विद्याद् द्विगोलकमितेऽन्तरे ।

तस्माद् भागेन कर्णान्तः कर्णः स्याद् विस्तरेण तु ॥ ५० ॥

द्वियवोना कला चक्षुर्व्यावृत्त्या परिवर्धितः ।

पूर्वस्य करवीरेण सह श्वैत्यं यवत्रयम् ॥ ५१ ॥

द्वितीयश्वैत्यदृक् ताराप्रसृतिः प्रोक्तमानतः ।

कफोललेखा परतो (यवद्वा ता?) कला भवेत् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मसूत्रान्नासिकाग्रं परस्मिन् सप्तभिर्यवैः ।

नासापुटः पूर्वभागे स्याद् य(था?वा)धिकमङ्गुलम् ॥ ५३ ॥

पू(र्वो?र्वे) भागे यवं गोजी (स्त?त)त्रोपान्ते विधीयते ।

परभागोत्तरोष्ठः स्यात् प्रमाणेनार्धमात्रकः ॥ ५४ ॥

त्रियवश्चाधरोष्ठः स्याच्छ्लेषश्चापचयस्तयोः ।

पाल्या मध्ये भवेत् सूत्रं पाल्या(शु?स्तु) चिबुकं परे ॥ ५५ ॥

हनुपर्यन्तलेखा च सूत्रादर्धाङ्गुले भवेत् ।

हनोर्मध्यमतं सूत्रं परे स्यात् परिमण्डलम् ॥ ५६ ॥

सहैकसूत्रे परदृक् पर्यन्तेन परिस्फुटा ।

मुखपर्यन्तलेखार्धे(ह)नोरुपरि चाधरः ॥ ५७ ॥

कुर्याद्वेखाभिरेताभिः परभागं विचक्षणः ।

(सूत्राङ्गुलोर्ध्वमात्रायां तस्माद् ग्रीवा यथोदिता ॥ ५८ ॥

सूत्रसंयोगात् पूर्वस्मिन्नङ्गुले सयवेऽङ्गुलः(?) ।

हिकाध्यर्धाङ्गुलं सूत्रात् पूर्वं स्यात् सुप्रतिष्ठिता ॥ ५९ ॥

बाह्यलेखा हि (वःत)त्सूत्रात् परस्मिन्नङ्गुलाष्टके ।

(तालं यवोनग्रीवातो नग्रीवज्ञेयौसूनदूर्वकौ?) ॥ ६० ॥

हिकासूत्रात् समारभ्य वक्षोभागोऽग्रिकं(?) भवेत् ।

(तावन्मात्रे तरेवाहु?) तस्मात् प्रभृति निर्दिशेत् ॥ ६१ ॥

हिकासूत्रात् परे भागे स्तनश्चाङ्गुलपञ्चके ।

रेखान्तसूचकः कार्यो मण्डलं सार्धमङ्गुलम् ॥ ॥ ६२ ॥

तस्मादनन्तरं बाह्यभागमात्रं विनिर्दिशेत् ।

हिकासूत्रात् समारभ्य स्तनः (पूर्वषडङ्गुले?) ॥ ६३ ॥

स्तनात् षडङ्गुले (तिर्यगक्षो स्मा द्वौ?) द्विभागिकः ।

कक्षतो द्विकलेऽथस्ताद् बाह्यलेखा विधीयते ॥ ६४ ॥

आभ्यन्तरा बाह्यलेखा स्तनात् पञ्चाङ्गुले तःलेऽन्तरे ।

ब्रह्मसूत्राच्च भागेन मध्यभागे (परि?) विदुः ॥ ६५ ॥

(मध्याच्चकलयावहः परे?) तिर्यग् विभज्यते ।

मध्यप्रान्तः पूर्वभागे भवेत् सूत्राद् दशाङ्गुलः ॥ ६६ ॥

तिर्यङ् नाभिप्रदेशः स्यात् प (रतो)ब्रह्मसूत्रतः ।

यवैश्चतुर्भिरधिकमङ्गुलानां चतुष्टयम् ॥ ६७ ॥

पूर्वभागे विनिर्दिष्टः स एवैकादशाङ्गुलः ।

मध्येनैति परस्योरोः सू(त्रःत्रं) नाभ्यन्तराश्रितम् ॥ ६८ ॥

प्रयात्यपरजाच्चैतात्(?) पूर्वतः कलया च तत् ।

जान्वधोभाग(त)श्चार्धकलया त्रियवेन च ॥ ६९ ॥

जङ्गामध्येन लेखायाः प्रसक्तं नलकस्य तु ।

(पांते वैरवं?) परतश्चतुर्भिः सूत्रमिष्यते ॥ ७० ॥

अनेनैवानुसारेण बहिलेखा विधीयते ।
 ब्रह्मसूत्रात् परे भागे कटिरङ्गुलपञ्चके ॥ ७१ ॥
 (तामालमात्रा तु सा पूर्वे मेडाग्रं सूत्रसङ्गतम् ।
 सूत्रादरभागोरू मूलाग्रये?) ॥ ७२ ॥
 सूत्रादपरभागोरुमध्ये रेखा कलाद्वये ।
 सूत्रात् पूर्वोरूमूलं स्यात् पूर्वतः कलया तथा ॥ ७३ ॥
 कलाद्वयेन विज्ञेया रेखा पूर्वस्य जानुतः ।
 सार्धाङ्गुलयवं जानु तत्पार्श्वं चार्धमङ्गुलम् ॥ ७४ ॥
 सूत्रेण पर(पा)दस्य मध्यरेखा विभज्यते ।
 आदिमध्यान्तलेखायां सूत्रशौचमुदाहृता(?) ॥ ७५ ॥
 सूत्रात् प्राग्भागमलके(?) प्रान्तः पञ्चभिरङ्गुलैः ।
 अर्धाङ्गुलं क्षयः कार्यः परभागोरुजङ्घयोः ॥ ७६ ॥
 पराक्षिमध्यगं सूत्रं लम्बभूमिप्रतिष्ठितम् ।
 परपादतलान्तात् प्रागङ्गुलेन विधीयते ॥ ७७ ॥
 + सूत्रात् पूर्वपादस्य तलमष्टाङ्गुलं भवेत् ।
 अ(भ्यः)धस्तात् तलयोः सूक्ष्मा(?)स्याल्लेखाष्टादशाङ्गुलम्
 अङ्गुष्ठकाद्रकमात्(?) प्रदेशिन्यङ्गुलाधिका ।
 (परपादतलावस्तून् पूर्वा ह्यङ्गुष्ठमूलगम् ॥ ७९ ॥
 सूत्रं यथाति?) सा भूमिलेखेति परिकीर्तिता ।
 सूत्रादर्धाङ्गुलेनोर्ध्वं तस्मात् पार्ष्णि(?)परस्य च ॥ ८० ॥
 अङ्गुष्ठादङ्गुलीपातः पूर्वपादेऽनुसारतः ।
 उ(प)प्रदेशिनीमानात् कुर्यादत्र प्रदेशिनीम् ॥ ८१ ॥
 अपराश्चाङ्गुलीः सर्वाः क्रमेण क्षपयेत् ततः ।
 इति साचीकृतं स्थानमेतदुक्तं यथार्थतः ॥ ८२ ॥
 अध्यर्धाक्षमिदानीं च स्थानकं (सू प्रचक्षते?) ।
 ब्रह्मसूत्रमुखे कृत्वा मानमात्रं(?) विधीयते ॥ ८३ ॥

केशान्तलेखा सूत्रा(त्) स्या(न्मो?न्मात्रैका यवसंयुता ।
 पृथग् वक्षः पृथक् श्रोणिः वृत्तःबाहः सुसंस्कृतिः (?) ॥ ८४ ॥
 भद्राकारो भवेद् भद्रो वृत्तवक्त्रः स्वभावतः ।
 मालव्यस्य भवेन्मूर्धा प्रमाणेनाङ्गुलत्रयम् ॥ ८५ ॥
 (चतुर्मात्रललाटं च नाश वक्त्राशिरोधरा ।
 मात्रा द्वादश वक्षस्ये नाभिमेद्वान्तरोदरे?) ॥ ८६ ॥
 अष्टादशाङ्गुलौ चोरू जङ्घे अप्येवमेव हि ।
 चतुरङ्गुलका + + जानुनी चतुरङ्गुले ॥ ८७ ॥
 मालव्यस्यायमायामः (पण?षण्ण)वत्यङ्गुलो मतः ।
 विस्तारो वक्षसस्तस्य मात्राः षड्विंशतिः स्मृतः ॥ ८८ ॥
 बा(ह्यो?ह्यो) षोडशमात्रश्च प्रवा(ह्यो?ह्यो)रेवमेव सः ।
 (पाण्यौ द्वादशमात्रस्ये मालव्यस्त्वेह विस्तृतिः?) ॥ ८९ ॥
 पीनांसो दीर्घबाहुश्च पृथुवक्षाः कृशोदरः ।
 वृत्तोरुकटिजङ्घश्च मालवः पुरुषोत्तमः ॥ ९० ॥
 हंसस्य वक्रं पृथ(ग् ? थु)गण्डभागं
 कृशं शशस्यायतमास्यमाहुः ।
 विस्तारदैर्घ्याद् भवकस्य तुल्यं (?)
 सुखं सुवृत्तं त्विहच(?) भद्रवक्त्रे ॥ ९१ ॥
 (स्यान्मालावस्या लेपनं तु कान्तमयोज्यं ।
 देही तु रूपैश्च भवन्ति युक्तास्ते कर्मणि सर्वगुणान्वितास्ते?) ॥ ९२ ॥
 (स दुर्लभं स्यात् पुरुषः प्रमेय-
 मानोऽस्ति कीर्ण इति ह षष्टः ?) ॥ ९२^१/_२ ॥
 (मांसलेन शरीरेण ग्रीवासिरा अया + + ।
 मांसलायातशाखा च नारी वृत्तेति सा मता?) ॥ ९३ ॥

१. भद्रहंसादीनां पुरुषविशेषाणां लक्षणमध्यायान्तरेण वक्ष्यति । ततः क्रियांश्चिदंश
 ह प्रमादात् प्रक्षिप्त इति भाति, प्रक्रममङ्गात् ।

पृथुवक्त्रा कटीह्रस्वा ह्रस्वग्रीवा पृथुदरी ।
 पुंषत्काण्डकतुल्या(?) स्यात् सा नारी पौरुषी मता ॥ ९४ ॥
 अल्पकायशिरोग्रीवा लघुशाखा भवेच्च या ।
 कृशाल्पब्रह्मसत्त्वा च सा नारी बालकी स्मृता(?) ॥ ९५ ॥
 पुंस्पर्शात् पश्यता(?)या स्यात् कौमारे प्राप्तयौवना ।
 अन्या सा बालकी प्रोक्ता स्त्रीलक्षणविचक्षणैः ॥ ९६ ॥
 [श्रुवः सद्वियवामात्रा लेखा कृशयवाङ्गुलाः ।
 दक्तोयमन्तरे वर्त्म ताराय अर्धमालिखेत् ॥ ९७ ॥
 स्वैत्यं चतुर्यवं दृश्यशेषं सा तिरस्कृतम् ।
 कपोतरेखा परतो यववर्जितमङ्गुलम् ॥ ९८ ॥
 सूत्रापूर्वपटान्तः स्यादर्धाङ्गुलमितेन्तरे ।
 नासिकान्तोऽङ्गुलं सूत्रात् परे पूर्वतपाङ्गुलम् ॥ ९९ ॥
 मूले नासापुटः साद्रः सूत्रं गोज्याश्च मध्यगम्?] ।
 यवार्धमात्रा गोजी स्यादुत्तरोष्ठः परस्य यः ॥ १०० ॥
 स ब्रह्मसूत्रादारभ्य विज्ञेयो द्वियवोन्मितः ।
 परे त्वधस्तान्नासाया रेखा चार्धाङ्गुलैर्भवेत् ॥ १०१ ॥
 परभागेऽधरोष्ठस्य प्रमाणं + यवं मतम् ।
 हनुपर्यन्तलेखाया मध्ये सूत्रं प्रतिष्ठितम् ॥ १०२ ॥
 सूत्रात् प्राक् करवीरः स्याद् द्वियवोनाङ्गुलद्वयम् ।
 यवार्धं स च दृश्येत श्वैत्यं सार्धयवं ततः ॥ १०३ ॥
 + तारा त्रियवा ज्ञेया शेषमुक्तप्रमाणतः ।
 कर्णावर्तादधः कर्णमध्यभागेन संपितम्(?) ॥ १०४ ॥
 द्व्यङ्गुलः कर्णविस्तारः कर्णावर्ताच्चतुर्यवे ।
 शिरःपृष्ठस्य लेखा स्यादिति ज्ञात्वोक्तमाचरेत् ॥ १०५ ॥
 कर्णसूत्राद् बहिर्ग्रीवा विधातव्यैकमङ्गुलम् ।
 गलो ग्रीवा च हिक्का च सूत्राद् प्रागङ्गुलोत्तरे ॥ १०६ ॥

हिकामूत्राद् भवेदूर्ध्वमं(शःस)लेखा तथाङ्गुलम् ।
 ब्रह्मसूत्रात् परे भागे स्यादं(शोःसो)ऽङ्गुलसंमिते ॥ १०७ ॥
 (वक्षोऽङ्गुलं ब्रह्मसूत्रां ++ नस्ति कालान्तरे (?) ।
 भागमात्रे भवेत् कक्षामूत्रात् पूर्वः स्तनस्य च ॥ १०८ ॥
 कक्षातस्त्रिकलं यावत् पार्श्वलेखा विधीयते ।
 (दूराग्रभुजस्तस्यादग्रे कर्मानुसारतः ॥ १०९ ॥
 प्रासादमध्यः सूत्रः स्यादेकादशभिरङ्गुलैः ।
 परभागस्य मध्यस्त?) सूत्रात् स्यादङ्गुलैस्त्रिभिः ॥ ११० ॥
 अङ्गुलेन परे भागे सूत्रतो नाभिरिष्यते ।
 ना(भिःभे)रुदरलेखा तु विज्ञातव्याङ्गुलत्रये ॥ १११ ॥
 श्रोणी कर्णो भवेन्नाभे(?) मुखमर्धाङ्गुलान्वितम् ।
 ब्रह्मसूत्रात् कटिः पूर्वं त्रिभागा व्यङ्गुला परे ॥ ११२ ॥
 (ब्रह्मसूत्राश्रित मेढ्रस्तले चा परतो भवेत् ।
 पूर्वोक्तः मध्यमेखास्यात् सूत्रात् प्रत्यङ्गुल्यन्तरे? ॥ ११३ ॥
 तस्यैव मूलरेखा च सूत्रात् प्राग् द्व्यङ्गुलेऽन्तरे ।
 मूललेखा परस्योरोः सूत्रात् स्याद् द्विकलेऽन्तरे ॥ ११४ ॥
 पर्यन्तजानुनो भागे पर्यन्तोपरा(?) जानुतः ।
 परभागिका जातर्द्धे(?) सूत्रस्य सम्यक् प्रतिष्ठितम् ॥ ११५ ॥
 जानुमध्ये गता लेखा बाह्यलेखाश्रिता भवेत् ।
 अर्धमार्गमात्रं जानु स्यादधोलेखा तु तस्य या ॥ ११६ ॥
 अर्धाङ्गुलेन सा सूत्रात् पूर्वतः प्रविधीयते ।
 सूत्रात् परे (पराङ्गुष्ठं मूल?)पादोनमङ्गुलम् ॥ ११७ ॥
 मूलादङ्गुष्ठकस्याग्रं सार्धैः स्यादङ्गुलैस्त्रिभिः ।
 सूत्रात् परं स्याज्जङ्घाया लेखाङ्गुलचतुष्टये ॥ ११८ ॥
 तस्यास्तु पूर्वजङ्घाया लेखा स्यादङ्गुलद्वये ।
 पूर्वजानु कलापानं शेषं कुर्याद् यथोदितम् ॥ ११९ ॥

परपादतले (स्तम्भं?) यत् तिर्यक् सुप्रतिष्ठितम् ।
(तत्प्राक्प्रदेलस्योर्ध्व?) सार्धया कलया भवेत् ॥ १२० ॥

(प्राग्भङ्गोऽङ्गुष्ठमूलेच्छस्तत्रास्वीया?) कनिष्ठिका ।
(कलामात्रं निजाङ्गुष्ठादंधासागं?) प्रपद्यते ॥ १२१ ॥
(यत् पराङ्गुलम्बसूत्रं प्रतिपद्यते?)

यत् पराङ्गुष्ठमूलोत्थं लम्बसूत्रं प्रपद्यते ।
(मध्येन पूर्वभागाभिः सबन्धाङ्गुष्ठकस्य तत् ?) ॥ १२२ ॥
पूर्वपार्ष्णिगतलादूर्ध्वं विदध्यादङ्गुलत्रये ।
पार्ष्णेः परस्य पादस्य पूर्वपादं तिरस्कृतम् ॥ १२३ ॥

अध्यर्धाक्षं यथाशास्त्रमेवं स्थानकमालिखत् ।
अथ पार्श्वागतं ना(स?म)स्था(न?नं)पञ्चममुच्यते ॥ १२४ ॥

व्यावर्तितमुखस्यान्ते ब्रह्मसूत्रं विधीयते ।
ललाटबाह्यलेखां च सूत्रस्पृष्टां प्रदर्शयेत् ॥ १२५ ॥

सूत्रात् तु नासिकावंशः (संवृद्धय द्वाक्षपानतः?) ।
अपाङ्गो द्विकले सूत्रात् कर्णो (यंशात्?) कलाद्वये ॥ १२६ ॥

कर्णो द्व्यङ्गुलविस्तारः शिरःपृष्ठं कला ततः(?) ।
अस्य मध्यगतं सूत्रमास्यार्धं स्थापयेत् ततः ॥ १२७ ॥

अङ्गु(लो?ले) चिबुकं सूत्राद्धनुमध्यं चतुर्यवे ।
सार्धाङ्गुले ततः कण्ठवर्तिग्रीवाङ्गुले नतः ॥ १२८ ॥

अङ्गुलेन ततो हिक्का चतुर्भिर्ब्रह्मसूत्रतः ।
मूर्ध्ना श्रवणपालयन्तेनैति सूत्रं तदुच्यते ॥ १२९ ॥

ग्रीवायाङ्गुल्यमध्येन(?) मध्यसूत्रं तदुच्यते ।
भागे हिकामध्यसूत्रादण्डमूलं कलाद्वये ॥ १३० ॥

मात्राष्टके च पृष्ठं तो(?) हल्लेखाप्येवमेव हि ।
(त?स्त)नस्य मण्डलं तस्मादङ्गुलेन विधीयते ॥ १३१ ॥

कक्षा च पूर्वभागे स्यात् सूत्रात् पञ्चभिरङ्गुलैः ।
मात्रात्रयेणापरस्मिन् भागे कक्षा विधीयते ॥ १३२ ॥

उभयोरन्तयोः प्राहुर्मध्यमष्टाङ्गुलं बुधाः ।

अङ्गुलैर्दशभिर्मध्यं पर्यन्तो मध्यसूत्र(तं?तः) ॥ १३३ ॥

मध्यपृष्ठं चतुर्भिः स्यान्नाभिपृष्ठं च पञ्चभिः ।

नाभ्यन्तरेखा नवभिः कटिपृष्ठं कलात्रये ॥ १३४ ॥

उदरप्रान्तलेखा च ज्ञेया दशभिरङ्गुलैः ।

(मां मा भ्रात्रयेणाभिरष्टाभिः) सूत्रात् स्फिजो मध्यं प्रचक्षते ॥

वस्तिशीर्षे च नवभिः स्फिगन्तो(ऽष्ट)भिरङ्गुलैः ।

अष्टभिर्मैद्वमूलं स्यादूरुमध्यं च सप्तभिः ॥ १३६ ॥

अङ्गुलैः पञ्चभिर्मूलमूरोः (पार्श्वान्मुच्यते?) ।

चतुर्भिरङ्गुलैः सार्धैर्धैः) क(र)मध्यं च पृष्ठतः ॥ १३७ ॥

अग्रतः पञ्चभिः सार्धैस्तदेव प्राहुरङ्गुलैः ।

करमध्याङ्गु(लै?ले)र्मध्यं सूत्रमध्ये विधीयते ॥ १३८ ॥

जान्वर्धे मध्यसूत्रं स्याद् भागो लेखा च जानुतः ।

भवेदुभयतः(स्त?सू)त्रं जङ्घा मध्ये च कीर्तिता ॥ १३९ ॥

जङ्घा षडङ्गुला सूत्रं मध्ये स्यान्नलकस्य च ।

उभयोः पार्श्वयोः कार्यो नलकश्चाङ्गुलद्वयम् ॥ १४० ॥

चतुर्भिरङ्गुलैः पार्ष्णि(म?र्म)ध्यसूत्राद् विधीयते ।

यथोक्तमानेनाङ्गुल्यस्तथा पादतलं भवेत् ॥ १४१ ॥

पार्श्वागतमिदं प्रोक्तं स्था(न?नं) भित्तिकसंज्ञकम् ।

पार्श्वागतस्थानम् ॥

अतः परं परावृत्तस्थानकान्यभिदध्महे ॥ १४२ ॥

ऋ(जा?ज्वा)गतपरावृत्तं तत्रादावभिधीयते ।

तत्राङ्गुलद्वयं कर्णौ विधातव्यौ पृथक् पृथक् ॥ १४३ ॥

पार्ष्णिपर्यन्तयोर्मध्यं तथा सप्ताङ्गुलं भवेत् ।

अङ्गुलत्रितयं सार्धं पार्ष्णी कार्यौ पृथक् पृथक् ॥ १४४ ॥

कनिष्ठानामिकामध्या दर्शयेच्चतुरङ्गु(ली?लम्) ।
 अङ्गुष्ठानामिकामध्याकनिष्ठा(वल्लिखेन्तरे?) ॥ १४५ ॥
 परावृत्तमिदं शेषमृज्वागतवदादिशेत् ।
 अध्यर्धाक्षादिका(द्रू?) यानि स्थानानि तेषु यत् ॥ १४६ ॥
 भवेद् यस्य परावृत्तं तद्वशात् तस्य तद् भवेत् ।
 ++ यस्य हि यद् दृश्यं स्थानकस्याङ्गमीरितम् ॥ १४७ ॥
 तददृश्यं परावृत्ते तस्यादृश्यं च दृश्यते(?) ।
 (स्थानानी भवितानि?)+ जीवेषु द्विपदेषु च ॥ १४८ ॥
 निर्जीवेष्वपि जानीयाद् या(मा?ना)सनगृहादिषु ।
 स्थानानि मूलभूतानि नवैवैतानि वस्तुतः ॥ १४९ ॥
 यानि (निविशत?)भक्तानि तज्ज्ञेदा(निर्च?) तान् विदुः ।
 मूर्धस्थिता यदा दृष्टा ऋज्वादीनि विलोकयेत् (?) ॥ १५० ॥
 स्थानानि तेषां यन्मानं तदस्मात् तदिहोन्यते ।
 विस्तृत्याष्टादश न्यस्येदायत्या द्विगुणानि च ॥ १५१ ॥
 (अङ्गुल्यन्यादारासूत्रं?) यथाभागं यथोचितम् ।
 आयामस्यार्धदेशे च विस्तारोऽस्याग्रतोऽष्टभिः ॥ १५२ ॥
 + + + + + (पृष्ठप्रदेशार्द्र+मङ्कयेत् ?) ।
 तन्मध्यगामिनी (स्त?मू?त्रे न्यस्येदायतविस्तृते ॥ १५३ ॥
 अङ्गानां स्यात् तदवधिर्निर्गमो (वष्टमाणकः ॥
 सूतयुगलतो गर्भसूत्रादित्यादि?) ॥ १५४ ॥
 स्तनगर्भो गर्भसूत्राद् विस्तृ(तो?तौ) स्यात् षडङ्गुलः ।
 षडङ्गुलः स्यात् स्तनयोस्तिर्यग् गर्भ(वि)र्निर्गमः ॥ १५५ ॥
 तिर्यग् गर्भा(त्) पृष्ठपक्षौ स्फिजावपि दशाङ्गुले ।
 (ने?न)वाङ्गुले पृष्ठवंशः स्फिजो(ः) सप्ताङ्गुलेऽन्त(रम्?रे) ॥ १५६ ॥
 कक्षाया मूलमायामाद् गर्भतश्च दशाङ्गुलम् ।
 निर्गमोऽग्रेऽङ्गुलं तस्य सूत्रात् सप्त च पृष्ठतः ॥ १५७ ॥

१. 'दीनि' इति स्यात् । २. 'स्थानानि गदितानि' इति स्यात् । ३. 'विंशति'
 इति स्यत् । ४. 'नेव' इति स्यात् ।

गर्भसूत्रात् ततस्तिर्यक् पादांशोऽष्टादशाङ्गुलः ।
 गर्भाद् यवप्रदेशश्च(?) भवेत् पञ्चभिरङ्गुलैः ॥ १५८ ॥
 अष्टाभिर्जठरं गर्भात् पार्श्वयोः पुरतोऽपि च ।
 उदरस्य + मं पृष्ठं पश्चात् सप्तभिरङ्गुलैः ॥ १५९ ॥
 सा(धै) द्वा(धै) द्वा(धै) दशभिर्मूलमूर्ध्वो(रथो?) मतोऽङ्गुलैः ।
 पञ्चाङ्गुलं निर्गमस्तत् + स्यात् सप्त च पृष्ठतः ॥ १६० ॥
 ऊरुमूलस्य पृष्ठात् तु स्फिजौ त्र्यङ्गुलनिर्गतौ ।
 मेढूमग्रे ततो ज्ञेयं गर्भसूत्रात् षडङ्गुले ॥ १६१ ॥
 तिर्यक्सूत्राज्जानुपार्श्वं सा(धै) नवभिरङ्गुलैः ।
 आयामसूत्राज्जान्वन्तपृष्ठेऽग्रे चतुरङ्गुलः(?) ॥ १६२ ॥
 नलकश्च भवेद् गर्भात् तिर्यगस्य षडङ्गुलः ।
 गर्भसूत्रात् तु नलकः पृष्ठतश्चतुरङ्गुलः ॥ १६३ ॥
 सूत्रान्ताङ्गुल्यपर्यन्तः(?) स्यात् साधैः षडभिरङ्गुलैः ।
 अक्षः(?) सार्धाङ्गुले सूत्राद् भवेद् विस्तृतिदर्शनात् ॥ १६४ ॥
 चतुर्दशाङ्गु(लाः)लः पादो दैर्घ्येणात्र प्रकीर्तितः ।
 गर्भादष्टाङ्गुलाग्रोऽसौ पश्चादपि षडङ्गुलः ॥ १६५ ॥
 जानुनोरक्षश्च स्यादन्तरमङ्गुलं मिथः(?) ।
 ऊर्वोरङ्गुलमुद्दिष्टं (न भलयो?)श्चतुरङ्गुलम् ॥ १६६ ॥
 ऋज्वागतमिति प्रोक्त(मेढ्रजौ?) मध्यसूत्रतः ।
 (परिवर्ततगुलं सान्नावप्यङ्गुलद्वयम् ॥ १६७ ॥
 तस्मात् सावेस्त सार्धाक्ष्ये?) त्वङ्गुले परिवर्तनी ।
 + + + भित्तिके प्रोक्तं परावृत्तेऽप्ययं विधिः ॥ १६८ ॥
 ऋज्वागतार्धर्जुकसाचिसंज्ञाध्यर्धाक्षपार्श्वगतसंज्ञकानि ।
 तेषां परावृत्तचतुष्टयं च प्रोक्तान्यथो विंशति(र)न्तराणि ॥ १६९ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवधिरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे

ऋज्वागतादिस्थानलक्षणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥

अथ वैष्णवादिस्थानकलक्षणं नामाशीतितमोऽध्यायः ।

—:०:—

अथान्यान्यभिधीयन्ते चेष्टास्थानान्यनेकशः ।

यानि ज्ञात्वा न मुह्यन्ति + + चित्रविचक्षणाः ॥ १ ॥

वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं तथा ।

प्रत्यालीढमथालीढं स्थानान्येतानि (लक्षणम्?) ॥ २ ॥

(अश्वक्रामत्तमथायामविहितनाकत्रयं स्त्रीणाम्?) ।

द्वौ तालावर्धतालश्च पादयोरन्तरं भवेत् ॥ ३ ॥

तयोः समन्वितस्त्वैकस्यश्रः पक्षस्थितोऽपरः ।

किञ्चिदञ्चितजङ्घं च (शगात्रभोज्यचसंयुतम्?) ॥ ४ ॥

वैष्णवस्थानमेतद्धि विष्णुरत्राधिदैवतम् ।

समपादे समौ पादौ तालमात्रान्तरस्थितौ ॥ ५ ॥

स्वभावसौष्टवोपेतौ ब्रह्मा चात्राधिदैवतम् ।

तालाल्पयोऽर्धतालश्च पादयोरन्तरं भवेत् ॥ ६ ॥

अश्रमेकं द्वितीयं च पादं पक्षस्थितं लिखेत् ।

(नैपमोरु?) भवत्येवं स्थानं वैशाखसंज्ञितम् ॥ ७ ॥

विशाखो भगवानस्य स्थानकस्याधिदैवतम् ।

ऐन्द्रोऽन्द्रोऽस्यान्मण्डलं पादौ चतुर्भूस्तालान्तरस्थितौ ॥ ८ ॥

त्र्य(स्थ?श्र)पक्षस्थ(त?ति)श्चैव कटिर्जानुसमा तथा ।

प्रसार्य दक्षिणं पादं पञ्चतालान्तरस्थितम् ॥ ९ ॥

आलीढं स्थानकं कुर्याद् रुद्रश्चात्राधिदैवतम् ।

कुञ्चितं दक्षिणं कृत्वा वामपादं प्रसारयेत् ॥ १० ॥

आलीढं परिवर्ततेन प्रत्यालीढमिति स्मृतम् ।

दक्षिणस्तत्र समः(?) पादस्यश्रः पक्षस्थितोऽपरः ॥ ११ ॥

समुन्नतकटिर्वामश्चावहित्थं तदुच्यते ।

एकः समस्थितः पादो द्वितीयोऽग्रतलान्वितः ॥ १२ ॥

(शूद्रमविद्धं वातः)श्चक्रान्त उच्यते ।

स्थानत्रयमिदं स्त्रीणां नृणामपि (भवेत्) कचित् ॥ १३ ॥

कटीपार्श्वे करौ वक्त्रमुरो ग्रीवा शिरस्तथा ।

स्थानकेषु समस्तेषु कार्यमेतत् क्रियानुगम् ॥ १४ ॥

क्रियाणां पुनरानन्त्यात् समस्तेन न शक्यते ।

व(क्त्रं?क्तुं) तथापि दिङ्मात्रमस्माभिः (सं)प्रदर्श्यते ॥ १५ ॥

हृष्टायाः प्रिय(विच?) नार्याः पुरुषस्य वा प्रियाभ्यर्णे ।

भवति स्थितसंस्थानं त्रिभिरिति तच्च कथयामः(?) ॥ १६ ॥

यद् ब्रह्मसूत्रमृज्वागते भवेत् (तन्मृतभागेऽपि?) ।

अवय(व)विभागतस्तत् कथयामः साम्प्रतं क्रमशः ॥ १७ ॥

(शीनं तत्रय वि?) नासिकाधरपुटेषु सृक्कणि च ।

(कंगंते परचूचुकपूर्वेण कलान्तरे?) नाभौ ॥ १८ ॥

पश्चाद्दूरोर्मध्ये पश्चिमगुल्फस्य तद्वदन्ते च ।

(स्थाने त्रिभंगा भामिनि?) (सू)त्रस्य गतिविनिर्दिष्टा ॥ १९ ॥

पादौ तालान्तरितौ कर्तव्यौ स्थानके त्रि(भागा?भङ्गा)ख्ये ।

षोडशविंशत्यङ्गुलमध्येऽन्तरितो (पितुदडिदाक्षे?) ॥ २० ॥

गमनं त्रिविधं प्राहुर्दुर्लभमध्यविलम्बितप्रभेदेन ।

(स्थानेष्वर्धनेत्राख्यभित्तिषु त्रयगमध्ये?) ॥ २१ ॥

प्रा(न्ते) करवीरस्याथ + + + + + सृक्पर्यन्ते ।

कण्ठान्ते (परभागा स्तनतोगुलदुग्मपर्यन्ते?) ॥ २२ ॥

नाभ्यासन्ने मध्ये मेदूस्त्रस्य तथा परस्य नलकस्य ।

प्रा(न्ते) (वज्जा?)याते गमने स्याद् ब्रह्मसूत्रगतिः ॥ २३ ॥

(सोधेगमने तु पूर्वे लोचनखीरके पुटे तद्धि ।

तविबुकरान्ते स्तनचूकस्य मध्ये?) तथा नाभौ ॥ २४ ॥

मध्ये मेदूस्त्रस्यान्ते + + + परजानुनः क्रमेणैव ।

अपराङ्गुष्ठकमूले विज्ञेयं ब्रह्मसूत्रमिति ॥ २५ ॥

परपादद्वाद्वक्षि(?) स्थित्या क्रियते (त)थाच पूर्वाङ्गे ।
कुर्यात् तलमिह भूतलसूत्रार्थ + गुलोत्क्षिप्तम् ॥ २६ ॥

भूपर्यन्तेऽपाङ्गे (चिबुकांशो?) गोलकान्तरे नाभेः ।

सूत्रपरत्वतः पूर्वेण परावसार्धाक्षे (?) ॥ २७ ॥

पार्श्वगते संस्थाने पश्चिमपादोऽत्र सप्तगोलः स्यात् ।

द्व्यर्धाक्षगमनमुक्तं ब्रूमः पार्श्वगतेर्गमनम् ॥ २८ ॥

आवर्ते + + कूटे ग(डेःण्ड)प्रान्ते च सूक्तभागस्य ।

गलवर्त्तौ स्तनमध्ये (गालेःगोल)त्रितयान्तरे नाभेः ॥ २९ ॥

(स्फिक्पार्श्वपश्चिमजानुनश्चा पूर्वार्तमामृतं सूत्रम् ।

स्यादपरपार्ष्णिपूर्वस्थितं चभिवेत्थोने?) ॥ ३० ॥

क्षपयेत् परभागाह्नि(?)स्वस्मान्मानाद् यथोदितादत्र ।

(पूर्वाङ्गे?)रङ्गुष्ठः कर्तव्यो भूमिसूत्रस्थः ॥ ३१ ॥

पश्चादङ्गुष्ठाग्रं सुश्लिष्टं स्याद् विलम्बिते गमने ।

अङ्गुष्ठाङ्गुले ब्रह्मसूत्रतस्तालिके मध्ये(?) ॥ ३२ ॥

द्वु(त)गमनेऽङ्गुष्ठाग्रं कर्तव्यं षोडशाङ्गुले तस्मात् ।

(परपादाभूमेसः?) (प्रेःप्रोत)क्षिप्तो भवति पूर्वपादश्च ॥ ३३ ॥

इति सर्वेषु ज्ञेयं गमनस्थानेषु संस्थानम् ।

(गोत्राणां मध्येषां?) विदधीत बुधः स्थितिं यथायोगम् ॥ ३४ ॥

(त्रिन्यासयोपणक्षिप्तण?) दृष्टिहस्तादिविनिवेशैः ।

अ(थ) स्थानचतुष्कस्य प्रविच्छन्दककीर्तनात् ॥ ३५ ॥

अन्या अपि क्रिया लेख्याः सम्भवन्तीह या नृणाम् ।

शिष्याणां प्रतिपत्त्यर्थं सूत्राणि त्रीणि पातयेत् ॥ ३६ ॥

ब्रह्मसूत्र(मभेःगते) सूत्रे ये च पा(र्श्वेःश्वे?)समाश्रये ।

ऊर्ध्वानि त्रीणि सूत्राणि स्थानकेष्व(भिष्वपि?) ॥ ३७ ॥

कुर्वीत तेषु मध्ये यद् ब्रह्मसूत्रं तदुच्यते ।

भित्तिके पुनरन्यस्य भागस्यापेक्षया मतम् ॥ ३८ ॥

पार्श्व(स्तिःस्थं) ब्रह्मसूत्रं स्यात् कार्यतो मध्यगं हि तत् ।
ये द्वयोः पार्श्वयोः सूत्रे + + + + हि ते स्मृते ॥ ३९ ॥

प्रदेशावयवस्यात्र निष्पत्त्यै यद्यदीप्सितम् ।
तत्र सूत्रं विधातव्यं तिर्यगूर्ध्वानुसारतः ॥ ४० ॥

अपेक्षेतानि(?) यावन्ति प्रत्यङ्गव्यक्तिसिद्धये ।
तावन्त्यवयवव्यक्तिसिद्धयै तिर्यङ् नयोजयेत् ॥ ४१ ॥

ऊर्ध्वानि त्रीणि सूत्राणि तिर्यङ्मा(ना)नुसारतः ।

स्थानानि वैष्णवमुखान्युदितानि सम्यक्
(त्रिमंगितडिते?)गमनैरुपेते ।

सूत्रस्य पातनविधिश्च यथावदुक्तो
ज्ञाते(न?) भवेत् तदिह सूत्रभृतां वरिष्ठः ॥ ४२^१/_२ ॥

इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
वैष्णवादिस्थानकलक्षणाध्यायो ना(मैकोना?मा)शीतितमः ॥

—:०:—

अथ पञ्चपुरुषस्त्रीलक्षणं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

—:०:—

पञ्चानां हंसमुख्यानां (देहवन्धाति खन्तृणाम्?) ।
दण्डिनीप्रमुख्यानां च स्त्रीणां (तां?) ब्रूमहे पृथक् ॥ १ ॥

हंसः शशोऽथ रुचको भद्रो माल(व्य) एव च ।
(पञ्चैते) पुरुषास्तेषु मानं हंसस्य कथ्यते ॥ २ ॥

अष्टाशीत्यङ्गुलो हंसस्यायामः परिकीर्तितः ।
विज्ञेया वृद्धिरन्येषां चतुर्णां द्वयङ्गुलक्रमात् ॥ ३ ॥

तस्यङ्गुलद्वयं सार्धं (शौटालं?) नासिका मुखम् ।
ग्रीवा च (वैक्तश्चयमोद?) भवेदेकादशाङ्गुलम् ॥ ४ ॥

१. 'देहवन्धादिकं नृणाम्' इति, २. 'तद्' इति, ३. 'ललाट' इति, ४. 'वक्ष-
श्चायामात्' इति च स्यात् ।

एवमेवोदरं नाभिमेद्वयोरन्तरं दश ।

विंशतिश्चाङ्गुलान्यूरु जङ्घे च त्रीणि जानुनी ॥ ५ ॥

त्रीण्यङ्गुलान्यङ्गुले च केशभूरङ्गुलद्वयम् ।

केशान्तमानं सर्वेषामधिकं स्यात् स्वमानतः ॥ ६ ॥

विस्तारेण भवेद् वक्षस्तस्यैवाङ्गुलविंशतिः ।

द्वादशाङ्गुल(विस्तारो बाहुसंसस्य?) निर्दिशेत् ॥ ७ ॥

दशाङ्गुलौ प्रकोष्ठौ च (हस्ततथे + + + + ?) ।

तथा पृथक्पृथक् च्छ्रोणिः पीनाङ्गुलि(?) ततो भवेत् ॥ ८ ॥

हंसस्वभावेन पृथग + + म्भारनासिकः (?) ।

(शेसस्य?) त्र्यङ्गुलं + + नासिका वक्त्रमेव च ॥ ९ ॥

ग्रीवापि तत्प्रमाणैव (य?व)क्षस्त्वेकादशाङ्गुलम् ।

तथोदरं तथा नाभिमेद्वयोरन्तरं दश ॥ १० ॥

ऊरू विंशतिमात्रौ च शशस्य परिकीर्तितौ ।

त्र्यङ्गुले जानुनी (ल?ज)ङ्घे मात्राविंशतिमायते ॥ ११ ॥

गुल्फौ च त्र्यङ्गुलायामौ तावन्मात्रं शिरो भवेत् ।

आयामो(य?स्यं) शशस्यै(व?वं) स्यान्नवत्यङ्गुलोन्मितः ॥ १२ ॥

द्वाविंशत्यङ्गुलं (वैक्ष्यां?) विस्तारेणास्य कीर्तितम् ।

बाहुप्रबाहू पाणी च शशकस्यापि हंसवत् ॥ १३ ॥

समयाच्च स कर्त(व्या?व्य): स्वभावाच्च कृशोदरः ।

(तथोयवेत् केशोरुजङ्घो द्विद्वान्?) विचक्षणैः ॥ १४ ॥

रुचकस्य (तुंखायामद्याम?) प्रोक्तः सार्धदशाङ्गुलः ।

ग्रीवाङ्गुलत्रयं सार्धमायामेनास्य कीर्तिता ॥ १५ ॥

एकादशाङ्गुलो(व्यांपूर्वकृस्तस्य?) प्रमाणतः ।

तावन्त्येवोदरं तस्य नाभिमेद्वान्तरं दश ॥ १६ ॥

१. 'विस्तारो बाहु हंसस्य' इति स्यात् । २. 'शशस्य' इति स्यात् ३. 'वक्षो' इति स्यात् । ४. 'मुखायामः' इति स्यात् । ५. 'न्याहुर्वक्षस्तस्य' इति स्यात् ।

विंशतिश्चाङ्गुलान्यूरु जानुनी चाङ्गुत्रयम् ।
 विंशत्यङ्गुलमायामं जङ्घयोस्तस्य निर्दिशेत् ॥ १७ ॥
 अङ्गुलत्रितयं गुल्फौ कुर्यात् तस्य शिरोऽपिच ।
 द्विनवत्यङ्गुलायामो रुचकः परिकीर्तितः ॥ १८ ॥
 इत्यायामोऽस्य विस्तारो वक्षसोऽङ्गुलविंशतिः ।
 भुजौ दशाङ्गुलायामौ प्रकोष्ठौ तद्वदेव च ॥ १९ ॥
 एकादशाङ्गुलौ हस्तौ विस्तारेणास्य कीर्तितौ ।
 पीनांसः पीनबाहुश्च स(लिःली)लगतिचेष्टितः ॥ २० ॥
 बलवान् वृत्तबाहुः स्याद् रुचको रुचकाकृतिः ।
 भद्रस्य प्राहुरायामं मस्तकस्याङ्गुलत्रयम् ॥ २१ ॥
 एकादशाङ्गुला + + ग्रीवा सार्धाङ्गुलत्रया ।
 वक्षो जठरमप्यस्य सपादैकादशाङ्गुलम् ॥ २२ ॥
 नाभिमेढ्रान्तरं चास्य विद्यात् सार्धदशाङ्गुलम् ।
 आयाममूर्वोर्जानीयात् सपादाङ्गुलविंशतिम् ॥ २३ ॥
 जङ्घे च तावदायामे जानुगुल्फं त्रिमात्रकम् ।
 (चतुर्नवतिसरामो चन्द्रस्यैष?) प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥
 आयाम एष विस्तारो वक्षसस्त्वेकविंशतिः ।
 एकादशाङ्गुलौ बाहू तस्य^१ + + + + + ॥ २५ ॥
 हंसादिपुंसामिदमेवमुक्तं
 यद्वा यथालक्षणमानमत्र ।
 स्त्रीणां च सम्यग् (गदिता सुखानाद्?)
 यो वेत्ति मान्यः स भवेन्नृपाणाम् ॥ २६ ॥
 इति महाराजाधिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि वास्तुशास्त्रे
 पञ्चपुरुषस्त्रीलक्षणं नामाध्या(योऽय एका)शीतितमः ॥

—:०:—

१. 'चतुर्नवतिरायामो भद्रस्यैष' इति स्यात् । २. 'अवशिष्टानामङ्गानां विस्तारसन्निवेशादिकं, मालव्यादिलक्षण चेह्र अथम् । तदेतत् २८५ तम पृष्ठे मिथितात् 'पृथ-
 वक्ष' इत्यादिवाक्यजातादवगन्तव्यम् ।

अथ रसदृष्टिलक्षणं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

—:०:—

रसानाम(स्य?थ) वक्ष्यामो दृष्टीनां (वेइ?) लक्षणम् ।
तदायत्ता यतश्चित्रे भावव्यक्तिः प्रजायते ॥ १ ॥

शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रप्रेयोभयानकाः ।
वीर(प्रत्ययाक्षौ?) च बीभत्सश्चाद्भुतस्तथा ॥ २ ॥

शान्तश्चैकादशेत्युक्ता रसाश्चित्रविशारदैः ।
निगद्यते क्रमेणैषां सर्वेषामपि लक्षणम् ॥ ३ ॥

सभ्रूकम्प(कटीक्षपेच?) तथा प्रेमगुणान्वितः ।
यत्रेष्टललिता चेष्टा स शृङ्गारो रसः स्मृतः ॥ ४ ॥

विकासिललितापाङ्गो मृदु चा(?)स्फुरिता(ध)रः ।
लीलया सहितो यश्च स हास्यो रस उच्यते ॥ ५ ॥

अधुक्किन्नक(पो)लान्तः शोकसङ्कुचितेक्षणः ।
चित्तसन्तापसंयुक्तः प्रोच्यते करुणो रसः ॥ ६ ॥

निर्माजितललाटान्तः संरक्तोद्वृत्तलोचनः ।
दन्तदष्टाधरोष्ठो यः स रौद्रो रस उच्यते ॥ ७ ॥

अर्थलाभसुतोत्पत्तिप्रियदर्शनहर्षजः ।
सञ्जातपुलकोद्भेदो रसः प्रेमा स उच्यते ॥ ८ ॥

वैरिदर्शनवित्राससम्भ्रमोद्भ्रान्तलोचनः ।
हृदि संक्षोभयोगाच्च रसो ज्ञेयो भयानकः ॥ ९ ॥

(अष्टावष्टम्भसमेर्था?)सूत्रसङ्कुचितानतः ।
धैर्यवीर्यबलोत्प(न्ना?न्नः) स वीरस्तु रसः स्मृतः ॥ १० ॥

(ईषेदुप्तसित्तत्र कस्तच्च?)स्तिमिततारकः ।
असम्भाव्यं विलोक्यार्थमद्भुतो जायते रसः ॥ ११ ॥

अ(धि?वि)कारैः प्रसन्नैश्च भ्रूनेत्रवदनादिभिः ।

अरागाद् विषयेषु स्याद् यः स शान्तो रसः स्मृतः ॥ १२ ॥

इत्येते चित्रसंयोगे रसाः प्रोक्ताः सलक्षणाः ।

मानुषाणि पुरस्कृत्य सर्वसत्त्वेषु योजयेत् ॥ १३ ॥

इति रसाः ।

अथ दृष्टारभिदध्मो ललिता हृष्टा विकासिता विकृता ।

भुकुटी विभ्रमसंज्ञा संकुचिता (छवितनाप्रीव?) ॥ १४ ॥

ऊर्ध्वगता योगिन्यथ दीना दृष्टा च (विविष्टहृला खेवे?) ।

(स्यादङ्किता?)भिधाना (विविख्याव?)जिह्वा च ॥ १५ ॥

मध्यस्थेति तथान्या स्थिरेति (चाष्टावेवमुद्दिष्टा?) ।

एता दृशोऽथ लक्षणमेतानां सा मुच्यते क्रमशः ॥ १६ ॥

विकसित(प्रगृह्याससम्भ्रमत्र?) कटाक्षविक्षेपा ।

शृङ्गाररसोद्भूता दृष्टिर्ललितेति विज्ञेया ॥ १७ ॥

प्रियदर्शने प्रसन्ना प्रोद्धतरोमाश्चविकसिता(पा)ङ्गा ।

(प्रस्तरसासि?,जाता हृष्टा दृष्टिः समाख्याता ॥ १८ ॥

विकसितनयनप्रान्ता वि(क?का)सितापाङ्गनयनगण्डतला ।

क्रीडाकारयुतान्या हास्यरसे (स्याद्) विकासिता दृष्टिः ॥ १९ ॥

विख्याता प्रीतिविकारि(?)व्यक्तभया भ्रान्ततारका या च ।

ज्ञेया(विकृत्यकारैः सारै च?) भयानका दृष्टिः ॥ २० ॥

(दीप्तोर्थताकातास्रप्रतता?) मन्ददर्शना ।

दृष्टिर्ध्वं निविष्टे(ष्टा) तु भुकुटिः परिकीर्ति(त?ता) ॥ २१ ॥

सत्त्वस्था दृढलक्ष्मा स(सोष्ट?सौष्ठु)(व)व्यक्ततारका सौम्या ।

(विप्रत्यपरजालाता?) दृष्टिः स्याद् विभ्रमा नाम ॥ २२ ॥

१. 'विहृला चैव' इति स्यात् । २. 'स्याच्छङ्किता' इति स्यात् । ३. चाष्टादशै-
वमुद्दिष्टाः' इति स्यात् । ४. 'दीप्तोर्ध्वतारकातास्रप्रतता' इति स्यात् ।

मन्मथमदेन युक्ता स्पर्शरसोन्मीलिताक्षिपुटयुग्मा ।
 (सुतरु?) सुखानन्दयुता (सङ्कुचि)ता नाम दृष्टि(राख्यता) ॥ २३ ॥
 निर्विका(रै?रा) कचित् तावन्नासिकाग्रावलोकिनी ।
 योगि(नी) नाम सा दृष्टिस्तच्चे चित्तस्य योजनात् ॥ २४ ॥
 अर्धस्रस्तोत्त(र)पुटा किञ्चित् संरुद्धतारका ।
 मन्दसञ्चारिणी सासा शोके दीनाभिधीयते ॥ २५ ॥
 संस्थिते तारके यस्याः स्थिरा विकसिता तथा ।
 सत्त्वमुद्गिरती दृष्टा दृष्टिरुत्साहसम्भवा ॥ २६ ॥
 म्लानभ्रपुटपक्ष्मा या शिथिला मन्दचारिणी ।
 (क्राम?) प्रविष्टतारा च विह्वला (तामला?) स्मृता ॥ २७ ॥
 किञ्चिच्चला स्थिरा किञ्चिदुत्ताना तिर्यगायता ।
 मू(हा?ढा) चकिततारा च शङ्किता दृष्टिरिष्यते ॥ २८ ॥
 आनिकुञ्चितपक्ष्मा या पुटैराकुञ्चितस्त(ता तथा) ।
 (सत्रिजन्त + ?)तारा च कुञ्चिता दृष्टिरुच्यते ॥ २९ ॥
 लम्बिता(र्ध)पु(रा?टा) + + तिर्यग्रक्षेक्षणा शनैः ।
 निगूढा गूढतारा च जिह्मा दृष्टिरुदाहृता ॥ ३० ॥
 ऋजुतारा (राज?ऋजु)पुटा प्रसन्ना रागवर्जिता ।
 त्यक्तादरा च विषये मध्यस्था दृष्टिरुच्यते ॥ ३१ ॥
 समतारा समपुटा समभ्रूरविकारिणी ।
 (उपगारा?)विहीना च स्थिरा दृष्टिः प्रकीर्तिता ॥ ३२ ॥
 हस्तेन सूचयन्नर्थं दृष्ट्या च प्रतिपादयन् ।
 सजीव इति दृश्येत सर्वाभिनयदर्शनात् ॥ ३३ ॥
 आज्ञिके चैव चित्रे + + + साधनमुच्यते ।
 (भवेदत्रादत?)स्तस्मादनयोश्चित्रमाश्रितम् ॥ ३४ ॥

दृष्टिः ॥

पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणं नाम व्यशीतितमोऽध्यायः ३०१

प्रोक्तं रसानामिदमत्र लक्ष्म दृशां च सांक्षिप्ततया तदे(त्येत्) ।

(विज्ञेयचित्रालिखनान्तराणां?) न संशयं याति मनः कदाचित् ॥

इति महाराज.धिराजश्रीभोजदेवविरचिते समराङ्गणसूत्रधारनाम्नि बास्तुशास्त्रे

रसदृष्टिलक्षणाध्यायो ना(मैका?म द्व्य)शीतितमः ॥

—:०:—

अथ पताकादिचतुष्पष्टिहस्तलक्षणं नाम व्यशीतितमोऽध्यायः ।

—:०:—

चतुःषष्टिरिहेदानीं हस्तानामभिधीयते ।

लक्षणं विनि (योगश्च) योगायोगविभागतः ॥ १ ॥

पताकस्त्रिपताकश्च तृतीयः कर्तरीमुखः ।

अर्धचन्द्रस्तथारालः शुकतुण्डस्तथापरः ॥ २ ॥

मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्थः खट्कामुखः ।

सूच्या(स्या?स्यः) प.त्र)कोशाहि(शि)रसौ मृगशीर्षकः ॥ ३ ॥

कैङ्गलपद्मकोलश्च(?) चतुरो भ्रमरस्तथा ।

हंसास्यो हंसपक्षश्च सन्दंशमुकुला(वैदि?) ॥ ४ ॥

ऊर्णनाभस्ताम्रचूड इत्येषा चतुरन्विता ।

हस्तानां विंशतिस्तेषां लक्षणं कर्म चोच्यते ॥ ५ ॥

प्रसारिताग्राः सहिता यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि ।

कुञ्चितश्च तथाङ्गुष्ठः स पताक इति स्मृतः ॥ ६ ॥

उत्क्षिप्तेन (शिरो या + त्पाणिनां मेरसा?) पुनः ।

नतेन वामतः किञ्चिद् भ्रुकुटीकुटिलभ्रु च ॥ ७ ॥

•तोकविष्फारिताक्षेण प्रहारमभिनिर्दिशेत् ।

प्रतापनं तथोद्भूतो(नरेसोग्रतेन च?) ॥ ८ ॥

१. 'विज्ञाय चित्रं लिखता नराणां' इति स्यात् । २. 'काङ्गूलकालपद्मश्चे'ति लक्षण-
दृष्टपाठानुरोधात् पठ्यम् । ३. 'वपि' इति स्यात् ।

तथैवाविकृतास्येन भालस्थः किञ्चिद् विचलितः करः (?) ।

पताकस्फोरिताक्षेण भ्रुकुटीकुञ्चितभ्रुवा ॥ ९ ॥

कार्योऽहमिति गर्वः स्याच्चित्रशास्त्रविशारदैः ।

अर्थेषु वक्ष्यमाणेषु संयुतं चैनमाचरेत् ॥ १० ॥

द्वितीयहस्तयुक्तो यः स हस्तः संयुतः स्मृतः ।

(तत्राग्निसूषणाचामः पुरतो क्षिणतः पुनः?) ॥ ११ ॥

ऊर्ध्वं प्रसर्प्य कर्तव्यः प्रचलद्विरलाङ्गुलिः) ।

विदध्यादिस्थमेवो(क्तो?क्तं) वर्षधारानिरूप(णम्) ॥ १२ ॥

(कित्वधामियंतं तौ तावमच्छन्तौ च?) दर्शयेत् ।

पुष्पवृष्टिप्रपतने प्रचलद्विरलाङ्गुलिः ॥ १३ ॥

कार्यं हस्तद्वयं वक्रं त्रयोऽप्यत्राधिकारिघः (?) ।

(कैतैव?) + + चोत्तानं विधाय स्वस्तिकं बुधः ॥ १४ ॥

कुर्वाणो विच्युतिं तस्य पल्वलं सम्प्रदर्शयेत् ।

पुष्पोपहारं (सष्पणि?) ये चार्था भूतलस्थिताः) ॥ १५ ॥

तानुन्नमितवामभ्रूः किञ्चिदुद्वाहय(ज्ञि?ञ्छि)रः ।

तादृशं हस्तयुग्मं तु कुर्यादविकृताननः ॥ १६ ॥

अधोमुखं (च) तेनैव कर्तव्या (प्र'घ)टना मिथः ।

संवृतं वा (थ) विश्लिष्टं तारः + + + + + ॥ १७ ॥

दर्शनीयं च वदनमास्मिन्नविकृतं सदा ।

(यो?पा)ल्यं छ(तन?न्न च) कर्तव्यं (शैलकशे परस्परा?) ॥ १८ ॥

किञ्चिद्विनतमूर्धा च विधायाधोमुखौ तलौ ।

निबिडं निबिडे(मै?नै)व निर्विकारमुखाम्बु(जा?जः) ॥ १९ ॥

उरसोऽग्रे तथोर्ध्वेन परावृत्ते च हस्तयोः ।

युगलेन मन(सा?श)शक्तिं प्रयत्नेन प्रदर्शयेत् ॥ २० ॥

गोप्यं वामेन गुप्तेन किञ्चिद्विनतमस्तकः ।

किञ्चिदाकुञ्चितां वामां भ्रुवं कृत्वा प्रदर्शयेत् ॥ २१ ॥

पार्श्वस्थेन पताकेन (पाण्यङ्गद्वितयेन तु ।
 अधिकस्थेन पताकेन?) पाण्यङ्गद्वितयेन तु ॥ २२ ॥
 अधिकारिमुखे(?) वायोः कुर्यादभिनन्द(?)यं ततः ।
 नतोत्त + शिरास्तेन (द्विहित भ्रुकुटिमानके?) ॥ २३ ॥
 वेलामुर्वी च मतिमान् पाणियुग्मेन दर्शयेत् ।
 पुरःस्थितेन वामेन दक्षिणेन तु पाणिना ॥ २४ ॥
 (तसृष्टे?) सर्पता स्तोकमुद्राहितशिरा न(राःरः) ।
 वेगं प्रदर्शयेन्नित्यमविकारि दधन्मुखम् ॥ २५ ॥
 (इत्युभ्वेनुश्च?) चलता हस्तयोर्द्वितयेन तु ।
 मूर्ध्ना तदनुगेनैव तथैव विकृताननः ॥ २६ ॥
 क्षोभस्या(भि)नयं कुर्याद्वस्ताभिनयकोविदः ।
 (उधस्तुधो मुखेनावः यतन्परार्थतापि च?) ॥ २७ ॥
 पताकेनाभिनेतव्यो विधाय भ्रुकुटिं मनाक् ।
 पार्श्वव्यवस्थितेनोर्ध्वं चलदङ्गुलिना मुहुः ॥ २८ ॥
 उत्साहनं विधातव्य(मुत्तप्य?) (च) शिरोधराम् ।
 तिर्यग्विष्कार्यमाणेन प्रभूतमभिनिर्दिशेत् ॥ २९ ॥
 महतोऽभिनयः कार्यः पार्श्वयोरूर्ध्वसर्पिणा ।
 भ्रान्तेनोत्तानिते(चानिकृतास्येन सिंहाजनम्?) ॥ ३० ॥
 रूपयेदुच्चमुच्चेन पताकेनैव पाणिना ।
 इतस्ततः प्रचलता दर्शयेत् पुष्कराहतिम् ॥ ३१ ॥
 (सप्ताक्षपेण वक्त्रेण चलयै + मुखेन च?) ।
 स्थितेन पार्श्वयोस्तिर्यग् रिच्यमानेन दर्शयेत् ॥ ३२ ॥
 पक्षोत्क्षेपक्रियां नित्यं वक्त्रेण विकृतेन च ।
 उत्तानितेन वामेन विधूतेनेतरेण तु ॥ ३३ ॥

१. 'अविकारिमुखो' इति श्यात् । २. नाट्यशास्त्रे पताकहस्तकर्मनिरूपणप्रसङ्गे
 'वायूर्मिवेगवेलक्षोभे'त्यादिदर्शनादत्र 'वेलामूर्मिमिति पाठ्यं भाति । ३. 'मुलम्य' इति
 श्यात् । ४. 'नाभिकृतास्येन महाजनम्' इति श्यात् ।

पुरःप्रसर्पिणाधौतं हस्तानुगतदृष्टिना ।
 निघृष्टतलहस्तेन भ्रुकुट्या मृदितं पुनः ॥ ३४ ॥
 प्रघृष्टमेकरूपेण द्वितीयेन प्रसर्पता ।
 (तेन?)स्योपरि हस्तेन निविष्टेन विधीयते ॥ ३५ ॥
 (अन्योन्य)घर्षणा(त्ये?त् पि)ष्टं भ्रुकुट्या च (प्र)दर्शयेत् ।
 पार्श्वस्थितेन शैलेन्द्रं दूरविष्फारितेन च ॥ ३६ ॥
 प्रदर्शयेत् समुत्क्षिप्य(मोभा?) भ्रूलतिकां शनैः ।
 शैलधारणमन्योन्य(श?स)क्तेनाभिमुखेन च ॥ ३७ ॥
 पार्श्वयोः सम्प्रवेद्याधः कृ(क?त)भ्रुकुटिना ततः ।
 कार्यमुत्क्षिप्यमानेन शैलप्रोत्पाटनं तथा ॥ ३८ ॥
 शिरःप्रदेशसंस्थेन दूरमुत्तानितेन च ।
 समुन्नतभ्रुवा कार्या पर्वतोद्धरणक्रिया ॥ ३९ ॥

इति पताकहस्तः ॥

पताके तु यदा वक्रानामिका त्वङ्गुलिर्भवेत् ।
 त्रिपताकः स विज्ञेयः कर्म चास्याभिधीयते ॥ ४० ॥
 (अयं + + अवि?)चलन्मध्याकनिष्ठिकः ।
 अत्रोहेन विधातव्यो न(तु?त) मूर्ध्ना तथा मनाक् ॥ ४१ ॥
 उन्नामेन समुत्क्षिप्तपु(मा?रो)भागेन चामुना ।
 नमता शिरसा कुर्यात् तथा(च?व)तरणक्रियाम् ॥ ४२ ॥
 पार्श्वतः सर्पता कार्यममुनैव विसर्जनम् ।
 पराङ्मुखाना(रयोग्र?) भ्रुकुटिं विरचय्य वा ॥ ४३ ॥
 वारणं पार्श्वसंस्थेन प्रवेशोऽधो नतेन च ।
 प्रवेशं कुर्वताकारो (वेकुब्जमविकारिताः?) ॥ ४४ ॥
 उत्क्षिप्ताङ्गुलियुगेन तथोत्तानेन चामुना ।
 उन्नामनं विधातव्यमविकारिमुखेन च ॥ ४५ ॥

पार्श्वतो नमता (कार्या प्राणेना?) नतमस्तकैः ।
 निदर्शनं तथोद्धृतेनोर्ध्वाङ्गुलिशिखेन (रः?च) ॥ ४६ ॥
 प्रसर्पितमुखस्याग्रे विधिसम्बन्धनं पुनः(?) ।
 उत्तानेना(सुमाङ्गुल्या श्वहीत्वा?)नामिकाख्यया ॥ ४७ ॥
 मङ्(गु?ग)ल्यानां समालम्भः पदार्थानां विधीयते ।
 पराङ्मुखेन शिरसः प्रदेशे सर्पता तथा ॥ ४८ ॥
 प्र(वेश?दर्श)येच्छिरःसन्निवेशमेतेन पाणिना ।
 एतानि दर्शनीयानि सर्वाण्यविकृताननैः ॥ ४९ ॥
 हस्तद्वयेनोभयतः केशानासन्नवर्तिना ।
 उष्णीषमुकुटादीनि प्राप्नोतीति निरूपयेत् ॥ ५० ॥
 कर्तव्यः (सोत्रनाशास्यं विधानेन समीपरा?) ।
 पाणिः कृतभ्रुकुटिना (तत्रोद्वस्तो?)ङ्गुलिद्वयः ॥ ५१ ॥
 अधोमुखं प्रस्थिताभ्या(मङ्गुलीभ्यां) प्रदर्शयेत् ।
 चलाभ्यां मुकुलाभ्यां च हस्तस्यास्यैव (पद्यदान्?) ॥ ५२ ॥
 दर्शयेत् पाणियुग्मेन कदाचित् पक्षिणो लघून् ।
 पवनप्रभृतीश्चैव पदार्थानपरानपि ॥ ५३ ॥
 चलिताङ्गुलिना हस्तद्वयेना(द्योर्निति + स्या?) ।
 अधोमुखेन वा (श्रो?स्रो)तो दर्शयेत् सर्पता पुरः ॥ ५४ ॥
 ऊर्ध्वावस्थितिना गङ्गास्रोतः सूत्रनिभेन च ।
 अधो वि(नि?न)मता पाणिद्वितयेन प्रदर्श(ना?ये)त् ॥ ५५ ॥
 पुरः प्रसर्पतैकेन चलता विकृतान(मः?नः) ।
 हस्तेन सर्पाभिनयं विदधीत विचक्षणः ॥ ५६ ॥
 अङ्गुलिद्वितयेनाधोमुखेनाश्रुप्रमार्जनम् ।
 कुर्यात् कनीनिकादेशसर्पिणा विनताननः ॥ ५७ ॥

१. 'कार्यः प्रणामो' इति स्यात् । २. 'निदर्शनं विविधवचनं च' इति त्रिगता-
 हस्तकर्मप्रदर्शनप्रकरणे मुनिः । ३. 'श्रोत्रनासास्यविधाने तु समीपगः ।' इति, ४. 'तथो-
 र्ध्वा' इति च स्यात् । ५. 'षट्पदान्' इति स्यात् । ६. 'नो नतेन च' इति स्यात् ।

अ(वाःध)श्चार्धं च सर्पन्त्या भालदेशे त्वनामया ।
 तिलकं रचयेदेका(सुन्द्रस्य भ्रलतां शये?) ॥ ५८ ॥
 तथा (चैवा)नामिकया कार्या (स्याद्) रोचनाक्रिया ।
 आलभ्य रोचनां मूर्ध्नि तथैव च विचिक्षिपेत् (?) ॥ ५९ ॥
 तथैव च विधातव्यमल(कनो?) प्रदर्शनम् ।
 उत्तानितेन हासश्च त्रिपताकेन पाणिना ॥ ६० ॥
 (चैदनेस्याग्रह?)स्तिर्यगङ्गुलिद्वयचालनात् ।
 त्रिपताकाङ्गुलीभ्यां तु चलिताभ्यामुग्रतः ॥ ६१ ॥
 शिखण्डिशारिकाका(र?)कोकिलादीन् प्रदर्शयेत् ।
 हस्तस्यानुगतां दृष्टिं (त्रैलोक्य?) + + कारयेत् ॥ ६२ ॥
 इति त्रिपताकः ॥

त्रिपताके यदा हस्ते भवेद् पृष्ठावलोकिनी ।
 तर्जनी मध्यमायाश्च तदासौ कर्तरीमुखः ॥ ६३ ॥
 नमता संयुतेनेतस्ततः सञ्चरणं पदैः ।
 (तेतस्य स्तद्वलनत्वं हि युगस्य तदमातया?) ॥ ६४ ॥
 (अधो)मुखेन कर्तव्य(मतेचैव?) रङ्गणम् ।
 ललाटवर्तिना शृङ्गं सं(प्र?)युतेनोन्नतभ्रुवा ॥ ६५ ॥
 प्रदर्शयेत्(त् त?)दुल्लिखता लेख्यमभ्युन्नतभ्रुवा ।
 अधोमुखेन चैकेन तथाधो नमता मनाक् ॥ ६६ ॥
 दर्शयेत् पतनं बाधो गच्छता मरणं तथा ।
 नमतेतस्ततः शक्रविक्षेपेण(?) विवर्जितम् ॥ ६७ ॥
 पाणिना व्रजता(भेस्ता?) कुञ्चितभ्रूर्नमच्छिराः ।
 न्यस्तं प्रदर्शयेत् (कार्यादृकसंयम्यमाचस्तं कुर्यान्निर्घाटनं तथा ॥
 पीनं बालदुर्मीः कञ्चुकरानुगा?) ।

इति कर्तरीमुखः ॥

यस्याङ्गुल्यस्तु विनताः सहाङ्गुष्ठे(न) चापवत् ॥ ६९ ॥

१. 'मुन्नम्य भ्रूलतां शनैः' इति स्यात् । २. 'कानां' इति स्यात् । ३. 'चैदनेस्याग्रतः' इति स्यात् । ४. 'मनयैव च' इति स्यात् । ५. 'प्रस्ताद्' इति स्यात् ।

सोऽर्धचन्द्र इति प्रोक्तः करः कर्मा(चःस्य) कथ्यते ।

तेनोन्नतभ्रूरेकेन शशिलेखां प्रदर्शयेत् ॥ ७० ॥

(मध्यस्यौ यस्य?)मायस्तं कुर्यान्निर्घाटनं तथा ।

पीनं बालद्रुमाः (क)म्बु कलशा वलयानि च ॥ ७१ ॥

प्रदर्शनीयान्येतेन संयुतेनेति चापरे ।

रशनाकुण्डलादीनां तलपत्रस्य चामुना ॥ ७२ ॥

कटीजघनयोश्चाभिनयस्तद्देशवर्तिना ।

अस्याप्यनुगता दृष्टिः का(र्शाः?) सर्वत्र नर्तकैः ॥ ७३ ॥

इत्यर्धचन्द्रः ॥

आद्या धनुर्नता कार्या कुञ्चितोऽङ्गुष्ठकस्तथा ।

शेषा भिन्नोर्ध्ववलिता अरालेऽङ्गुलयः स्मृताः ॥ ७४ ॥

(अमृतेनाग्रतोतेन?) किञ्चिदभ्युत्थितेन च ।

सम्बन्धौण्डीर्यगाम्भीर्यधृतिकान्तीः प्रदर्शयेत् ॥ ७५ ॥

दिव्याः (पापार्ध?) ये चान्ये तानप्यविकृताननः ।

दर्शयेदुन्नतभ्रूश्च पाणिनानेन नर्तकः ॥ ७६ ॥

आशीर्वादं (तथा कानां?) स्त्रीकेशग्रहणं च यत् ।

निर्वर्णनं च सर्वाङ्गमा(लः?)नो यद् विधीयते ॥ ७७ ॥

उत्कर्षणं च तत् सर्वं कार्यमभ्युन्नतभ्रुवा ।

दर्शयेद्धस्तयुग्मेन प्रदक्षिणगतेन च ॥ ७८ ॥

विवाहं संप्रयोगं च कौतुकानि बहूनि च ।

अङ्गुल्यग्रसमायोगरचितस्वस्तिकेन च । ७९ ॥

परिमण्डलयातेन प्रादक्षिण्यं प्रदर्शयेत् ।

परिमण्डलसंस्थानं तथानेन महाज(लः?)नम् ॥ ८० ॥

द्रव्यं महीतले यच्च रचितं तत् प्रदर्शयेत् ।

दानं वारणमाह्वानमनेक (वचनं तथा) ॥ ८१ ॥

१. 'मध्यमौपग्य' इति स्यात् । २. 'आस्तुतेनाग्रतोऽनेन' इति स्यात् । ३. 'पदार्था' इति स्यात् । ४. 'तथैकेन' इति स्यात् ।

दर्शयेच्चलता तेन हस्तेनासंयुतेन च ।

स्वेदापनयनं कार्यं ग(त्वा?न्धा)घ्राणं तथामुना ॥ ८२ ॥

तत्प्रदेशे प्र(वृत्तेन) पाणिना नृत्तकोविदैः ।

योषितां विषये चैष (पाणिना?) प्रायेण युज्यते ॥ ८३ ॥

कर्माण्येतानि सर्वाणि त्रिपता(कः स?कव)दाचरेत् ।

नाहमित्यभिनेतव्य(मस्यादश?)स्थितेन च ॥ ८४ ॥

अस्यानुयायिनीं दृष्टिं विदधीत भ्रुवौ तथा ।

इत्यरालः ॥

अराल(क?स्य) यदा वक्रानामिका त्वङ्गुलिर्भवेत् ॥ ८५ ॥

शुकतुण्डः स विज्ञेयः कर्म चास्याभिधीयते ।

न त्वमित्यमुना तिर्यक् प्रसृतेन प्रदर्शयेत् ॥ ८६ ॥

व्यावृत्तेन तु हस्तेन (म?न) कृत्यमिति निर्दिशेत् ।

प्रसारितेन पुरतो नमताभिमुखं मुहुः ॥ ८७ ॥

कुर्यादावाहनं तिर्य (‘++ मातु?) विसर्जनम् ।

व्यावृत्तेन तु हस्तेन न कृत्यमिति वारताम्(?) ॥ ८८ ॥

(अवेक्षे निपोनिषेक अ?) परावृत्तेन शस्यते ।

दृष्टिभ्रुवौ चानुगते हस्तस्यास्य समाचरेत् ॥ ८९ ॥

इति शुकतुण्डः ॥

अङ्गुल्यो यस्य हस्तस्य तलमध्येऽग्रसंस्थिताः ।

तासामुपरि चाङ्गुष्ठः स मुष्टिरभिधीयते ॥ ९० ॥

एष प्रहारे (व्या)यामे कार्यः सभ्रुकुटीमुखैः ।

पार्श्वस्थहस्तयुग्मेन निर्गमे तु विधीयते ॥ ९१ ॥

इति मुष्टिः ॥

-
१. 'क्षेदापनय' इति मुद्रितमुनिपाठो दृश्यते । २. 'पाणिः' इति स्यात् ।
 ३. 'मास्यदेश' इति स्यात् । ४. 'ङ्गनमता तु' इति स्यात् । ५. इदं ९२ तमश्लोकान्ते
 निषेधनीयमिति भाति ।

(यैष्यतिग्रहणमात्रमर्धने?) स्तनपीडने ।

असं(स्तु?यु)तो विधातव्यो (सुदृष्टिभ्रवो तथा?) ॥ ९२ ॥

अस्यैव तु यदा मुष्टेरुध्वोऽङ्गुष्ठः प्रयुज्यते ।

हस्तः स शिखरो नाम तदा ज्ञेयः प्रयोक्तृभिः ॥ ९३ ॥

अयं वामो विधातव्यः कुशरश्मि(चैतुहिं + ?) ।

हस्तद्वयं व्याप्रियतो(?) (श्रो?सृ)णिग्रहणकर्मणि ॥ ९४ ॥

शक्तितोमरमोक्षे तु सव्यहस्तः प्रयुज्यते ।

पादौष्ठरञ्जने चैव चलिताङ्गुष्ठको भवेत् ॥ ९५ ॥

अलकस्य समुत्क्षेपे तत्प्रदेशस्थितो भवेत् ।

कुर्यादनु (ग)तामस्य दृ(ष्टिभ्रयुगलं?) तथा ॥ ९६ ॥

इति शिखरः ॥

अस्यैव शिखराख्यस्य (अ?व्र)ङ्गुष्ठकनिपीडिता ।

यदा प्रदेशिनी वक्रा स कपित्थस्तदा स्मृ(ता?तः) ॥ ९७ ॥

चापतोमरचक्रासिशक्ति(चक्रांगदाविना?) ।

एतेनान्यानि शस्त्राणि सर्वाण्यभिनयेद् बुधः ॥ ९८ ॥

सत्यप्यभिनये जन्म + + + विक्षिपेन्मुहुः ।

अत्रापि हस्तानुगतं दृष्टिभ्रूकर्म शस्यते ॥ ९९ ॥

इति कपित्थः ॥

उत्क्षिप्तवक्रा तु यदा(र्तां कार्या?) सकनीयसी ।

अस्यैव तु कपित्थस्य (पदांशौषटकमुखः?) ॥ १०० ॥

अनेन होत्रं हव्यं च नमतान्नं विधीयते ।

द्वाभ्यामाकर्षण(च्छत्राग्रं प्रग्रहप्रदर्शनम्?) ॥ १०१ ॥

१. 'यष्टयसिग्रहणे गात्रमर्दने' इति स्यात् । २. चतुर्थः पादोऽय दृष्टिभ्रुवोर्हस्ता-
नुयानविध्यर्थस्य लुप्तस्य श्लोकान्तरस्य स्यात् । ३. 'धनुर्ग्रहे' इति स्यात् । ४. 'दृष्टि भ्रूयु-
गलं' इति स्यात् । ५. 'वज्रगदादिना' इति स्यात् । ६. 'नामिका' इति पदमत्रार्थसाङ्ग-
त्याय कल्पनीयम् । ७. 'तदासौ खटकामुखः' इति स्यात् । ८. 'च्छत्रप्रग्रहाणा प्रदर्शनम्'
इति स्यात् ।

(एतेन न चास्यरादर्शं वा जग्र?) पुनः ।

अवक्षेपसमुत्क्षे(प?पौ) व्यावृत्तेन तु (क'ख)ण्डनम् ॥ १०२ ॥

भ्रमता तु विधातव्यममुना परि(षेव?पेष)णम् ।

दीर्घदण्डग्रहे चैव (षेवस्त्रीतालम्बने?) तथा ॥ १०३ ॥

कुशकेशकलापादिग्रहे स्रग्दामसंग्रहे ।

दृष्टि(भ्र)सहितो हस्तः प्रयोक्तव्यो विचक्षणैः ॥ १०४ ॥

इति (ष'ख)टकामुखः ॥

खटकारुये यदा हस्ते तर्जनी संप्रसारिता ।

हस्तः सूचीमुखो नाम तदा ज्ञेयः प्रयोक्तृभिः ॥ १०५ ॥

एतदीयप्रदेशिन्या व्यापारः प्रायशो भवेत् ।

नतोऽर्वाकं कम्पितो (वा?लो)लव्यालोद्वाहित(क)भ्रमाः ॥ १०६ ॥

(ते स तत्र नत्र कर्मणि युज्यते ।

भ्रमाया?)भिनयेच्चक्रं (तंभि?जृम्भि)तं चलयानया ॥ १०७ ॥

विलोलया पताकादीन् + + + + + या ।

(ध्रुपदीपल्लुतावल्लीपल्लवान् बालपत्रमात् ॥ १०८ ॥

+ + + + + + + भ्रुद्वया?) पुष्पमञ्जरी(म्) ।

चलया वक्रगमनं चूलिकामुद्ध + + या ॥ १०९ ॥

(सा बुधा चादाहु विधातर्धकम्पितपा?) ।

ध्रुपदीपल्लुतावल्लीपल्लवान् बालपन्नगान् ॥ ११० ॥

शिखण्डकान् मण्डलं च नयनं चोर्ध्वलोलया ।

तारकानासिकादण्डय(ष्टी?) पूर्वसुस्थया?)नया ॥ १११ ॥

दैक्षिणो दर्शयेत्रासन्नताधो नताक्रया(?) ।

तिर्यङ्मण्डलया सर्वं तया लोकं प्रदर्शयेत् ॥ ११२ ॥

१. 'एकेन च स्यादादर्शधारणं व्यञ्जनं' इति स्यात् । २. 'वस्त्रान्तालम्बने' इति स्यात् । ३. 'ष्टीरूर्ध्वस्थया' इति स्यात् । ४. 'दैक्षिणो दर्शयेद् वक्त्रासन्नताधो नताग्रया' इति स्यात् ।

(आद्यदीर्घे च विधास्ते?) विदध्यादुन्नतामिमाम् ।
 वि(ममन्ता?नमन्ती) पुनः कुर्यादपराङ्मनप्रदर्शने ॥ ११३ ॥
 कर्तव्या वदनाभ्यासे सा कुञ्चितविजृम्भिता ।
 अङ्गु(लि?लिः) नृत्ततत्त्वज्ञैर्वाक्यार्थस्य निरूपणे ॥ ११४ ॥
 सोऽयं तदिति(?) निर्देशे प्रसृत(तौत्वा?तोत्ता)नकम्पिता ।
 रोषे प्रकम्पिता(र्धा?ग्रा)च हस्तेनाभ्युन्नतेन च ॥ ११५ ॥
 प्रसृताग्रेण (स?न)मता (च?) कर्तव्या स्वेदरूप(णा?णे) ।
 कुन्तलाङ्गदगण्डानां कुण्डलानां च रूपणे ॥ ११६ ॥
 (सैर्द्विंश वर्तना कार्या प्राचलती च सा मूह!?) ।
 ललाटसंवृतोद्भृता कार्या (हस्तिनिरूपणा?) ॥ ११७ ॥
 प्रसारितोन्नामिता वा रिपूद्देशे(स?) विधीयते ।
 (कांर्या संकपानी साग्रे सो प्रकोपदर्शने?) ॥ ११८ ॥
 कोऽसावित्यपि निर्देशे (तया?कार्या) तिर्यग्भिनिर्गमा ।
 (कर्णकूटनयेन शब्दश्रवणेस्तातसंश्रया?) ॥ ११९ ॥
 कार्ये हस्तद्वयाङ्गुल्यौ संयुते संमुखे युते ।
 वियोगे विघटन्त्यौ तु कलहे स्वस्तिकाकृती ॥ १२० ॥
 (चतुधनिता?) कार्ये परस्परनिपीडने ।
 ऊर्ध्वाग्रचलिता यावत् कर्त(स्यै?व्यै) के + वर्णने ॥ १२१ ॥
 कुर्याद् दृशं भ्रुवौ चा(स्य) हस्तस्यानुग(तं?ते) बुधः ।

इति सूचीमुखः ॥

यस्याङ्गुल्यस्तु (विरलामामोरुहाङ्गुष्ठेन?) कुञ्चिताः ॥ १२२ ॥
 ऊर्ध्वाश्च सङ्गताग्राश्च (स) भवेत् पञ्चकोशकः ।
 श्रीफल(क?)स्य कपित्थस्य ग्रहणं तेन रूपयेत् ॥ १२३ ॥

१. 'आये दीर्घे च दिवसे' इति स्यात् । २. 'प्रणतीकता च कार्या ह्याये दीर्घे च दिवसे च' इति तु मुनिः । ३. 'तद्देशवर्तिनी कार्या प्रचलन्ती च सा मुहुः' इति, ४. 'हमिति रूपणे' इति, ५. 'कार्या प्रकम्पिनी साग्रे चोप्रकोपप्रदर्शने' इति च स्यात् । ६. 'कर्ण-कण्डूयने शब्दभ्रवणे भ्रुवसंश्रया' इति स्यात् । ७. 'विरलाः सहाङ्गुष्ठेन' इति स्यात् ।

बीजपूरकमुख्यानामन्येषामपि दर्शनम् ।

कार्यं फलानां तत्तुल्यरूपेणोर्ध्वस्थितेन च ॥ १२४ ॥

कुर्यात् प्रसारितास्येन योषित्कुचनिरूपणम् ।

कुर्याद् दृष्टिभ्रुवौ चास्य हस्तस्यानुगते बुधः ॥ १२५ ॥

पद्मको(ण?श)कः ॥

अङ्गुल्यः संहताः सर्वाः सहाङ्गुष्ठेन यस्य तु ।

(तैथानितघाश्चैव?) स तु सर्पशिराः करः ॥ १२६ ॥

उत्तानि(तेन?तं तु) कुर्वीत सेचनोदकदानयोः ।

अधोमुखं विचलितं भुजगस्य गतौ पुनः ॥ १२७ ॥

(विधात द्विगुणां वामबाहुतस्थिशरादधः?) ।

विदध्यात् सर्पशिरसा हस्तेनास्फोटनक्रियाम् ॥ १२८ ॥

रचितभ्रुकुटिः कुर्यादेवं तिर्यक्छिरो दधत् ।

पुरतोऽधोमुखे(नै भास्या?)लनमाचरेत् ॥ १२९ ॥

दृष्टिभ्रूसहिता कार्या हस्त(स्या)स्यानुयायिनी ।

इति सर्पशिराः ॥

(अधोमुखीनानिसृणे?)मङ्गुलीनां समाग(त?ति): ॥ १३० ॥

कनिष्ठाङ्गुष्ठकावूर्ध्वे तदासौ मृगशीर्षकः ।

इह साम्प्रत(मस्तथेत्यत्ना?) प्रयोजयेत् ॥ १३१ ॥

(स्थाच्छज्यालम्भेने तिर्यगुक्ति पूश्वाक्षे पातने?) ।

स्वेदापमार्जने कार्योऽधोमुखस्तत्प्रदे(र्य?शग): ॥ १३२ ॥

(क्रुद्ध?कुट्ट)मिते (संचलितः कर्तव्योऽ)धोमुखश्च सः ।

(अस्यानुयायिनी दृष्टिः पाणी कुर्याद् भवापि?) ॥ १३३ ॥

इति मृगशीर्षकः ॥

१. 'तथा निम्नतलाश्चैव' इति स्यात् । २. 'नेमकुम्भास्फा' इति स्यात् । ३. 'अधोमुखीनां तिसृणां' इति स्यात् । मुद्रितनाट्यशास्त्रे तु 'अधोमुखीनां सर्वासाम्' इति पाठो दृश्यते । ४. 'मस्तथेत्यत्र चैनं' इति स्यात् । ५. 'स्थाच्छज्यालम्भेने तिर्यगुक्ति-सम्भाषपातने' इति स्यात् । ६. 'अस्यानुयायिनीं दृष्टिं पाणेः कुर्याद् भवावपि' इति स्यात् ।

त्रेताग्निसंस्थिता मध्यातर्जन्यङ्गुष्ठका मताः ।

काङ्गूलेऽनामिका वक्रा तथाचो(ध्व?ध्वा) कनीयसी ॥ १३४ ॥

(त्रेतोत्तनेन) कर्क(न्तु?न्ध्र)प्रभृतीनि प्रदर्शयेत् ।

तरुणानि फलान्यन्यद् वस्तु किञ्चिच्च यल्लघु ॥ १३५ ॥

वाक्या(ना?न्य)ङ्गुलिविक्षेपैः स्त्रीणां रोषकृतानि च ।

मुक्तामरकतादीनां (रत्नानां) च प्रदर्शनम् ॥ १३६ ॥

हस्तेनानेन कर्तव्यं भ्रुवौ (चोत्स्पृष्टग्रे?) ।

इति काङ्गूलः ॥

आवर्तिन्यः करतले यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि ॥ १३७ ॥

पार्श्वागता विकीर्णाश्च सोऽलपद्मः प्रकीर्तितः ।

तिर्यक् पुरःस्थितः कार्यो हस्तोऽयं प्रतिपेधने ॥ १३८ ॥

कस्य त्वमिति नास्तीति वाक्ये शून्ये च धीमता ।

आत्मोपन्यसने स्त्रीणां (नै सन्देशच्छेतो?) भवेत् ॥ १३९ ॥

अस्य चानुगता दृष्टिर्विधातव्या भ्रुवौ तथा ।

इत्यलपद्मः ॥

अङ्गुल्यः प्रसृतास्तिस्रस्तथाचो(ध्व?ध्वा) कनीयसी ॥ १४० ॥

तासां मध्ये स्थितोऽङ्गुष्ठः स करश्चतुरः स्मृतः ।

अधोमुखः प्रचलितो (मतस्येन ततत्कथा?) ॥ १४१ ॥

विनये च नये चायं कार्योऽभिनयवेदिना ।

(वैपुणा तून्नतशिवा साः कृत्वा भ्रेतां भ्रुवा?) ॥ १४२ ॥

विदध्याच्चतुरं हस्तमुत्तानं नियमे पुनः ।

किन्तु भ्रुवं + कु(टिलां) विनयं प्रति नाचरेत् ॥ १४३ ॥

अधोमुखेन हस्तेन तेन बालं प्रदर्शयेत् ।

बालप्रदर्शने कुर्याद् (कुंटीविनतानिरः?) ॥ १४४ ॥

१. 'तेनोत्तानेन' इति स्यात् । २. 'चोत्स्पृष्टदृष्टिगे' इति स्यात् । ३. 'सन्देशे चोच्छ्रितो' इति स्यात् । ४. 'नैपुणे तून्नतशिराः सत्त्वे कृत्स्नोन्नतां भ्रुवम्' इति स्यात् । ५. 'भ्रुकुटीविनतं शिरः' इति स्यात् ।

तेनोत्तानेन) बलता (येदातुरनन्तरम्?) ।
 तिर्यक् प्रसर्प्य तूत्तानो बहिश्चाविकृताननैः ॥ १४५ ॥
 सत्ये चानुमतौ चैव (हस्त एष) विधीयते ।
 एवमेव प्रयोक्तव्यो युक्ते (पश्येशमव्ययः?) ॥ १४६ ॥
 द्वाभ्यामेकेन वा (स्तुस्तौ क?) मण्डलावस्थितेन च ।
 विचारितं प्रयोक्तव्यं विहतं लज्जितं तथा ॥ १४७ ॥
 वदनं तत्र कर्तव्यमविकार्य नतश्रुवा ।
 वितर्कितशुरोभ्यर्णे मण्डलावस्थितेन तु ॥ १४८ ॥
 अधोमुखेन पुरतः कार्यं विश्लिष्यता तथा ।
 मुखं चाविकृतं तत्र कार्यमभ्युन्नते श्रुवौ ॥ १४९ ॥
 शिरस्तु वामतो (तत्र नतं च पुनः?) ।
 उभाभ्यां नयनाभ्यां (तु) मृगकर्णप्रदर्शनम् ॥ १५० ॥
 कार्यं तद्देशवर्तिभ्यां सभ्रक्षे(पःपं) विचक्षणैः ।
 उत्तानेन युतेनाथ पत्राकारं प्रदर्शयेत् ॥ १५१ ॥
 हस्तेन (चंतुरा खे?) विनमय्य श्रुवं मनाक् ।
 लीलां रतिं स्मृतिं बुद्धिं संज्ञामायाविचारणाः) ॥ १५२ ॥
 सङ्गतं प्रणयं (शौचमावर्त्य?) भावमक्षमम् ।
 पुष्टिं (सविच?)शीलं च चातुर्यं मार्दवं सुखम् ॥ १५३ ॥
 प्र(स्तं?श्रं) वार्ता च वेषं च युक्तिं दाक्षिण्ययौवने ।
 विभवाविभवौ स्तोकं सुरतं (सङ्गरं?) मृदु ॥ १५४ ॥
 गुणागुणौ गृहा दारा वर्णा नानाविधाश्रयाः ।
 चतुरेणाभिनेतव्यास्ते सर्वेऽपि यथोचितम् ॥ १५५ ॥

१. 'दर्शयेदात्रं नरम्' इति स्यात् । २. 'पथ्ये शमे यमे' इति वा, 'पथ्ये च मध्यमे' इति वा स्यात् । ३. 'स्तोक' इति स्यात् । ४. 'विवृतविचारितरचितम्' इति तु मुद्रितमुनिपाठः । ५. 'चतुराख्येन' इति स्यात् । ६. 'शौचं माधुर्यं' इति मुनिसम्मतः पाठः । ७. 'शादलं' इति स्यात् ।

क्वचित् प्रभावता कापि (भ्रमता?) मृदुता क्वचित् ।
प्रतीतिर्जायतेऽर्थस्य यस्य यस्य यथा यथा ॥ १५६ ॥

प्राज्ञैस्तथा तथा शीर्षेऽभिनेयान्यु(त्य?क्त)पाणिना ।
भ्रूदृष्टि(चकुरगोश्च?) कार्यास्तदनुसारतः ॥ १५७ ॥

मण्डलस्थेन हस्तेन पीतं रक्तं च दर्शयेत् ।
किञ्चिन्नतभ्रूः शिरसा परिमण्डलितेन च ॥ १५८ ॥

तेन (दभ्रू?प्र)दर्शयेत् कृ(ष्टं?ष्णं) नीलं च परिमृद्रता ।
चतुरेण कपोतादीन् वर्णान् स्वाभाविकेन च ॥ १५९ ॥
इति चतुरः ॥

मध्यमाङ्गुष्ठसन्दंशो वक्रा चैव प्रदेशिनी ।
ऊर्ध्वमन्ये (प्रकीर्णो + अङ्गुल्यो?) भ्रमरे करे ॥ १६० ॥

कुमुदोत्पलपद्मानां ग्रहणं तेन पाणिना ।
तथैव दीर्घवृन्तानामन्येषामपि रूपयेत् ॥ १६१ ॥

कर्णपूरो विधातव्यः कर्णदेशे स्थितेन च ।
दृष्टिभ्रुवौ चाभि(न्ना?नये) तेषां कार्ये करानुगे ॥ १६२ ॥

इति भ्रम(रा?र): ॥

तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठा(भ्रू?स्त्रे)ताग्रिस्था निरन्तरा(ः) ।

भवेयुर्हंसवक्त्रस्य (शेषं सम्प्रसारिता?) ॥ १६३ ॥

किञ्चित् प्रस्पन्दिताङ्गुष्ठेनामुनोत्क्षिप्य च भ्रुवौ ।

निस्सारमल्पं मृक्षं च दर्शयेन्मृदुलं लघु ॥ १६४ ॥

कर्तव्यो(व्ये?)भिनये चैषां दृग्भ्रुवौ च करानुगे ।

इति हंसवक्त्रः ॥

अङ्गुल्यः प्रसृतास्तिस्रस्तथाचोर्ध्वा कनीयसी ॥ १६५ ॥

अङ्गुष्ठः कुञ्चितश्चैव हंसपक्ष इति स्मृतः ।

उत्तानेन बहिस्तिर्यग् ग्रीवायजलभूषणम् (?) ॥ १६६ ॥

१. 'प्रकीर्णं द्वे अङ्गुल्यो' इति स्यात् । २. 'शेषं द्वे सम्प्रसारिते' इति स्यात् ।

३ 'स्तिर्यग् निवापजलमोक्षणम्' इति स्यात् ।

कर्तव्यं तेन गण्डस्य रूपस्य (गण्डवर्तनम्?) ।

कुर्वीत चैनमुत्तानं भोजने च प्रतिग्रहे ॥ १६७ ॥

तथाचमनकार्ये च कर्तव्योऽयं द्विजन्मनाम् ।

अधस्तादन्तयोरेनं कुर्यात् स्वस्तिकयोगिनम् ॥ १६८ ॥

किञ्चिन्नतेन शिरसा (यं परि यथारसम्?) ।

उभाभ्यां पार्श्वयोस्तिर्यग्वैताभ्यां स्तम्भदर्श(नेऽनम्) ॥ १६९ ॥

कुर्वीतैकेन रोमाञ्चं वामबाहुप्रसर्पिणा ।

संवाहनेऽनुलेपे च स्पर्शे त(र्दि?द्वे)शवर्तिनम् ॥ १७० ॥

विषादे विभ्रमे स्त्रीणां (स्तन्यं तत्स्थं यथा रसः?) ।

अधस्तलं प्रयुञ्जीत (ह?त)थैनं हनुधारणे ॥ १७१ ॥

अस्यानुयायि(नी?नीं) दृष्टिं पाणेः कुर्याद् भ्रुवौ तथा ।

इति हंसपक्षः ॥

तर्जन्यङ्गुष्ठसन्दंश(स्व रोदनस्य?) यदा भवेत् ॥ १७२ ॥

आ(नुत?भुग्न)तलमध्यश्च सन्दंश इति स स्मृतः ।

स चाग्रमुखपा(र्श्वका?र्श्व?)नां भेदेन त्रि(वि)धो भवेत् ॥ १७३ ॥

तं पुष्पावचये पुष्प(र्माग्रघ?ग्रथ)ने च प्रयोजयेत् ।

तृणपर्णग्रहे केशसूत्रादिस्तथापरे(?) ॥ १७४ ॥

(श?शि)ल्पैकादेशग्रहणे त्वग्र(स्त?सं)दंशकं स्थिरम् ।

आकर्ष(णात्?णे) तथा कृष्णे(?) दृन्ता(त्) पुष्पस्य चोद्धृतौ ॥

विदध्यादेवमेवैनं शलाका(र?दि)निरूप(णा?णे) ।

रोषे धिगिति वाक्ये च बहिर्भागप्रसर्पिणम् ॥ १७५ ॥

(यज्ञोपचितं?) तत्प्रदेशे स्थितेन च ।

उत्तानेनोरसोऽग्रे तु संयुतेन च (निर्द्धतम्?) ॥ १७६ ॥

१. इह कियाञ्चिदंशो लुप्तः सम्भाव्यते । २. 'स्तनान्तःस्थं यथारसम्' इति स्यात् । ३. 'स्वरालस्य' इति स्यात् । ४. 'केशसूत्रादेश्च परिग्रहे' इति स्यात् । ५. 'वेध-नम्' इति स्यात् ।

(वचनं बलहा किञ्चित् समध्येनाधोमुखेन च?) ।
 ग्रहणं गुणसूत्रस्य बाणलक्षनिरूपणम् ॥ १७८ ॥
 ध्यानं योगं च हृद्देशवर्तिना संप्रदर्शयेत् ।
 (स्तोक्रतिभिन्ना ये?) कर्तव्यः संयुतस्तूरसः पुरः ॥ १७९ ॥
 कुत्सा(स्त?सू)याकोमलेषु सदोषवचनेषु च ।
 विवर्तिताग्रः कर्तव्यो वामो विघटितो मनाक् ॥ १८० ॥
 प्रवालरचने वर्तिग्रहणे नेत्ररञ्जने ।
 आलेख्ये चैष कर्तव्यस्तथालक्तकपीडने ॥ १८१ ॥
 अस्य भ्रुवौ च दृष्टिं च कुर्यादनुगतां ततः ।

(इति सन्दंशः ॥)

समागताग्रसहिता यस्याङ्गुल्यो भवन्ति हि ॥ १८२ ॥
 ऊर्ध्वं हंसमुखस्येव स भवेन्मुकुलः करः ।
 कर्तव्यः संहतोऽत्रातो मुकुलाम्भोरुहादिषु ॥ १८३ ॥
 पुरः प्रस(प्य?प्यो)चलितः कर्तव्यो विटचुम्बकः ।
 इति मुकुलः ॥

पद्मकोशस्य हस्तस्य (अ?त्व)ङ्गुल्यः कुञ्चिता यदा ॥ १८४ ॥
 ऊर्णनाभः स विज्ञेयश्चौर्यकेशग्रहादिषु ।
 चौर्यकेशग्रहे चैष कर्तव्योऽधोमुखः (स?क)रः ॥ १८५ ॥
 शिरःकण्डूयने मूर्ध्नः प्रदेशे प्रचलन्मुहुः ।
 (तैर्यकवर्ती?) विधातव्यः कुष्ठव्याधेनिरूपणे ॥ १८६ ॥
 अधोमुखः (स्थितेनाधः?) सिंहव्याघ्रादिरूपणे ।
 कार्यो भ्रुकुटिवक्त्रेण संयतोऽस्य ग्रहस्तथा ॥ १८७ ॥
 अत्रापि दृष्टिभ्रूकर्म प्राग्वदेव विधीयते ।

इत्यूर्णनाभः ॥

मध्यमाङ्गुष्ठसन्दंशो वक्रा चैव प्रदेशिनी^१ ॥ १८८ ॥

१. 'स्तोकाभिन्ने' इति स्यात् । २. 'तैर्यकवर्ती' इति स्यात् । ३. इत उत्तरमव-
 शिष्टं लक्षणवाक्यं 'शेषे तलस्ये कर्तव्ये ताम्रचूडकरेऽङ्गुली' इति मुन्युक्तदिशा पूरणीयम् ।

मृगव्यालादिवि(श्वासं?त्रासे) बालसन्धारणे तथा ।

अयं हस्तो विधातव्यो भर्त्सने भ्रुकुटीयुतः ॥ १८९ ॥

सिंहव्याघ्रा(दि)योगे च विच्युतः शब्दवान् भवेत् ।

दृष्टिभ्रुवौ च कर्त(व्यौ न्य?)त्यमस्यानुगे बुधैः ॥ १९० ॥

अप(रे?रैः) छिदितासंज्ञो(?) हस्तोऽयं परिकीर्तितः ।

इति ताम्रचूडः ॥

अ(लं?सं)युतानां हस्तानां चतुर्विंशतिरीरिता ॥ १९१ ॥

त्रयोदशाथ कथ्यन्ते संयुता नामलक्षणैः ।

अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा ॥ १९२ ॥

खट(को?का)वर्धमानश्चा(प्यस?प्युत्स)ङ्गनिषावपि ।

ढोलः पुष्पपुटस्तद्वन्मकरो गजदन्तकः ॥ १९३ ॥

(वैरि)त्थादश कथ्यन्ते संयुता नामलक्षणैः ।

अञ्जलिश्च कपोतस्य कर्कटः स्वस्तिकस्तथा(?) ॥ १९४ ॥

त्रयोदशैते कथिता हस्ताः संयुक्तसंज्ञिताः ।

पताकाभ्यां तु हस्ताभ्यां संश्लेषात् सोऽञ्जलिः स्मृतः ॥ १९५ ॥

शिरश्च विनतं किञ्चित् तत्र कार्यं विपश्चिता ।

कार्यो गुरुनमस्कारो मुखस्यासन्नवर्तिना ॥ १९६ ॥

(पेक्षते न?) मित्राणां न स्थाननियमः (कृधे?) ।

इत्यञ्जलिः ॥

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामन्योन्यं पार्श्वसङ्ग्र(हः?हात्) ॥ १९७ ॥

(स?) हस्तः कपोतनामा (स्यात्) कर्म चास्याभिधीयते ।

(कुर्यात् प्रणमनं) वक्षःस्थितेन (तु) (न) मच्छिराः ॥ १९८ ॥

१. 'व्ये नि' इति स्यात् । २. अग श्लोकोऽशुद्धः पुनरावर्तितश्च । अस्य स्थाने 'अवहित्थाभिधानश्च वर्धमानस्तथापर.' इत्येवञ्ज'तीयमकमर्ध निवेशनीयम् । ३. 'वक्षःस्थितेन' इति स्यात् । ४. 'स्त्रियाः' इति स्यात्, 'वक्षःस्थश्चैव मित्राणां स्त्रियां कार्यो यथेप्सितः' इति नाट्यशास्त्रे दर्शनात् । इह षष्ठ्यन्तस्य 'नमस्कारो' इति प्रक्रमगतसप्तम्यन्तेन सम्बन्धो ज्ञेयः ।

गुरुसंभाषणं कुर्यात् (स्तःते)न शीतं भयं तथा ।
 विनयस्याभ्युपगमे चायमित्यभिधीयते ॥ १९९ ॥
 (ते)नैवाङ्गु(लि)संघृष्यमाणमुक्तेन पाणिना ।
 (एतान् वदति?) नेदानीं कृत्यं(धो?चे)ति प्रदर्शयेत् ॥ २०० ॥
 (एवंरूपो पमे च रूपेण?)

(इति कपोतः ॥)

अङ्गुल्यो यस्य हस्तस्यान्योन्याभ्यन्तरनिःसृताः ।
 स कर्कट इति ज्ञेयः (करः) कर्मास्य कथ्यते ॥ २०१ ॥
 समुन्नतशिराः किञ्चिदुत्क्षिप्तभ्रश्च जृम्भणम् ।
 अनेनैवाङ्गम(र्धैर्द) च कामार्तानां निरूपयेत् ॥ २०२ ॥
 (इति कर्कटः ॥)

उत्तानौ वामपा(र्ध्वै?र्ध्वस्थौ) स्वस्तिकः परिकीर्तितः ।
 समन्ततस्तदूर्ध्वं च विस्तीर्णं च (व) नानि च ॥ २०३ ॥
 ऋ(जःत)वो गगनं मेघा († + तेनार्थवर्तिना?) ।
 इति स्वस्तिकः ॥

खटकः खटके न्यस्तः (खे?ख)टकावर्धमान(यो?क): ॥ २०४ ॥
 शृङ्गारार्थे प्रयोक्त(या?व्यः) परावृत्तस्तथापरः ।
 कार्यो विटगतौ नम्रमूर्धा + तत्प्रमाणतः ॥ २०५ ॥
 इति खटकः ॥

अरालौ तु विपर्यस्तावुत्तानौ वर्धमानकौ ।
 (उत्सङ्ग इति ज्ञेयः + स्पर्शग्रहणे करः?) ॥ २०६ ॥
 उत्सङ्गसंज्ञकौ स्यातां हस्तौ तत्कर्म चोच्यते ।
 विनियोगस्तयोः कार्यः (बालाकः प्रहरेण तु?) ॥ २०७ ॥
 (ति?वि)धातव्याविमौ हस्तौ स्त्रीणामीर्ष्यायिते तथा ।
 दक्षिणं वापि (मान?वामं वा न्य)स्येत् कूर्परमध्यगम् ॥ २०८ ॥
 (इत्युत्सङ्गः ॥)

१. 'एतावदिति' इति स्यात् । २. इह लक्षणवाक्ये एकमर्धं लुप्तम् । तच्च 'मणिब-
 न्वनविन्यस्तावरालौ स्त्रीप्रयोजितौ' इति मुनिप्रदर्शितदिशा योज्यम् । ३. इह क्कियांभिर्दंशो
 लुप्तः । ४. इत उपरि निषघहस्तलक्षणं तत्कर्म च लुप्तम् ।

(अस्यो?) प्रशिथिलौ मुक्तौ पताकौ तु प्रलम्बितौ ।
यदा भवेतां कर(ण)े स दोल इति (सं)स्मृतैः ॥ २०९ ॥
(इति दोलः ॥)

यस्तु सर्पशिराः प्रोक्तस्तस्याङ्गुलिनिरन्तरः ।
द्वितीय(ः) पार्श्वसंश्लिष्टः स तु पुष्पपुटः (पैराणि च ॥ २१० ॥
ग्रास्यान्यथो यानि यानि?) द्रव्याण्येतेन दर्शयेत् ।
जलादानापयने कुर्यात् + + + + + ॥ २११ ॥
(इति पुष्पपुटः ॥)

पताकौ तु यदा हस्तावूर्ध्वाङ्गुष्ठावधोमुखौ ।
उपर्युपरि विन्यस्तौ तदासौ मकरध्वजः ॥ २१२ ॥
(इति मकरः ॥)

(कैर्परौ?) सन्धितौ हस्तौ यदा स्तां सर्पशीर्षकौ ।
गजदन्तः स विज्ञेयः करः कर्मास्य तस्य च ॥ २१३ ॥
(इति गजदन्तः ॥)

शुकतुण्डौ करौ कृत्वा वक्षस्यभिमुखाञ्चितौ ।
शनैरधोमुखाविद्धौ (सौर्बहिस्थल?) इति स्मृतः ॥ २१४ ॥
उ(क्त?)त्कण्ठाप्रभृतीनि च कुर्यादेतेन हस्तेन ।
इत्यवहित्यः ॥

वर्धमानः स विज्ञेयः कर्म चास्य निगद्यते ॥ २१५ ॥

[एतेन सत्यवचनं परिग्रहं सग्रहस्तथा ।
संख्येयकल्पश्चानेन निपीडितेन कर्तव्यः ॥ २१६ ॥

अनयापि नीदृगेषां + + क्रौञ्चौ च कार्यौ ।
नलिनीपद्मकोशश्च तथा गरुडपक्षकः?] ॥ २१७ ॥

१. 'अस्यै' इति स्यात् । २. इतः परमस्य कर्माणि लुप्तानि । ३. अत्रापि ग्रन्थां-
शस्य लोपः संभाव्यते । ४. 'कूर्परे' इति स्यात् । ५. शिष्टं लुप्तम् । ६. 'सोऽवहित्य' इति
स्यात् । ७. लक्षणवाक्ये पूर्वार्धे लुप्तम् । तच्च 'हंसपक्षौ यदि स्यातां पूर्वमुक्तौ पराङ्मुखौ'
इत्येवञ्जातीयं योज्यम् । ८. इत उत्तरं ग्रन्थशरीरे दृश्यमानमिदमशुद्धं वाक्यजातं निषध-
हस्तकर्मप्रदर्शकाद् वाक्यादिह प्रक्षिप्तं प्रक्रमान्तरे संक्रामितं चेति संभाव्यते ।

एतेषां (वृ?नृ)त्तहस्तत्वेऽप्यभिनीत्युपयोगिता(म्) ।

समा + + जितां तत्र स्वयमभ्युह्य कल्पये(त्) ॥ २१८ ॥

(चे)ष्टयाङ्गेन हस्तेन प्रयोगः सत्त्वकैरपि ।

गण्डोष्ठनासापार्श्वोरूपाद(च?चा)रा(म्म?)दिभिस्तथा ॥ २१९ ॥

यथा यथा प्रतीतिः स्यात् प्रयतेत तथा तथा ।

कृतानुकरणं + + + + + ॥ २२० ॥

लक्षणं (वृ?नृ)त्तहस्तानामिदानीमभिधीयते ।

चतुरश्रा तथोद्वृत्तौ स्वस्तिकौ विप्रकी(णौ?र्णकौ) ॥ २२१ ॥

(पञ्चकोशाभिधानौ) चाप्यरालखटकामुखौ ।

(अ?आ)विद्धवक्त्रकौ (सूचीमुद्वरेविव?)संज्ञकौ ॥ २२२ ॥

अर्धरोचितसंज्ञौ तु तथैवोत्तानवञ्चितौ ।

पल्लवा(क्षौ?ख्यौ) (निर्वायोऽथ?) केशबन्धौ लताकरौ ॥ २२३ ॥

करिहस्तौ तथा पक्षवञ्चिता(क्षौ?ख्यौ) ततः (परम्) ।

(पक्षे प्रद्योतकरेव्याच?) तथा गरुडपक्षकौ ॥ २२४ ॥

ततश्च दण्डपक्षाख्यावूर्ध्वमण्डलिनौ ततः ।

पार्श्वमण्डलिनौ तद्वदुरोमण्डलिनावपि ॥ २२५ ॥

अनन्तरं करौ ज्ञेयावुरःपार्श्वार्धमण्डलौ ।

मुष्टिकस्वस्तिकाख्या च नलिनीपञ्चकोशकौ ॥ २२६ ॥

ततश्च कथितौ हस्तावलपल्लवकोल्वणौ ।

ललितौ वलि(तप?ता)ख्यावित्येकान्नत्रिंशदीरिता ॥ २२७ ॥

पुरस्ताद् वक्ष(सा?सो) हस्तौ प्रदेशेऽष्टाङ्गुले स्थितौ ।

समान(कूर्परशौ?) तु संमुखौ खटकामुखौ ॥ २२८ ॥

चतुरश्राविति प्रोक्तौ नृत्तहस्तविशारदैः ।

इति चतुरश्रौ^६ ॥

तात्रैव हंसपक्षाख्या व्यावृत्तिपरिवर्तनात् ॥ २२९ ॥

१. 'सूचीमुखरोचित' इति स्यात् । २. 'करौ चाय' इति स्यात् । ३. 'पक्षप्रद्योतकौ चैव' इति स्यात् । ४. प्रदर्शितक्रमेणाष्टाविंशतिरेवोपलभ्यते । ५. 'कूर्परशौ' इति स्यात् । ६. इत उपरि उद्धृतस्वस्तिकयोर्विविक्तं लक्षणमादर्शं लुप्तमिति भाति ।

नीतौ स्वस्तिकतां पश्चात् (पश्च्छ्या)वितौ मणिवन्धनात् ।
(विप्रकीर्णाविति प्रोक्तौ) नृत्ताभिनयकोविदैः ॥ २३० ॥

इति विप्रकीर्णः ।

तावेव हंसपक्षाख्यौ कृत्वा व्यावर्तनक्रियाम् ।
अलपल्लवतां नीतौ ततश्च परिवर्तितौ ॥ २३१ ॥
विधायोर्ध्वमुखौ हस्तौ कर्तव्यौ पद्मकोशकौ ।

(इति पद्मकोशकौ ॥)

पुनर्विवर्तितं कृत्वा परिवर्तनकं ततः ॥ २३२ ॥
अरालं दक्षिणं कुर्याद् वामं च खट्कः सु'कामु'खम् ।
खट्काख्यास्त्रयो हस्ताः(?) स्वक्षेत्रेऽसौ विधीयते ॥ २३३ ॥

इत्यरालखट्कामुखौ ॥

भुजांसकूर्परैः सार्धं कुटिलावर्तितौ यदा ।
हस्तावधोमुखतलावाविद्धाबुद्धतावुमौ ॥ २३४ ॥
(वि)नतौ नामनो (विद्याद् दीनानां, विद्धवैक्रकौ ।
(अ'आ)विद्धवक्रकौ चैव गदावेष्टनयोगतः ॥ २३५ ॥

(इत्याविद्धवक्रकौ ॥)

(रचितौ सलावर्तितौ?)

यदा (तु) सर्पशिरसौ तलस्थाङ्गुष्ठकौ करौ ।
(तेयकास्थौ?) प्रसृताग्रौ च (शूलन्यासो भरस्तदा?) ॥ २३६ ॥
इति सूचीमुखौ ॥

हस्तौ सूचीमुखा(तेच'वेव) मणिवन्धनविच्युतौ ।
न्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां वर्तितौ तदनन्तरम् ॥ २३७ ॥

हंसपक्षत्वमानीय कुर्यात् कमलवर्तिताम् ।
तथा द्रुतभ्रमौ कृत्वा रेचितौ पार्श्वयोः शनैः ॥ २३८ ॥
रेचिता(चित'विति) विज्ञेयौ हस्तौ हस्तविशारदैः ।
इति रेचितौ ॥

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां वर्तितौ चतुरश्रवत् ॥ २३९ ॥

१. 'विद्यादिमावा' इति स्यात् । २. 'वक्त्रकौ' इति लक्ष्यानिर्देशो दृश्यते । ३. 'तयं हस्थौ' इति स्यात् । ४. 'सूच्यास्याख्यौ करौ तदा' इति स्यात् । ५. अयं सार्धं श्लोक-पार्श्वरेचितलक्षणानन्तरं निवेद्यो भाति ।

कूर्परांसा(विःश्चि)तौ हस्तौ नीतौ च त्रिपताकताम् ।

(शकिश्चि आश्रस्थितावेतौ ज्ञेयावुत्तानितौ?) ॥ २४० ॥

इत्युत्तानवञ्चितौ ॥

बा(हू?हु)वर्तनया कृत्वा पूर्वव्यावर्तितक्रियाम् ।

चतुरश्रक(?)परिवृत्तिभ्यां चतुरश्रः कृ(ता?तो) यदा ॥ २४१ ॥

वामहस्त(स्त)दितरः (कृत्वादेष्वित?)रेचितः करः ।

अर्धरेचितसंज्ञौ तौ विज्ञातव्यौ तदा बुधैः ॥ २४२ ॥

इत्यर्धरेचितौ ॥

बा(हू?हु)वर्तनया बाहुशी(र्ष्या?र्षाद् व्य)वर्तनेन वा ।

करणेन वि(निष)क्रान्तौ (मितं?) वाभ्यर्णमागतौ ॥ २४३ ॥

पताकावेव निर्दिष्टौ पल्लवौ नामतः करौ ।

इति पल्लवौ ॥

उद्वेष्टिनवर्तनया गत्या (वैसंत्रास्रया?) स्थितौ मूर्धः ।

पार्श्वद्वितये पल्लवसंस्था(ने?नौ) केशबन्धारूयौ ॥ २४४ ॥

इति केशबन्धौ ॥

अभिमुखमुभौ निविष्टौ (भुविष्टित्ववर्तनक्रमादसौ?) ।

पल्लवहस्तौ पार्श्वद्वितये स्यातां लतासंज्ञौ ॥ २४५ ॥

इति लताहस्तौ ॥

व्यावर्तितकरणाभ्यां (करिहस्ते) दक्षिणो लताह(स्ता?स्त): ।

उन्नतविलोलितः स्यात् त्रि(षक्त?पता)को वामहस्तस्तु ॥ २४६ ॥

इति करिहस्तः ॥

उद्वेष्टित(परि?)वर्तनया त्रिपताकावभिमुखौ यदा घटितौ ।

करिहस्तसन्निविष्टौ करौ तदा पक्षवञ्चितकौ ॥ २४७ ॥

इति परपक्षवञ्चितकौ ॥

तावेव त्रिपताका हस्तौ कटिशीर्षसन्निविष्टाग्रौ ।

विपरावृत्तिविधानात् पक्षप्रच्योतकौ नाम्ना ॥ २४८ ॥

इति पक्षप्रच्योतकौ ॥

१. 'किञ्चित् व्यश्रस्थितावेतौ ज्ञेयावुत्तानवञ्चितौ' इति स्यात् । अक्षरसाध्यदेवमु-
चीतम् । 'किञ्चित्' तिर्यक्तालवि'ति तु द्वितितु निपाठः । २. 'यदि' इति स्यात् । ३. 'व
स्तया' इति स्यात् । ४. 'पक्षप्रच्योतकौ' इति उद्देशानुसारेण पाठ्यम् ।

(त्रिपै शाखौ हस्तावधोमुखा हितद् ?) विज्ञेयौ गरुडपक्षाख्यौ ।
इति गरुडप(क्ष)कौ^१ ।

[आवर्तितपरिवर्तितकरणकृतौ हंसपक्षकौ गम् ॥ २४९ ॥

पक्षतिरूपत्वमानान्तौ प्रसृतौ च यदा भवेत् उपक्षौ ।

*व्यावर्तितपरिवर्तितयोगौ यदि मण्डलाकृती स्याताम् ॥ २५०^१ ॥

ऊर्ध्ववर्तितादघवदा स्मृतावूर्ध्वमण्डलिनौ ।

तथोर्ध्वमण्डलिसंज्ञौ वावर्तितं विधाया परिवर्तितकरणतारौ ॥
इति पार्श्वमण्डलिनौ ॥

उद्वेष्टितौ यदैक एव भ्रमित उरसः स्थाने तौ द्वावपि स्याताम् ?]

नियतमुरोमण्डलिनौ विज्ञातव्यौ तदा तज्ज्ञैः ।

इत्युरोमण्डलि(नौ) ॥

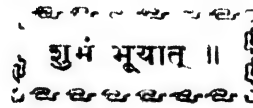
+++ पल्लवो हस्तस्तथाराला(द्वा वापरा?) ।

व्यावर्तनाकृतश्चैकस्तयोरन्योपवेष्टनात् ॥

उरोर्ध्वयोगात् पार्श्वार्धयोगाच्च क्रमशः(स्थितौ) ।

(एतौ विद्वा)न् विजानोयादुरःपार्श्वार्धमण्डलौ ॥ §

(इत्युरःपार्श्वार्धमण्डलौ ॥)



१. वलयान्तर्गतमशुद्धप्राय लुप्तकतिपयपदमिदं वाक्यम् 'अधोमुखतलाविद्धौ ज्ञेयौ गरुडपक्षकौ' इति मुनिना सङ्ग्रहोक्तलक्षणवाक्यमवष्टम्भ्य शोधनीयम् । 'त्रिपताकौ' इति विशेष्यम् । २. इत उपरि श्लोकत्रयं दण्डपक्षोर्ध्वमण्डलिपार्श्वमण्डलित्युरोमण्डलत्याख्याना चतुर्णां हस्तविशेषाणां लक्षणप्रदर्शनपरमशुद्धपदप्रक्षेपादिना तथा मिश्रितं यथा तत् प्रायो विवेक्तुमपि न पार्येत । अतस्तदर्थज्ञानाय मुन्युक्तं तल्लक्षणमिह प्रदर्श्यते । यथा—“हंसपक्षकृतौ हस्तौ व्यावृत्तपरिवर्तिता । तथा प्रसारितभुजौ दण्डपक्षाविति स्मृतौ ॥ ऊर्ध्वमण्डलिनौ हस्तावूर्ध्वदशविवर्तनात् । तावेव पार्श्वविन्यस्तौ पार्श्वमण्डलिनौ स्मृतौ ॥ उद्वेष्टितो भवेदेको द्वितीयश्चाप वेष्टितः । भ्रामिताभुगमः स्थाने ह्युरोमण्डलिनौ स्मृतौ ॥” (नाट्यशा० अ०. ९ श्लो० १७९-१८१) इति ।

• इत उपरि श्लोकानां यथावद विभागानुपलम्भात् संख्या न निवेशिता ।
§ एतावानेव ग्रन्थ उपलभ्यते हस्तलिखितादर्थं ।

Gaekwad's Oriental Series.

SELECT OPINIONS.

The Series as a whole will bring notable accession to our knowledge of the immense and wonderful Sanskrit Literature. The volumes are excellently printed and edited and the notes and introductions are scholarly and useful. I think the undertaking of the Series by H. H. the Gaekwad's Government will evoke the gratitude of scholars both in India and elsewhere and that the manner in which it is carried out will give satisfaction to the State.

(Dr.) F. W. THOMAS.

Librarian, India Office Library.

* * *

The editions have been executed with the greatest care. The prefaces are learned and informing, and the books are well selected for the study of Indian History and Literature. They are worthy of the State which published them.

(Mm.) HARAPRASAD SHASTRI, M. A., C. I. E.

* * *

It is a splendid idea of His Highness the Gaekwad of Baroda that the Oriental Library should be doing also original work of research and editing of old Sanskrit manuscripts, and publish them to the world with the necessary aids to render them readable by the modern public. The work of editing is done well and carefully. The printing and the general get up of the volumes are also excellent. Sanskrit scholarship is thus under a deep debt of obligation to His Highness the Maharaja Gaekwad of Baroda for the publication of rare and unknown works in the Oriental Series that goes by his name.

COMMONWEAL,

GAEKWAD'S ORIENTAL SERIES.

CRITICAL EDITIONS OF UNPRINTED SANSKRIT WORKS, EDITED BY
COMPETENT SCHOLARS AND PUBLISHED BY
THE CENTRAL LIBRARY, BARODA.

BOOKS PUBLISHED.

1. Kavyamimamsa , a work on poetics, by Rajasekhara (880-920 A. D.). edited by C. D. Dalal, M. A. and R. Anantakrishna Sastry, 1916, Re-issue. 1924 .. Rs. 2-4
2. Narayanarayananda , a poem on the Pauranic story of Arjuna and Krishna's rambles on Mount Girnar, by Vastupala, Minister of King Viradhavala of Dholka, composed between Samvat 1277 and 1287 i. e. A. D. 1221 and 1231. edited by C. D. Dalal and R. Anantakrishna Sastry. 1916 .. 1-4
3. Tarkasangraha , a work on Philosophy (Refutation of Vaisesika theory of atomic creation) by Anandajnana or Anandagiri, the famous commentator on Sankaracharya's Bhashyas, who flourished in the latter half of the 13th century, edited by T. M. Tripathi, B. A. 1917 .. 2-0
4. Parthaparakrama , a drama describing Arjuna's recovery of the cows of King Virata, by Prahladanadeva, the founder of Palanpur and the younger brother of the Paramara King of Chandravati, (a state of Marwar) and a feudatory of the Kings of Guzerat, who was a Yuvaraja in Samvat 1220 or A. D. 1164; edited by C. D. Dalal, M. A. 1917 ... 0-6
5. Rashtraudhavamsa , an historical poem (Mahakavya) describing the history of the Bagulas of Mayuragiri, from Rashtraudha, King of Kanauj and the originator of the dynasty, to Narayana Shah of Mayuragiri by Rudra Kavi composed in Saka 1518 or A. D. 1596 edited by Pandit Embar Krishnamacharya with introduction by C. D. Dalal, M. A. 1917 ... 1-12

8. Lingannasana , on Grammar, by Vamana, who lived between the last quarter of the 8th century and the first quarter of the 9th century: edited by C. D. Dalal, M. A. 1918 0-8

7. Vasantavilasa , an historical poem (Mahakavya) describing the life of Vastupala and the history of Guzerat, by Balachandrasuri, (from Modheraka or Modhera in Kadi Prant, Baroda State), contemporary of Vastupala, composed after his death for his son in Samvat 1296 (A. D. 1240): edited by C. D. Dalal, M. A. 1917 .. 1-8

8. Rupakashatkam, six dramas by Vatsaraja, minister of Paramardideva of Kalinjara, who lived between the 2nd half of the 12th and the 1st quarter of 13th century, edited by C. D. Dalal, M. A. 1918 ... 2 4

9. Mohaparajaya , an allegorical drama describing the overcoming of King Moha (Temptation), or the conversion of Kumarapala, the Chalukya King of Guzerat to Jainism, by Yasahpala, an officer of King Ajayadeva, son of Kumarapala, who reigned from A. D. 1229 to 1232, edited by Muni Chaturvijayaji, with Introduction and Appendices by C. D. Dalal, M. A. 1918 2 0

10. Hammiramadarnada , a drama glorifying the two brothers Vastupala and Tejapala and their King Viradhavala of Dholka, by Jayasimhasuri, pupil of Virasuri and an Acharya of the temple of Manisuvrata at Broach, composed between samvat 1267 and 1286 or A. D. 1220 and 1239: edited by C. D. Dalal, M. A. 1920 ...2-0

11. Udayasundarikatha , a romance (Champu, in prose and poetry) by goddhala, a contemporary of and patronised by the three brothers Chchittaraja, Nagarjuna, and Mummuniraja, successive rulers of Konkan, composed between A. D. 1026 and 1050 : edited by C. D. Dalal M. A., and pandit Embar Krishnamacharya, 1920. ...2-4

12. Mahavidyavidambana , a work on Nyaya Philosophy, by Bhatta Vadindra who lived about A. D. 1210 to 1274, edited by M. R. Telang 1920, 2-4

18. Prachinagurjarakavysangraha, a collection of old Gujarati poems dating from 12th to 15th centuries A. D, edited by C. D. Dalal
M. A. 1920 2-4
14. Kumarapalapratibodha, a biographical work in Prakrit, by Boma-
prabhacharya composed in Samvat 1241 or A. D. 1195, edited by
Muni Jinavijayaji 1920 7-8
15. Carakasika, a work on Philosophy (Pasupata school) by
Bhasarvajna who lived in the 2nd half of the 10th century, edited
by C. D. Dalal, M. A. 1921 1-4
16. Sangitamakaranda, a work on Music, by Narada, edited by M. R.
Telang, 1920 2-0
17. Kavindracharya List, List of Sanskrit works in the collection of
Kavindracharya, a Benares Pandit (1656 A. D.), edited by R.
Anantakrishna Sastry with a foreword by Dr. Ganganatha Jha.
1921 0-12
18. Varahagrihyasutra, Vedic ritual (domestic) of the Yajurveda,
edited by Dr. R. Shamasastry, 1920 0 12
19. Lekhapaddhati, a collection of models of state and private docu-
ments dating from 8th to 15th centuries A. D. edited by C. D. Dalal
M. A. and G. K. Shrigondekar, M. A. 1925 2-0
20. Bhavisayattakaha or Panchamikaha, a romance in Apabhramsa
language by Dhanapala (circa 12th century), edited by C. D. Dalal;
M. A. and Dr. P. D. Gune M. A. 1923 6-0
21. A Descriptive Catalogue of the Palm-leaf and Important Paper
MSS in the Bhandars at Jissalmere, compiled by C. D. Dalal
M. A., and edited by L. B. Gandhi, 1924 3 4
- 22, 23. Parasuramakalpasutra, a work on Tantra, with commentary by
Ramesvara and Paddhati by Umananda, edited by A. Mahadeva
Sastry, B. A., 2 vols. 1923 11-8

24. Tantrarahasya , a work on the prabhakara school of purvamimamsa, by Ramanujacharya, edited by Dr. R. Shamasastri, 1923. ... 1-8
25. Samarangana , a work on Architecture, town planning and engineering by king Bhoja of Dhara (11th century) edited by Mahamahopadhyaya T. Ganapati Sastri, Ph. D. etc. 2 vols, Vol. I, 1924 5-0
26. Sadhanamala , a Buddhist Tantric text of rituals, dated 1165 A. D. consisting of more than 300 small works composed by distinguished writers ; edited by Benoytosh Bhattacharyya, M. A., General Editor, Gaekwad's Oriental Series. 2 vols, vol. I, 1925 ... 5-0
27. A Descriptive Catalogue of MSS in the Central Library, Baroda Vol. I (Veda. Vedalakshana and Upanishads), compiled by G. K. Shrigondekar. M. A. and K. S. Ramaswami Sastri 1925. ... 6-0
28. Manasollasa or Abhilashitarthachintamani , an encyclopaedic work divided into one hundred chapters treating of one hundred different topics by, Somesvaradeva, a Chalukya King of the 12th century; edited by G. K. Shrigondekar, M. A. 2 vols—vol. I, 1925. 2-8
29. Nalavilasa , a drama by Ramachandra Suri, pupil of Hemachandra-suri, describing the Puranic story of Nala and Damayanti; edited by Messrs G. K. Shrigondekar, M. A. and L. B. Gandhi 1925. (*Shortly*)
30. Tattvasangraha , a Buddhist philosophical work of the 8th century by Santarakshita a Professor at the Nalanda University, with 'Panjika (commentary) by his disciple Kamalasila, also a Professor in Nalanda (about 750 A. D.) edited by Pandit Embar Krishnacharya 2 vols. 1925 ... (*Shortly*)
31. Advayavajrasangraha ; consisting of twenty short works on Buddhist philosophy by Advayavajra, a Buddhist savant belonging to the 11th century A. D. edited by Mahamahopadhyaya Pandit Haraprasad Ghastri, M. A., C. I. E., F. A. S. B. etc.
32. Samarangana , a work on Architecture, town planning and engineering by king Bhoja of Dhara (11th century) edited by Mahamahopadhyaya T. Ganapati Sastri, Ph. D. etc. 2 vols, vol II, 1925

BOOKS IN THE PRESS.

1. Nyavapravesa, the earliest work on Buddhist logic, by Dinnaga, with commentaries of Haribhadrāsuri and Parśvadeva, edited by A. B. Dhruva, M. A. LL B., Pro-Vice-Chancellor of the Hindu University, Benares. *Shortly.*
2. Sadhanamala. Vol. II., edited by Benoytosh Bhattacharyya, M. A. General Editor, Gaekwad's Oriental Series- Illustrated.
3. Natyasastra, on dramaturgy, by Bharata with commentary by Abhinavagupta of Kashmir; edited by M. Ramakrishna Kavi, M. A. Illustrated. 4 vols.
4. Kalpadrūmakosa, a standard work on Sanskrit Lexicography, edited by Pandit Ramavatara Sarma Sahityacharya, M. A.
5. Manavagrihyasūtra, a work on Vedic ritual (domestic) of the Yajurveda with the Bhasya of Ashtavakra, edited by Pandit Ramakrishna Harshaji with Introduction by Prof. B. C. Lele, M. A.
6. Apabhraṃśakavyatraya, consisting of three works, the Charchari, Upadesarasayana and Kaśasvarupakulaka by Jinadatta Suri (12th century) with commentaries, edited by L. B. Gandhi.
7. Manasollāsa or Abhilashitārthachintamani. Vol. II., edited by G. K. Shrigondekar, ;
8. A Descriptive Catalogue of MSS in the Jain Bhandars at Pattan edited from the notes of the late Mr. C. D. Dalal, M. A., by Pandit L. B. Gandhi. 2 vols.
9. Mirat-i-Ahmadi with its Khatimaa or supplement, by Aḥ Mahammad Khan, the last Moghul Dewan of Gujarat, edited in the original Persian by Syed Nawabali M. A. Professor of Persian Baroda College. 2 vols.

